प्रमुख पुराणों में उपलब्ध दशावतार का तुलनात्मक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी की पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

प्रस्तुतकर्त्री—

श्रीमती गायत्री मिश्र

शोधछात्रा संस्कृत—विभाग,

अतर्रा पोस्टग्रेजुएट् कालेज, अतर्रा (बांदा)

निर्देशक—

डॉ० विशनलाल गौड़ "व्योमशेखर"

प्राचार्य एम० ए०, पी-एच० डी०, व्याकरणाचार्य,

अतर्रा पोस्टग्रेजुएट् कालेज, अतर्रा (बांदा) उ० प्र०
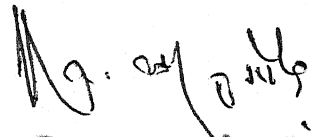
संस्कृत—विभाग

कला-सङ्काय,

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी (उ०प्र०)

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी १९९३

॥ प्रमाण - पत्र ॥

प्रमाणित किया जाता है कि -

(i) यह शोध-प्रबन्ध शोध - छात्रा का निजी एवम् मौलिक प्रयास है ।

(ii) इन्होंने मेरे निर्देशन में विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित अवधि तक कार्य किया है ।

(iii) इन्होंने विभाग में वांछित उपस्थिति भी दी है ।

शोध निर्देशक

(डा० शिवमलाल गौड़ "व्योमेश")
एम०ए०, पी-एच०डी.
व्याकरणाचार्य,
प्राचार्य,
आरा पोस्टग्रेजुएट कालेज,
आरा (बिहार)

संस्कृत-विभाग

दिनांक: 29. 9. 93

आमुख

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रारम्भ में अपने विनम्र हृदयोद्गारों को अभिव्यक्त करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। यद्यपि तदुपरान्त मैंने अपने स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए हिन्दी विषय का चयन किया था, किन्तु संस्कृत अध्ययन के प्रति मेरा कौतूहल निरन्तर बढ़ता रहा जिससे प्रेरित होकर मुझे संस्कृत विषय में भी स्नातकोत्तर उपाधि अर्जित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसमें प्राप्त अच्छी सफलता से संस्कृत विषय में शोध करने की रुचि का उदय मेरे मानस-पटल पर यथासमय हुआ, जिसका सुपरिणाम यह शोध प्रबन्ध है।

यह शोध प्रबन्ध पूज्य गुरुवर्य डा० [illegible] गौड़, प्राचार्य अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, अतर्रा, जनपद-बाँदा के विद्वत्तापूर्ण एवं गवेषणात्मक निर्देशन में सम्पन्न हुआ है। ये संस्कृत विषय की प्राच्य पाश्चात्य उभयविध-शैली के उद्भट विद्वान् हैं। संस्कृत के आधुनिक प्राच्य-विद्या-विशारदों और आधुनिक संस्कृत कवियों में उनकी गणना प्रथम पंक्ति में की जाती है। उनका निर्देशन मेरे लिए गौरव की बात है। इन्होंने समय-समय पर कृपापूर्वक शोध-कार्य सम्बन्धी दिशा-निर्देश देकर मुझे उपकृत और अनुगृहीत किया है। इनके आशीर्वाद से ही इस शोध प्रबन्ध को इस रूप में प्रस्तुत करने का यह सुअवसर अब मुझे हस्तगत हुआ है।

यह सर्वविदित है कि व्यास ने पुराण-साहित्य में विपुल विषयवस्तु का अनुग्रहपूर्वक संग्रह किया है। इसलिए इस दृष्टि से पुराण साहित्य का पटल अतिविस्तृत, गूढ़ और गम्भीर है। पुराणों की बहुविध विषय-सामग्री में अवतारवाद एक अत्यन्त रोचक और कौतूहलजनक विषय

है, जिसके अध्ययन का, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में यथाशक्ति प्रयास किया गया है ।

यद्यपि प्राचीनकाल से ही विद्वानों ने पुराणों के अध्ययन के प्रति अपनी रुचि प्रदर्शित की है । डॉ० विल्सन ने विष्णु पुराण का अध्ययन किया है और उसे अंग्रेजी अनुवाद तथा व्याख्यात्मक टिप्पणियों के साथ प्रकाशित किया है । इसी प्रकार पुराणों के विशिष्ट अध्येतागण आचार्य बलदेव उपाध्याय प्रो० पं०सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी, श्री ए०बी०टी० शास्त्री, प्रो० आर०सी०हाजरा, प्रो० पी०वी०काणे, डॉ० ए०डी० पुसालकर, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल और डॉ० एस जैना प्रभृति प्राच्य विद्या-विशारद हैं । इन सभी विद्वज्जनों ने भिन्न-भिन्न पुराणों की भिन्न-भिन्न समस्याओं और विषयों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है जो सम्प्रति, पुराणों के अध्येता और अनुसन्धित्सु सज्जनों के लिए "कुतबा[illegible]र" की तरह प्रतीत होते हैं ।

भारतीय - संस्कृति से अवतारवाद का सम्बन्ध अतुलित और शाश्वत है । भारतीय - संस्कृति की सम्पूर्ण विशिष्टतायें अवतारी महापुरुषों के माध्यम से प्रस्फुटित हुई हैं । भारतीय धर्म और संस्कृति अवतारवाद की धुरी पर घूमते हुए दिखाई देते हैं । इसलिए पुराणों में वर्णित दशावतार-परम्परा का तुलनात्मक अध्ययन पौराणिक संस्कृति और धर्म को समझने में सहायक हो सकता है, फिर भारतीय साहित्य पर भी अवतारवाद का प्रभाव अतुलित है । न केवल पुराण प्रत्युत रामायण और महाभारत इत्यादि काव्य-भारतीय ग्रन्थ भी अवतारवाद की धुरी पर घूमते

प्रकट कर रहे हैं । वैदिक साहित्य में भी अवतारवाद के बीज जिस रूप में प्राप्त होते हैं, उन्हीं का पल्लवन और परिवृंहण पुराण आदि ग्रन्थों में हुआ है ? अथवा पुराण ही अवतारवाद के प्रवर्तक मूलग्रन्थ हैं ?

इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से उक्त प्रश्नों एवं अन्य प्रश्नों के समाधान प्रस्तुत करने का यथासंभव प्रयास किया गया है । इस शोध से भारतीय मनीषा की उस दृष्टि के खोजने का प्रयास किया गया है जिसने अवतारवाद का लोक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने में अपना योगदान दिया है ।

अवतार का शुभारम्भ पशु शरीरों से होता है और मानव देह में अवतार का उत्कर्ष और पर्यवसान दिखाई देता है जिससे पुराणों में अवतार के माध्यम से सृष्टि में विकासवाद के सिद्धान्त की सत्ता का भी संकेत प्राप्त होता है ।

यद्यपि पुराणों में अनेक अवतारों का वर्णन प्राप्त होता है किन्तु कालान्तर में शनैः शनैः दशावतार - परम्परा रूढ़ होती हुई सी प्रतीत होती है । दशावतारों में साम्य और वैषम्य के अनेक बिन्दु हैं जिन्होंने भारतीय मनीषा को उद्वेलित किया है । वैष्णव अवतारवाद और वैष्णवेतर अवतारवाद का पुराणों में एक साथ वर्णन या परिगणन पुराणों की पाचन शक्ति या भारतीय संस्कृति की उदारता और आत्मसात् करने की शक्ति का ही परिणाम है ।

प्रयोजन की दृष्टि से दशावतार परम्परा में [illegible]

-: सार :-

साम्य दिखाई देता है । सज्जन-परित्राण, दुष्ट विनाश, धर्म संस्थापन, अधर्मविनाश, अंधकार पर प्रकाश की विजय, असत्य पर सत्य की विजय और हिंसा पर अहिंसा,प्रेम और करुणा आदि की विजय अवतारवाद के प्रमुख प्रयोजन प्रतीत होते हैं ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में उपर्युक्त अनेक विषयों से सम्बद्ध शोध-सामग्री, योजनानुसार प्रस्तुत करने की यथासम्भव चेष्टा की गई है। मुझे आशा है कि मेरे इस अध्ययन से पुराणों के अध्येतागण और अनुसन्धित्सु जन लाभान्वित होंगे तथा इससे अवतारवाद के नव्य अध्ययन के लिए मार्ग भी प्रशस्त होगा ।

शोध प्रबन्ध का शीर्षक "प्रमुख पुराणों में अवतारवाद का तुलनात्मक अध्ययन" है । इस अध्ययन के विषयभूत प्रमुख पुराणों में श्रीमद्भागवत पुराण, मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन और नृसिंह आदि पुराण हैं ; यद्यपि अन्य पुराणों एवं अन्यान्य ग्रन्थों से भी सहायता ली गई है ।

यह शोध प्रबन्ध निम्नांकित आठ अध्यायों में विभाजित किया गया है । प्रथम अध्याय परिचयात्मक है जिसमें अवतार-वाद की पूर्वपीठिका दी गई है, अवतार शब्द के प्राचीन प्रयोग, व्युत्पत्ति, अर्थ और उसके पर्याय इत्यादि विषयों पर प्रकाश डाला गया है ।

द्वितीय अध्याय में पुराणों में अवतारों का परिगणन और उस पर प्राप्त पुराणों के मत-मतान्तर का उल्लेख किया गया है । तदनुसार मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि अवतारों की संक्षिप्त चर्चा की गई है । इसमें यह भी

बतलाया गया है कि पुराणों में वर्णित दशावतार-परम्परा में विकासवाद के सिद्धान्त के तत्व भी [illegible] दिखाई देते हैं ।

तृतीय अध्याय में पुराणों में प्राप्त अवतारों के विविध रूपों पर विचार किया गया है जिसके अन्तर्गत अंशावतार-परम्परा, दशावतार-परम्परा, विभूतिवादी परम्परा और आवेशावतार-परम्परा आदि पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है ।

चतुर्थ अध्याय में प्रयोजन की दृष्टि से दशावतारों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है और प्रत्येक अवतार की पौराणिक कथावस्तु, कार्य और अवतारों में उत्तरोत्तर विकास पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है ।

पंचम अध्याय में नृसिंहावतार और वामनावतार की पौराणिक कथावस्तु और उनके कार्यों का वर्णन किया गया है । इसमें बतलाया गया है कि नृसिंहावतार में प्रथम बार नरत्व का समावेश हुआ है । और वामनावतार में वामन का त्रिविक्रमत्व तथा उसमें बौद्धिक शक्ति का उत्कर्ष प्रथम बार दिखाई देता है ।

षष्ठ अध्याय में अवतारवाद का इतिहास की दृष्टि से विवेचन किया गया है जिसमें परशुराम, श्रीराम और कृष्णावतारों की कथावस्तु और उनके इतिहास तथा परस्पर उत्कर्ष का अनुशीलन-परिशीलन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

सप्तम अध्याय में वैष्णवेतर अवतार-वाद पर सामग्री प्रस्तुत की गई है जिसके अन्तर्गत बुद्धावतार की ऐतिहासिकता, भगवान बुद्ध के कार्य और प्रयोजन तथा पुराणों द्वारा अवैदिक और अवैष्णव बुद्ध-

वतार के पश्चात् अन्तिम अवतार कल्कि है । पुराणों के अनुसार कल्कि का अवतार भविष्य में होने वाला है जो कालान्तर में म्लेच्छों का विनाश कर भूमण्डल में धर्म की स्थापना करेगा । संक्षेप में यही दशावतार-परम्परा है, जो पुराणों में वर्णित है ।

अष्टम अध्याय में इस शोध-प्रबन्ध का उपसंहार प्रस्तुत किया गया है जिसके अन्तर्गत उपर्युक्त विषय वस्तु का सारांश प्रस्तुत करते हुए यह बतलाया गया है कि पुराणों में वर्णित दशावतार परम्परा ने भारतीय समाज को अत्यधिक प्रभावित किया है, तदनुसार भारतीय धर्म, संस्कृति और समाज अवतारवाद की धुरी पर चक्रनेमिवत् परिभ्रमण कर रहे हैं । आज भी भारतीय समाज श्रीराम, श्रीकृष्ण और भगवान बुद्ध के आदर्शों का अनुगामी है । इस प्रकार आज भी अवतारवाद की प्रासंगिकता और जीवन्तता बनी हुई है । इस दृष्टि से आज भी पौराणिक अवतार-कथा पठनीय, मननीय और स्मरणीय बनी हुई है ।

इस शोध-प्रबन्ध के निर्देशक श्रद्धेय गुरुवर्य डॉ० गौड़ साहब ने अपना सस्नेह सहयोग प्रदान किया है और प्रस्तुत कार्य में सफलता हेतु मुझे अपना शुभाशीर्वाद प्रदान किया है, तदर्थ मैं हृदय से उनका आभार मानती हूँ । जिस प्रकार छोटी नदी, महानदी (गंगा) से मिलकर, समुद्र से मिलकर धन्य हो जाती है, उसी प्रकार छोटे लोग बड़े लोगों की सहायता से सफल और धन्य हो जाते हैं । इस अवसर पर कविवर माघ का निम्नांकित श्लोक - स्मरणीय है -

-: आभार :-

"कृतज्ञताय: [illegible] [illegible] गच्छति ।
सम्पूर्णाम्भोधिमभ्येति [illegible] [illegible] ॥

पं० जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय के संस्कृत-विभागाध्यक्ष एवं पूर्व संयोजक, संस्कृत-विभाग, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय तथा अपने पूज्यनीय जीजा जी डॉ० आर०एम० त्रिपाठी और पूज्य दीदी जी श्रीमती सावित्री त्रिपाठी का भी आभार मैं हृदय से स्वीकार करती हूँ जिन्होंने इस शोध कार्य के लिए प्रेरणा और अपना आशीर्वाद देकर मुझे अनुगृहीत किया है। इस अवसर पर मैं अपने आदरणीय पिता श्री चन्द्रानन्द मिश्र एवं अपने स्व० बाबूजी स्व० गंगा प्रसाद तिवारी, पूज्य माताजी चन्द्रदेवी, अपने जीजाजी वेनीमाधव तिवारी एडवोकेट पटना हाईकोर्ट एवं आदरणीया दादाजी श्रीमती सावित्री तिवारी तथा जीजा जी दयाशंकर दुबे एवं दीदी सरोज दुबे तथा भ्रातृदेव श्री कृष्णनन्दन तिवारी आदि के प्रति कृतज्ञता अर्पित करता हूँ जिनके आशीर्वाद और शुभकामनाओं से ही मैं इस शोध कार्य से पार पा सकी हूँ।

शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में मुझे अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा है, उनको जो मैं पार कर सकी हूँ, इसे मैं अपने स्वजनों गुरुजनों, शुभचिन्तकों तथा विद्वज्जनों के आशीर्वाद और शुभकामना का ही परिणाम समझती हूँ।

प्रत्येक नया चिन्तन अथवा अध्ययन प्राचीन चिन्तकों का ऋणी होता है, इसलिए इस प्रबन्ध को पूर्ण करने में पूर्व के अनेक विद्वानों के ग्रन्थों, लेखों, शोध-पत्र पत्रिकाओं से सहायता ली गई है। उन सभी विद्वानों के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता अर्पित करती हूँ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के टंकक श्री राजेश अग्रवाल भी धन्यवाद के पात्र हैं जो संस्कृत भाषा के ज्ञाता न होते हुए भी संस्कृत श्लोकों के उद्धरणों का टंकण यथाविधि कुशलता और कुशाग्र गति से पूरा किया है। फिरभी वर्णों के पंचम अक्षर और संयुक्ताक्षर न होने के कारण पञ्चमाक्षर सन्धि, संयुक्ताक्षर और हलन्त इत्यादि भाषागत टंकण की अन्य त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थिनी हूँ।

अन्त में, इस शोध प्रबन्ध के प्रतिपाद्य परम देवता अवतारों का स्मरण कर मैं आत्मिक सुख का अनुभव कर रही हूँ और उन में भी प्रमुख अवतारद्वय श्रीराम और श्रीकृष्ण को निम्नांकित श्लोकद्वय से वन्दना कर विराम ले रही हूँ।

"रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंस चाणूरमर्दनम् ।
देवकी-परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

विदुषी वंशंवदा

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी,
1993

श्रीमती गायत्री मिश्र
(श्रीमती गायत्री मिश्र)

विषयानुक्रम

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
प्रथम अध्याय	: भूमिका	1 – 37

अवतारवाद की अवधारणा 1 – 3

अवतार शब्द का प्रथमोल्लेख,
ऋग्वेद संहिता में "अवतारः"
शब्द का प्रयोग 2

अवतार शब्द का अर्थ और व्युत्पत्ति
पाश्चात्यवर्ग का अभिमत 2

वेद और श्रीमद्भगवद्गीता में अवतार प्रयोजन
की व्याख्या 3

ऋग्वेद में अवतारवाद के बीज और अवतारवाद
की अवधारणा 4

अथर्ववेद और यजुर्वेद में अवतार शब्द का प्रयोग
एवं अर्थ 5 – 6

ब्राह्मण ग्रन्थों में अवतारवाद की
अवधारणा 7

पाणिनि के अनुसार अवतार शब्द की व्युत्पत्ति
और निरुक्ति 7 – 8

अवतार शब्द के पर्याय 8

उपनिषद् ग्रन्थों में अवतारवाद की
अवधारणा 9

वैदिक इन्द्र और विष्णु के कार्य 10 – 16
अवतारों के मूल
इन्द्र का पराक्रम
विष्णु का त्रिविक्रमत्व
वामनावतार एवं नृसिंहावतार की ध्वनि

अध्याय	विषय		पृष्ठ संख्या
तृतीय अध्याय	: अवतारवाद के विविध रूप अंश, कला और विभूति		146 - 176
	अंशावतार - परम्परा	147-152	
	कलावतार - परम्परा	152-155	
	षोडश कलावतार	154	
	विभूतिवादी अवतार परम्परा	155-157	
	विभूतिवाद में बहुदेवतावाद	158-160	
	आवेशावतार	162-165	
	अवतार के विविध रूप अंश, अंशांश, कला, आवेश, पूर्णावतार	166-176	
चतुर्थ अध्याय	: प्रयोजन की दृष्टि से दशावतार-परम्परा		177 - 214
	दशावतारों की क्रमबद्धता	177-182	
	दशावतारों का संक्षिप्त निरूपण	182-191	
	मत्स्यावतार और विष्णु	192-194	
	मत्स्यावतार और प्रजापति एवं मत्स्यावतार कथावस्तु	194-196	
	कूर्मावतार और विष्णु	196-198	
	कूर्मावतार और प्रजापति	199-200	
	कूर्मावतार के कार्य	201-203	
	वराहावतार कथावस्तु एवं वराहावतार के कार्य	203-207	
	प्रारम्भिक अवतारों के पशुरूप	208-213	
	अवतारों में प्रतीक योजना	213-214	

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
पंचम अध्याय	: नृसिंहावतार और वामनावतार की पौराणिक कथावस्तु	215 - 239
	नृसिंहावतार कथावस्तु 215-219	
	नृसिंहावतार के कार्य एवं प्रयोजन 219-221	
	नृसिंहावतार में महत्त्व का समावेश 221-223	
	वामनावतार कथावस्तु 223-231	
	बलि वामन कथा का अनेक ग्रन्थों में विपुलता के साथ वर्णन 232-233	
	अवतार द्वारा पशुआहार का परित्याग अवतार का पूर्णरूपेण मानव शरीरधारण 233	
	वामन का त्रिविक्रमत्व 234-236	
	वामनावतार में बौद्धिक शक्ति का उत्कर्ष 237-239	
षष्ठ अध्याय	: अवतारवाद का इतिहास की दृष्टि से विवेचन	240 - 280
	इतिहास की दृष्टि से अवतारवाद 240-243	
	परशुराम और विष्णु 243-246	
	परशुराम के अवतार का प्रयोजन 246-252	
	परशुराम के कार्य 253-255	
	परशुराम की ऐतिहासिकता 255	
	परशुरामावतार में बल का उत्कर्ष 255-258	
	परशुराम और मानवीय गुण 259	
	श्रीराम 259	
	रामावतार और विष्णु 260	
	रामावतार के कार्य एवं प्रयोजन 261-270	
	रामावतार में मानवता का पूर्णविकास 271	
	श्रीराम-कथा की व्यापकता 271-273	
	श्री कृष्णावतार और विष्णु 273	

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या

	श्रीकृष्णावतार के कार्य एवं प्रयोजन 273	
	श्रीकृष्ण की ऐतिहासिकता 275-278	
	श्रीकृष्ण में अवतार की पूर्णता 279	
	राम और श्रीकृष्ण 279	
	पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण में ललितकलाप्रेम 280	
सप्तम अध्याय :	वैष्णवेतर अवतारवाद	281 - 294
	बुद्धावतार	
	दशावतारों में बुद्धावतार परिगणन 282	
	बुद्धावतार में अलौकिकतावादी कथावस्तु 282-287	
	बुद्धावतार के कार्य एवं प्रयोजन 289	
	पुराणों में बुद्धावतार वर्णन 289	
	कल्कि अवतार और विष्णु 291	
	कल्कि अवतार के कार्य औरप्रयोजन 292	
	पुराणों में कल्कि अवतार-वर्णन 292	
	कल्कि अवतार पर मतमतान्तर 293-294	
अष्टम अध्याय :	उपसंहार	295 - 310
परिशिष्ट	सहायक ग्रन्थ सूची	311 - 318

****
*****
***
*

प्रथम - अध्याय

भूमिका

अलंकारवाद की अवधारणा

प्रथम - अध्याय

भूमिका

अवतारवाद की अवधारणा :

भारतीय वाङ्मय में अवतारवाद का स्थान अति महत्वपूर्ण है। न केवल आदि कवि वाल्मीकि विरचित रामायण में ही अवतारवाद का वर्णन हमें उपलब्ध होता है, प्रत्युत महाभारत और पुराण ग्रन्थों में भी अवतारवाद से सम्बन्धित कथाएँ प्रचुरता से प्राप्त होती है। कुछ विद्वान् मानते हैं कि प्राचीन वैदिक साहित्य में अवतारवाद का कोई स्थान नहीं था, वैदिक काल में आर्य लोग प्रकृति की शक्तियों की अपने आराध्यदेव के रूप में आराधना और स्तुति किया करते थे। वैदिक काल के देवता अग्नि, इन्द्र, उषा, सवितृ, वरुण, रुद्र, वायु, मित्रावरुण, विश्वेदेव इत्यादि थे, उस काल में अवतारवाद पर विश्वास करने के कोई चिन्ह स्पष्ट रूप से दिखाई देते हुए नहीं प्रतीत होते। कुछ लोगों को तो यहाँतक भ्रम बना हुआ है कि 'अवतार' शब्द का उल्लेख महाकाव्य काल में ही हुआ है और महाकाव्य काल के पूर्व वैदिक काल में तथा वैदिक काल के पूर्व सिन्धु घाटी सभ्यता काल में अवतार शब्द का न तो उल्लेख हुआ है और न ही ~~कोई~~ अवतारवाद की भावना के समर्थन में कोई लक्षण ही प्राप्त हुए हैं। किन्तु यदि गम्भीरता से विचार कर देखा जाये तो हमें विदित हो जाता है कि अवतार शब्द से मिलता-जुलता प्रथम प्रयोग विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद संहिता में हुआ है।[1]

---

1. ऋग्वेद संहिता 6·29·2, सातवलेकर तृतीय संस्करण 1957, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, पृष्ठ 355.

उक्त ऋग्वैदिक मन्त्र में जो 'अवतारीः' शब्द का उल्लेख हुआ है, वह अव उपसर्गपूर्वक 'तृ' धातु से निष्पन्न हुआ है। वेदों के व्याख्याकार आचार्य प्रवर सायण के अनुसार उक्त मन्त्र का अर्थ है - "हे इन्द्र - आप मेरी इन स्तुतियों से, मेरी सेना की रक्षा करते हुए शत्रु के कोप को नष्ट कर दीजिए और मेरी इन स्तुतियों से ही आप यज्ञादि कर्म के लिए पूजन हेतु तत्पर लोगों के विघ्न बाधाओं अथवा संकटों को दूर कीजिए। सायणाचार्य के अनुसार 'अवतारी' शब्द का अर्थ विघ्न बाधा अथवा अन्तराय है।[1] उन्होंने कहा है कि यज्ञादि कर्म करने वाले यजमानों के विघ्नों का विनाश कीजिए। उक्त मन्त्र में विघ्नों को नष्ट करने के लिए इन्द्र से प्रार्थना की गयी है। विघ्न निवारण का जो कार्य वैदिक काल में इन्द्र के द्वारा किया जाता है, वही कार्य अवतार का भी प्रयोजन है क्योंकि विष्णु का अवतार भी युग-युग में संकट निवारणार्थ होता रहा है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि "हे भारतवंशी अर्जुन जब जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म का अभ्युत्थान होता है, मैं तब तब प्रत्येक युग में अवतार लेता हूँ।[2]

---

1. यज्ञादिकर्मकृते यजमानायावतारीः विनाशय।
   सायणभाष्य, ऋग्वेद संहिता 6-25-2
2. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
   अभ्युत्थानम् अधर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम्।
   श्रीमद्भगवद् गीता अध्याय 4.7.

श्रीकृष्ण अर्जुन से आगे कहते हैं कि "सज्जनों" की रक्षा के लिए और दुष्टों के विनाश के लिए तथा धर्म की स्थापना के लिए मैं युग-युग में प्रादुर्भूत होता हूँ ।"[1] श्रीमद्भगवद् गीता के भाष्य में भगवान् शंकराचार्य श्रीकृष्ण के अवतार का प्रयोजन बतलाते हुए कहते हैं कि चिरकाल के बाद जब धर्मानुष्ठान करने वालों के अन्तःकरण में कामनाओं का विकास होने से विवेक विज्ञान का ह्रास हो जाना ही जिसकी उत्पत्ति का कारण है, ऐसे अधर्म से धर्म दबता जाने लगा और अधर्म की वृद्धि होने लगी तब जगत्की स्थिति सुरक्षित रखने की इच्छा वाले वे आदिकर्ता नारायण नामक श्री विष्णु भगवान भूलोक के ब्रह्म की अर्थात् भूदेवों [ब्राह्मणों] के ब्राह्मणत्व की रक्षा करने के लिए श्री वसुदेव जी से श्री देवकी जी के गर्भ में अपने अंश से [लीला विग्रह] से श्री कृष्ण रूप से प्रकट हुए यह प्रसिद्ध है ।[2] इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि वैदिक काल में धर्म संस्थापना का और अधर्मोन्मूलन का जो कार्य इन्द्र के द्वारा किया जाता था, वही कार्य बाद में विष्णु ने किया है । इसलिए यह सम्भव है कि कालान्तर में विष्णु के मानव रूप को अवतार की संज्ञा प्रदान की गई ।

---

1. परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
   धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे - युगे ॥
   श्रीमद् भगवद्गीता अध्याय 4·8.
2. दीर्घेण कालेन अनुष्ठातृणाम कामोद्भवाद् हीयमान विवेक विज्ञान हेतुकेन अधर्मेण अभिभूयमाने धर्मे प्रवर्धमाने च अधर्मे, जगतः स्थितिं परिपिपालयिषुः आदिकर्ता नारायणाख्यो विष्णुर्भौमस्य ब्रह्मणो ब्राह्मणत्वस्य रक्षणार्थं देवक्यां वासुदेवाद् अंशेन कृष्णः किल संबभूव ।
   श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य [उपोद्घात] गीताप्रेस गोरखपुर संस्करण पृष्ठ-14.

यही नहीं, वैदिक साहित्य में अवतार का बीज स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है। यदि ऋग्वेद संहिता का अनुशीलन परिशीलन किया जाये और उसके मन्त्रों का मंथन किया जाये तो हमें अवतार के संकेत या अवतार का बीज प्रकट होता हुआ प्रतीत होने लगेगा। विद्वान् अवतारवाद और पुनर्जन्मवाद का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध मानते हैं। पुनर्जन्म और आत्मा के संसरण के सिद्धान्त ऋग्वैदिक मंत्रों में उपलब्ध हैं। ऋग्वेद संहिता 3/53/8 में बतलाया गया है कि इन्द्र अपनी माया से विभिन्न रूप धारण करता है।[1] इसी प्रकार ऋग्वेद संहिता 6/47/18 में भी यही बात कही गयी है कि इन्द्र माया के द्वारा पुरुरूप अर्थात् अनेक रूपों वाला हो जाता है।[2] ऋग्वेद संहिता 1/51/13 में यह कहा गया है कि इन्द्र ने वृषणश्व की मेना नाम की दुहिता का रूप धारण किया था।[3] इसी प्रकार ऋग्वेद संहिता 8/17/13 में यह बतलाया गया है कि इन्द्र ने 'शृङ्गवृष' के पुत्र का रूप धारण किया था।[4] इन उद्धरणों से यह प्रतीत होता है कि ऋग्वैदिक काल में अवतार की अवधारणा विद्यमान थी।

---

1. रूपं रूपं मघवा बोभवीति, मायाः कृण्वानस्तन्वं परि स्वाम्।
   त्रिर्यद् दिवः परि मुहूर्तमागात्, स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा॥
   ऋग्वेद संहिता 3/53/8.
2. रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव, तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
   इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते, युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश॥
   ऋग्वेद सं० 6/47/18.
3. अददा अर्भां महते वचस्यवे, कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते।
   मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या॥ ऋ०सं० 1/51/13
4. यस्ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः।
   न्यस्मिन् दध्र आ मनः॥ ऋ०सं० 8/17/13.

श्रीमद्भागवत महापुराण 1/3/1 में यह बतलाया गया है कि भगवान् का प्रथम अवतार (पुरुष) रूप में हुआ था ।[1] तदनुसार भगवान् ने महदादि प्राकृतिक उपादानों से सब लोकों के निर्माण की इच्छा होते ही उन्होंने महत्तत्त्व आदि से निष्पन्न पुरुष रूप ग्रहण किया था । उसमें दस इन्द्रियाँ, एक मन, पाँच महाभूत यह सोलह कलायें थीं । श्रीमद्भागवत महापुराण के उक्त कथन के समर्थन हेतु यदि पुराण काल से पूर्व वैदिक काल में दृष्टि डालें तो हमें ऋग्वेद संहिता के दशम मण्डल के 21वें सूक्त में पठित मन्त्र में आलंकारिक पुरुष सूक्त के दर्शन प्राप्त होते हैं जिसमें पुरुष को सहस्र सिरों वाला, सहस्र आँखों वाला, सहस्र चरणों वाला कहा गया है । वह पुरुष भूमि को चारों ओर से व्याप्त कर दश अंगुल परिमाण में ब्रह्माण्ड को पार करके स्थित है ।[2] श्रीमद्भागवत महापुराण 1/3/5 के अनुसार भगवान् का उपर्युक्त वैदिक 'पुरुषरूप' परवर्ती नाना अवतारों का बीज है जिसके अंशांश से न केवल देव वरन् तिर्यक् तथा नर आदि की सृष्टि होती है, इसमें कहा गया है कि भगवान् का यही पुरुष रूप जिसे नारायण कहते हैं ; अनेक अवतारों का अक्षय कोष है अर्थात् इसी से सारे अवतार प्रकट होते हैं । इस रूप के छोटे से छोटे अंश से देवता, पशु, पक्षी और मनुष्यादि योनियों की सृष्टि होती है ।[3]

अव + तॄ धातु से निष्पन्न होने वाला एक दूसरा शब्द "अवतर" ऋग्वेद 10/3/9 में मिलता है ।[4] सायणाचार्य ने अपने भाष्य में कहा है कि

---

1. जगृहे पौरुषं रूपं भगवान् महदादिभिः ।
सम्भूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥ श्रीमद्भागवत महापुराण 1/3/1
2. सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ ऋ0 सं0 10/21/1.
3. एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् ।

... शेष अगले पृष्ठ पर

इस मंत्र विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल में अर्थात् ऋग्वेद, अथर्ववेद और यजुर्वेद में जिन 'अवतारी' 'अवन्तर' आदि शब्दों का अर्थ अवतार के रूप में भी लिया जाता है, इससे यह प्रतीत होता है कि सुदूर प्राचीनकाल अर्थात् वैदिक काल में भी अवतार की अवधारणा रही है, फिर इन्द्र के द्वारा अनेक रूपों को धारण करना भी अवतार प्रक्रिया की ओर ही इंगित करता सा प्रतीत होता है ।

ऋग्वेद संहिता के उपर्युक्त स्थलों में अवतारवाद के जो बीज दृष्टि-गोचर होते हैं, वे ब्राह्मण ग्रन्थों में विशेष रूप से विकसित दिखाई देते हैं । 'शतपथ ब्राह्मण' 1/8/1/1 का कथन है कि प्रजापति ने ही मत्स्य का अवतार लिया था । इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण 7/5/1/5, 14/1/2-11 तथा 14/1/2-11 आगे कहता है कि प्रजापति ने ही कूर्म का तथा वराह का अवतार लिया था । प्रजापति के वराह रूप धारण करने की कथा तैत्तिरीय ब्राह्मण 1/1/3-5 में तथा काठक संहिता 8/2 में भी बीज रूप में उपलब्ध होती है ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण 2/8/3/3 में अवतारी शब्द का प्रयोग हुआ है, इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण 9/1/2/27 तथा मैत्रायणी संहिता 2/10 में अवतार शब्द का प्रयोग हुआ है किन्तु इन सबके अर्थ वही है जो ऊपर बतलाये जा चुके हैं।

पाणिनि के अनुसार अवतार शब्द की व्युत्पत्ति और निर्वचन :

वैदिक साहित्य के पश्चात् महावैयाकरण पाणिनि अष्टाध्यायी 3/3/120 में 'अवतार' और अवस्तार शब्दों का उल्लेख हुआ है । अव + तृ

धातु से 'अवे तृस्त्रोर्घञ्' सूत्र से घञ् प्रत्यय होकर अवतार तथा अवस्तार शब्द की निष्पत्ति होती है । पाणिनि के अनुसार अवतार शब्द का अर्थ कूप में उतरना है तथा अवस्तार का अर्थ जवनिका है ।[1] पाणिनि का समय ई०पूर्व 700 वर्ष माना जाता है ।[2] पाणिनि के इस कथन से यह प्रतीत होता है कि अवतार शब्द का अस्तित्व उनके समय में था और जिसका अर्थ कूपादि में उतरने के अर्थ में होता रहा है । पाणिनि के परवर्ती वैयाकरणों ने भी उपर्युक्त सन्दर्भ में पाणिनि का ही अनुकरण किया है । वामन जयादित्य ने काशिका[3] में तथा अन्नम्भट्ट ने 'मिताक्षरा' में अवतारः कूपादेः का ही बार-बार उदाहरण दिया है ।[4]

हिन्दी विश्वकोश का अवलोकन करने पर यह विदित होता है कि विश्वकोश के सम्पादक नगेन्द्रनाथ वसु ने अवतार शब्द के अनेक अर्थ बतलाये हैं और आधार रूप में उपर्युक्त पाणिनि सूत्र को उद्धृत किया है । फलतः हिन्दी विश्वकोश के अनुसार अवतार शब्द का अर्थ है ऊपर से नीचे आना, उतरना, पार होना, शरीर धारण करना, जन्म ग्रहण करना, प्रतिकृति, मकान, प्रादुर्भाव और अवतरण तथा उद्भव आदि है । यह सब अवतार शब्द के पर्यायवाची माने जाते हैं ।[5]

---

1. अवे तृस्त्रोर्घञ् अवतारः कूपादेः अवस्तारो जवनिका । ।
   अष्टाध्यायी 3/3/120
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास - श्री बलदेव उपाध्याय,संस्करण सं0-2012
   पृष्ठ 134.
3. काशिका तृतीय संस्करण 1928,बनारस पृष्ठ 241.
4. अन्नम भट्ट कृत मिताक्षरा,पा0सू0 3/3/120.
5. हिन्दी विश्वकोश, नगेन्द्र नाथ वसु , पृष्ठ-179.

अवतारवाद का अर्थ उत्पत्तिमूलक है, इसकी प्रथम प्रतीति हमें यजुर्वेद के एक मन्त्र में होती है । इस मन्त्र में पुरुष को अजन्मा होते हुए भी जन्म लेने वाला कहा गया है ।[1] इसी प्रकार महानारायणोपनिषद् में कहा गया है कि पुरुष भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों में जन्म लेता है[2]

केनोपनिषद् 3/2 में कहा गया है कि सर्वशक्तिमान् ब्रह्म यक्ष के रूप में प्रकट होता है और केनोपनिषद् 3/1 में यह भी बतलाया गया है कि ब्रह्म ने देवताओं के कल्याणार्थ विजय प्राप्त की थी । ब्रह्म की यह विजय देवताओं को गौरव प्रदान करने वाली मानी गई थी । इस विजय से देवताओं को जो अभिमान हुआ था, उसे भी ब्रह्म ने नष्ट किया था । ब्रह्म के यक्ष रूप में आविर्भाव होने के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि- बृहदारण्यक 5/4/1 में भी यक्ष के प्रथमज का उल्लेख आया है और वहाँ यक्ष को प्रथम उत्पन्न सत्य ब्रह्म कहा गया है ।[3] इस प्रकार उपर्युक्त उद्धरणों से यह विदित हो जाता है कि अवतारवाद की मूल प्रेरक सामग्री वैदिक काल में विद्यमान थी ।

---

1. अजायमानो बहुधा विजायते ।
   यजु० 31/19.
2. एषो हि देवः प्रदिशोनु सर्वाः पूर्वो हि जातः सगर्भेअन्तः
   स विजायमानः, स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्मुखस्तिष्ठति सर्वतोमुखः
   महानारायणोपनिषद् 2: ।
3. यो प्रथमजं वेद सत्यम् ब्रह्मेति ।
   बृहदारण्यकोपनिषद् 5/4/1.

वैदिक साहित्य में विशेष रूप से ऋग्वेद में इन्द्र सर्वाधिक प्रसिद्ध और शक्तिशाली देव रहा है और वैदिक काल में विष्णु अपने प्रारम्भिक रूप में अन्य देवों के समान एक देव मात्र रहे हैं। महाकाव्य काल और पुराण काल में विष्णु तथा उनके अवतारों का जो विकास हुआ है। उनके उपादान कारण का सम्बन्ध वैदिक इन्द्र और प्रजापति से अधिक रहा है। वैसे वैदिक काल के विष्णु में अपनी अनेक विशेषतायें रही हैं जिनसे वे परवर्ती साहित्य महाकाव्य काल तथा पुराणकाल में सर्वश्रेष्ठ बन गए हैं। अवतारवाद का प्रमुख प्रयोजन है, दुष्ट दलन व पृथ्वी का भार हरण करना, धर्म की स्थापना तथा अधर्म का उन्मूलन करना, सत्य की विजय और असत्य की पराजय करना। इनसबके लिए बल और पराक्रम की आवश्यकता होती है। यह बल और पराक्रम वैदिकविष्णु में पूर्ण रूप से विद्यमान है। ऋग्वेद संहिता के प्रथम मण्डल के बाइसवें विष्णु सूक्त में विष्णु के बल पुरुषार्थ और पराक्रम का वर्णन प्राप्त होता है। इस सूक्त में कहा गया है कि विष्णु ने अपने तीन पगों से सम्पूर्ण पृथ्वी को नाप लिया था।[1] इसी सूक्त के 18वें मन्त्र में विष्णु को धर्मों का धारण करने वाला और रक्षक बताया गया है। मेधातिथि काण्व ऋषि कहते हैं कि विष्णु के पराक्रमी कार्यों को देखिए जिनसे यजमानों के व्रत पूरे होते हैं। विष्णु इन्द्र का सहयोगी सखा है। ऋषि मुनि

---

1. अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे,
   पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥16॥
   इदम् विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्,
   समूळ्हमस्य पांसुरे । ॥17॥
   ऋग्वेद प्रथम मण्डल, सूक्त 22·16/17.

विष्णु के परमपद का अनुसरण करते हैं ।[1] ऋग्वेद संहिता के सप्तम मण्डल सूक्त 99 वें में बताया गया है कि विष्णु सुन्दर गौ वाली पृथ्वी को धारण करते हैं । उसमें यह भी कहा गया है कि विष्णु के सदृश देव नहीं हुआ है, उसने अपनी महिमा का उत्कर्ष कर लिया है । उसने अपने बल और पराक्रम की किरणों से सम्पूर्ण पृथ्वी को आलोकित कर रखा है ।[2] इसी प्रकार ऋग्वेद संहिता 1/155/6 में विष्णु के सम्बन्ध में बताया गया है कि विष्णु काल के 94वें अंशों को चक्र के समान संचालित करते हैं, वे नित्य तरुण और कुमार हैं, उनका शरीर महान है, उन्होंने अपने चरण से पृथ्वी को माप लिया है, वे रवि के समान दीप्तिमान हैं ।[3] वे बड़े-बड़े पर्वतों का लंघन कर जाते हैं

---

1. त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
   अतो धर्माणि धारयन् ॥ ॥18॥
   विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
   इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ॥19॥
   तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
   दिवीव चक्षुराततम् ॥ ॥20॥
   तद् विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
   विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥21॥ ऋग्वेद सं0 मण्डल, 1-सूक्त22-18से21.
2. परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।
   उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देवत्वं परमस्य वित्से ॥ ॥1॥
   न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप ।
   उदस्तभ्ना नाकमृष्वं बृहन्तं दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः ॥
   ऋग्वेद संहिता 7/99-1/2.
3. विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
   यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥
   प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
   यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ ॥2॥
   ऋग्वेद संहिता 155/1/2.

उनका पुरुषार्थ महान् है ।

ऋग्वेद संहिता 7/40/5 के अनुसार अभिमानी देवता विष्णु के अंश हैं ।[1] इसी प्रकार ऋग्वेद संहिता 7/100/1,3,4 में विष्णु को मनुष्यों का हितैषी तथा लोगों के द्वारा पूजनीय बतलाया गया है और यह भी कहा गया है कि विष्णु ने पृथ्वी को मनुष्यों के निवासार्थ देने के लिए उसका पदक्रमण किया था । वे युद्ध में विविध रूपों को धारण कर लेते हैं ।[2] शतपथ ब्राह्मण 1/9/39 में कहा गया है कि विष्णु अपने तीन पदक्रमों के द्वारा सभी देवों से श्रेष्ठ हो गए हैं, इसी प्रकार उक्त बात का समर्थन करते हुए तैत्तिरीय संहिता 11/13/1 में कहा गया है कि विष्णु वामन का रूप धारण कर तीन पदों से तीनों लोकों के विजेता बन जाते हैं ।

अतः उपर्युक्त वैदिक उद्धरणों से स्पष्ट है कि विष्णु इन्द्र के मित्र हैं और शक्ति पराक्रम तथा पुरुषार्थ में देवताओं से आगे हैं । ये पृथ्वी के विजेता और उसको धारण करने वाले हैं, अपनी इन्हीं क्रियाओं के कारण देवताओं से श्रेष्ठ बन जाते हैं ।

---

1. अस्य देवस्य मीळ्हुषो वया विष्णोरेषस्य प्रभृथे हविर्भिः ।
   विदे हि रुद्रो रुद्रियं महित्वं यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ॥
   ऋ0 संहिता 7/40/5.
2. वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।
   ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ॥
   ऋ0 संहिता 7/100/1/3/4.

उपर्युक्त कथन से हम विष्णु के वामनावतार और नृसिंहावतार के मूल रूपों की ध्वनि का अनुमान लगा सकते हैं ।

पृथ्वी का भार हरण करना अवतारवाद का प्रमुख प्रयोजन है, भारतीय वाङ्मय में यह देखा जाता है कि इन्द्र और देवगण असुरों से पृथ्वी की रक्षा के लिए विष्णु अवतार ग्रहण करते हैं । पृथ्वी की रक्षा का कार्य महत्वपूर्ण है, यह बात अथर्ववेद संहिता के पृथ्वीसूक्त द्वारा विदित हो जाती है । अथर्ववेद संहिता 12/1/7 में कहा गया है कि देवता लोग सोते नहीं हैं और बड़ी सावधानी से पृथ्वी की रक्षा करते हैं ।[1] अथर्ववेद संहिता 12/1/10 में कहा गया है कि अश्विनी कुमारों द्वारा विनिर्मित पृथ्वी पर विष्णु ने अपने तीन कदम रखे थे । और इन्द्र ने इसी पृथ्वी को शत्रुरहित बना दिया था और अपने वश में कर लिया था ।[2] वेद 12/1/48 के अनुसार यह कहा गया है कि पृथ्वी पाप और पुण्य से युक्त है और यह बड़े-बड़े पदार्थों को धारण करती है । वराह ने उसकी खोज की है और अन्ततः यह वराह को प्राप्त हुई है ।[3] अथर्ववेद के इन अंशों से विष्णु के वराहावतार की ध्वनि निकलती प्रतीत होती है ।

---

1. यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।
   सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥
   अथर्ववेद संहिता 12/1/7.
2. यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।
   इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ।
   सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥
   अथर्ववेद संहिता 12/1/10
3. अथर्ववेद 12/1/48.

का सम्बन्ध वेदों में प्रजापति के साथ स्थापित होने पर भी परवर्ती काल में विष्णु की प्रधानता के कारण इन अवतारों का सम्बन्ध विष्णु के साथ जोड़ दिया गया है । यह ज्ञातव्य है कि यद्यपि वैदिक साहित्य में और ब्राह्मण साहित्य में अवतारवाद का बीज अवश्य ही विद्यमान था किन्तु वैदिक काल में न तो विष्णु की इतनी प्रधानता थी और न इन अवतारों की ऐसी पूजा होती थी ।

भारतीय वाङ्मय के क्षितिज में जब भागवत सम्प्रदाय उदय होता है और राम और कृष्ण की भक्ति प्रारम्भ होती है तब अवतार-वाद का उत्कर्ष हमारे समक्ष उपस्थित होता है । आरण्यक युग में वासुदेव कृष्ण को विष्णु का अवतार माना जाने लगा था । तैत्तिरीय आरण्यक प्रपाठक 10, अनुवाक 1/3 में वासुदेव कृष्ण के लिए गायत्री मंत्र से स्तुति की गई ।[1] महावैयाकरण पाणिनि अपनी अष्टाध्यायी में एक सूत्र के द्वारा वासुदेव और अर्जुन का एक साथ उल्लेख कर उनको भक्ति के प्रति लक्षित किया है ।[2] वैष्णवागमों के उदय होने पर वासुदेव कृष्ण और नारायण पर्याय बन जाते हैं और फिर तो अवतारवाद के विकास का युग ही प्रारम्भ हो जाता है । श्रीमद्भगवद्गीता का युग जब प्रारम्भ होता है तब तो

---

1. नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि ।
   तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥
   तैत्तिरीय आरण्यक प्रपाठक 10, अनुवाक 1/3.
2. वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन् — पाणिनीय अष्टाध्यायी 4.3.98

वैष्णव धर्म का अवतारवाद एक अंग ही बन जाता है ।[1]

<u>महाकाव्य काल में अवतार शब्द प्रयोग एवं अर्थ :</u>

महाकाव्य काल का प्रारम्भ होने के पश्चात् वाल्मीकि विरचित रामायण में तथा वेदव्यास प्रणीत महाभारत में श्रीराम तथा श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार माने जाते हैं । ये दोनों ही अवतार क्षत्रिय कुलों में होते हैं । राजाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मनु ने मनुस्मृति में कहा है कि राजाओं के शरीर में विभिन्न देवों का अंशावतार रहता है ।[2] वैष्णव अवतार वाद में क्षत्रिय राम और कृष्ण तत्कालीन ब्राह्मण भक्तों के उपास्य रूप में प्रचलित हुए । इससे ब्राह्मणों ने क्षत्रिय वर्ग की उत्कृष्टता प्रदान की और इस कार्य करने के कारण क्षत्रियों को महत्व दिया गया । बृहदारण्य-उपनिषद् 3/1/4-11 के अनुसार ब्रह्म अकेले होने के कारण विभूतियुक्त कर्म करने में समर्थ नहीं था । इसलिए उसने इन्द्र, वरुण, सोम, रुद्र, मेघ, यम, मृत्यु और ईशान आदि को उत्पन्न किया । इससे भी क्षत्रिय कुल की उत्कृष्टता सिद्ध होती है और इससे इन मान्यताओं को बल मिलता है कि सामूहिक अवतार, अंशावतार और विभूति अवतार इन सभी का कोई प्राचीन रूप था । ऐसा होने के कारण क्षत्रियों की उपासना की भावना उत्पन्न हुई और राम-कृष्ण समाज के उपास्य बन गए । अवतारवादी

---

1. परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम् ।
   धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे - युगे ॥
   श्रीमद् भागवद् गीता अध्याय 4/8.
2. मनुस्मृति ।

साहित्य में विष्णु के अवतारी रूपों में अनेक गुणों का संयोग माना जाता था । अवतारों का शरीर दिव्य शरीर कहा जाता था और उनके जन्म तथा मृत्यु के सम्बन्ध अनेक अलौकिक कल्पनाओं से भरे रहते थे । इनका शरीर देवमय अथवा ब्रह्ममय माना जाता था ।

रामायण और महाभारत दोनों ही महाकाव्यों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय देवासुर संग्राम है जो अवतारवाद की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है । देवासुर संग्राम को वैदिक देवता अपने वैदिक रूप में भाग नहीं लेते वरन् वे महाकाव्य काल में अवतरित रूप में आकर युद्ध करते थे । महाकाव्य काल तक वैदिक देवताओं के पुर्नजन्म का प्रभाव भी लक्षित होता है । इससे यह कल्पना की जा सकती है कि पूर्वकाल में देवता या दानव सभी मनुष्य या राक्षस के रूप में अवतार ग्रहण करते हैं । महाकाव्य के अनेक पात्र अंशावतार माने गए हैं । भारतीय बहु देववाद में केवल प्राकृतिक तत्व ही देवता नहीं है अपितु मनुष्य में व्याप्त अनेक चारित्रिक गुणात्मक भावों का भी दैवीकरण वैदिक युग के अंतिम चरण में हो गया था ।

रामायण में भी देवासुर संग्राम का वर्णन है । इसमें भी विष्णु देवताओं के शत्रुओं के विनाश के लिए अवतार लेते हैं । वाल्मीकि रामायण के पढ़ने से यह विदित होता है कि लब्धाभिमानी रावण के अनाचार पापाचार से तथा अत्याचार से देवता आतुर गए थे । अतएव एक बार उन्होंने संगठित होकर रावण कृत विपत्तियों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा जी से परामर्श करने आये । उसी समय पीताम्बरधारी कमलापति

रामायण के अयोध्याकाण्ड में सुमित्रा कौशल्या को आश्वस्त करती हुई कहती है कि राम वन को गए हैं तो तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए । क्योंकि राम सूर्य के भी सूर्य हैं, अग्नि के भी अग्नि हैं, प्रभु के भी प्रभु हैं, लक्ष्मी के भी लक्ष्मी हैं, कीर्ति के भी कीर्ति हैं और क्षमा के भी क्षमा हैं सब देवताओं के भी देवता हैं और प्राणियों के प्राण हैं । हे देवि, वे चाहे वन में रहें या नगर में रहें दोनों ही उनके लिए समान हैं ।[1]

वाल्मीकि रामायण में श्रीराम ने अपने जिस सामर्थ्य का प्रकाशन किया है, उससे उनके ईश्वरत्व का ध्यान स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होता है । श्रीराम का कथन है कि जो व्यक्ति एक बार भी शरणागत होकर 'मैं तुम्हारा हूँ' कह कर मुझसे कुछ माँगता है मैं, उसे समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ, यह मेरा व्रत है ।[2] कोई अनीश्वर व्यक्ति सभी प्राणियों को सभी प्राणियों से अभयदान नहीं दे सकता । हनुमान जी ने रावण के सामने राम के परमेश्वर होने की बात निःशंक रूप से कही थी। हनुमान जी ने रावण से कहा था कि समस्त लोकों और समस्त चराचर का

---

1. सूर्यस्यापि भवेत्सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः ।
   दैवतं देवतानां च भूतानां भूतसत्तमः ।
   वा०रा० (अयो० 44/15-16)
2. सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
   अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥
   वाल्मीकि रामायण । पृ० 50

वाल्मीकि रामायण में अवतारवाद का प्रमुख प्रयोजन देव शत्रुओं या असुरों का विनाश है जिसके लिए न केवल विष्णु ने ही अवतार लिया अपितु उनकी सहायता के लिए वैदिक देवता भी सामूहिक रूप से अवतरित होते हैं ।[1] ब्रह्मा की प्रेरणा से राम की सहायता के लिए अनेक देव विभिन्न वानरों के पुत्रों के रूप में उत्पन्न होते हैं । माया को जानने वाले शूर वायु के समान वेग वाले नीति के ज्ञाता, बुद्धि सम्पन्न और विष्णु के समान पराक्रम वाले अनेक ऋषि और महात्मा अवतार लेते हैं।

वाल्मीकि रामायण 6/20/14 में राम को श्रीकृष्ण के समान अनेक विभूतियों से युक्त उनके अवतारी रूप का परिचय दिया गया है।

इस महाकाव्य में जहाँ एक ओर वैदिक तत्वों से युक्त अवतारवाद के दर्शन होते हैं जिसमें विकसित विष्णु के समान वीर्यवान् राम विष्णु के अवतार हैं तथा उनका मुख्य प्रयोजन असुरों का विनाश है जिसमें उनकी सहायता के लिए अन्य वैदिक देवता भी अवतार लेते हैं । दूसरी ओर इस महाकाव्य में कतिपय पौराणिक तत्वों से भरे हुए रामायण के अवतारवादी रूप विकसित होते हुए दिखाई देते हैं । यहाँ केवल वैदिक

---

1. पुत्रत्वं तु गते विष्णौ राज्ञस्तस्य महात्मनः ।
   उवाच देवताः सर्वाः स्वयम्भूर्भगवानिदम् ॥
   सत्यसंधस्य वीरस्य सर्वेषां नो हितैषिणः ।
   विष्णोः सहायान् बलिनः सृजध्वं कामरूपिणः ॥
   मायाविदश्च शूरांश्च वायुवेगसमाञ्जवे ।
   नयज्ञान् बुद्धिसम्पन्नान् विष्णुतुल्य-पराक्रमान् ॥
   -वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड 1.2.3.

देवता ही अवतार नहीं लेते अपितु तत्कालीन युग में प्रचलित सिद्ध, गन्धर्व, अप्सरा, नाग आदि के प्राकृतिक अवतार भी होते हैं ।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण में अवतारवाद का समग्र रूप प्राप्त होता है जिसमें श्रीराम को विष्णु का अवतार माना गया है और देवताओं के शत्रुओं का विनाश करना और ऋषियों तथा मुनियों के यज्ञ की रक्षा करना, धर्म की स्थापना और अधर्म का उन्मूलन अवतारवाद का लक्ष्य है ।

महाभारत के अन्तर्गत गीता में अवतारवाद का सैद्धान्तिक रूप मिलता है । ऐसा सम्भवतः प्रतीत होता है कि महाभारत के अन्तर्गत भीष्म पर्व में आयी हुई श्रीमद्भगवद् गीता में वर्णित अवतारवाद की अवधारणा से प्रायः सभी पुराण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित प्रतीत होते हैं । श्रीमद्भगवत् गीता में ज्ञान,कर्म , सन्यास योगादि पर तो विचार प्राप्त होते ही हैं किन्तु उसके चौथे अध्याय में अवतारवाद का स्पष्ट उल्लेख किया गया है । गीता के चौथे अध्याय के चतुर्थ श्लोक में अर्जुन श्री कृष्ण से पूछता है[2] कि आपका जन्म तो अर्वाचीन है अर्थात अभी

---

1. अध्यात्मकोपुरुषाः त्रिमूर्तिरभिधीयते ।
   यस्य देवस्य चतुर्थं देवो यस्य पराक्रमः ।
   अवतारा सर्व तेन तस्य तस्य पृथक्-पृथक् ।
   मोक्षार्थेषु योगेश्वराः त्रिविधुक्तविक्रमाः ।
   ऋषिषु च तथा ब्रह्मा वानराः किन्नरेषु च ।
   देवा महर्षि गन्धर्वाश्चाप्सरसो वराङ्गनाः ।
   नागाः किंपुरुषाश्चैव सिद्धविद्याधरोरगाः ।
   बहवो जन्मनामुत्पन्नास्तत्र सहस्रशः ।। वा०रा०उत्तरकाण्ड 17,1912
2. श्रीमद्भगवद्गीता 4/4.

भी हूँ, तो भी अपनी त्रिगुणात्मिका वैष्णवी माया को जिसके वश में सम्पूर्ण जगत् है जिससे मोहित हुआ मनुष्य वासुदेव रूप अपने आपको नहीं जानता । उस अपनी प्रकृति को अपने वश में रखकर केवल अपनी लीला से ही शरीर वाला सा जन्म लिया, हुआ सा हो जाता हूँ ।[1] अन्य लोगों की भाँति वास्तव में मैं जन्म नहीं लेता हूँ मेरा जन्म कब और किसलिए होता है, यह सुनो, हे भारत । वर्णाश्रम आदि जिसके लक्षण हैं एवं प्राणियों की उन्नति एवं परकल्याण का जो साधन है, उस धर्म की जब-जब हानि होती है और अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तब-तब मैं ही माया से अपने स्वरूप को रचता हूँ । सन्मार्ग में स्थित साधुओं का परित्राण अर्थात् उनकी रक्षा करने के लिए पाप कर्म करने वाले दुष्टों का नाश करने के लिए और धर्म की अच्छी प्रकार स्थापना के लिए मैं युग-युग अर्थात् प्रत्येक युग में प्रकट होता हूँ ।[2] श्रीकृष्ण ने अर्जुन से यह भी कहा है कि मेरा मायामय जन्म और साधुरक्षण आदि कर्म दिव्य हैं अर्थात् अलौकिक हैं अर्थात् केवल ईश्वर शक्ति से ही होने वाले हैं । इस प्रकार उनके जन्म और कर्म दोनों को दिव्य अर्थात् मनुष्येतर माना गया है ।

उपर्युक्त उद्धरणों से सुस्पष्ट है कि ईश्वर का अवतार

---

1. अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
   प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥
   श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 4/6 शांकरभाष्य,
2. श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 4/7-8, शांकरभाष्य

धर्म की स्थापना और साधुओं का परित्राण करना है, महाभारत के ही एक अंश के रूप में विख्यात हरिवंश पुराण में श्रीमद्भगवत गीता में वर्णित अवतार तथा श्रीकृष्ण से सम्बद्ध साम्प्रतिक अंशावतार का वर्णन किया गया है।[1]

पुराणों में अवतार, अर्थ एवं प्रयोजन :

यद्यपि पाणिनि ने "अवे तृस्त्रोर्घञ्" {3/3/120} सूत्र के द्वारा अवतार शब्द की व्युत्पत्ति बतलायी है जिससे अव + तृ धातु से घञ् प्रत्यय होने पर अवतार शब्द की सिद्धि होती है। "अवतारः कूपादेः अवतारो अवतरणिका" अवतार शब्द की इस व्याख्या के अनुसार अवतार शब्द का अर्थ ऊँचे स्थान से नीचे उतरने की क्रिया है। यह इसका सामान्य अर्थ है किन्तु इसका एक विशिष्ट अर्थ भी है -"किसी महनीय शक्ति सम्पन्न भगवान् या देवता का नीचे के लोक में ऊपर से उतरना तथा मानव या अमानव रूप का धारण करना।[2] इसी अर्थ में पुराणों में आविर्भाव शब्द का भी प्रयोग पाया जाता है। 'अवतार' की बात किसी अलौकिक शक्ति से सम्पन्न व्यक्ति भगवान् विष्णु, शंकर या इन्द्र आदि के लिए ही उपयुक्त मानी जाती है। सर्वशक्तिमान् भगवान् का बिना रूप परिवर्तन किए ही आविर्भाव होना अवतार के भीतर ही माना जाता है। उदाहरण के लिए विष्णु पुराण में कहा गया है कि प्रह्लाद को विपत्ति से उबार करने के

---

1. हरिवंश पुराण 41/17 एवं हरिवंश पुराण 55/8/10.
2. पुराण विमर्श बलदेव उपाध्याय - चौखम्बा विद्या भवन प्रकाशन वाराणसी, संस्करण 1965, पृष्ठ संख्या-163.

लिए विष्णु का अपने इस रूप में आविर्भाव हुआ था ।[1] इसी प्रकार की श्रीमद् भागवत महापुराण के अष्टम स्कन्ध के 3रे अध्याय में गजेन्द्र के उद्धार के लिए विष्णु के प्रादुर्भाव का वर्णन किया गया है । श्री शुकदेव ने परीक्षित जी से कहा है कि हे परीक्षित ! गजेन्द्र ने बिना किसी भेदभाव के निर्विशेष रूप से भगवान् की स्तुति की थी, उस समय सर्वात्मा होने के कारण सर्वदेव स्वरूप स्वयं भगवान श्री हरि प्रकट हो गए ।[2] इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध के तीसरे अध्याय में भगवान के अवतारों का वर्णन किया गया है, उसमें कहा गया है कि सृष्टि के आदि में भगवान ने लोकों के निर्माण की इच्छा की । इच्छा होते ही उन्होंने महत्तत्त्व युक्त पुरुष रूप ग्रहण किया, उसमें दस इन्द्रियाँ एक मन और पाँच महाभूत ये सोलह कलायें थीं । भगवान् का यही पुरुष रूप जिसे नारायण कहते हैं । अनेक अवतारों का अक्षय कोष है । इसी से सारे अवतार प्रकट होते हैं । इस रूप के छोटे से छोटे अंश से देवता, पशु पक्षी और मनुष्य योनियों की सृष्टि होती है ।[3] पुराणों में अवतार की प्रक्रिया के संबंध

---

1. तस्य तच्चेतसो देवः स्तुतिमित्थं प्रकुर्वतः ।
   आविर्बभूव भगवान् पीताम्बरधरो हरिः ॥ विष्णुपुराण 1/20/14

2. श्री शुक उवाच -
   एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं, ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाभिमानाः ।
   नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात् तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥
   श्रीमद्भागवत पुराण 8/3/30.

3. सूत उवाच - जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः ।
   सम्भूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥
   एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् ।
   यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः ॥
   श्रीमद्भागवत पुराण प्रथम स्कन्ध 3/1-5.

में चार मत बतलाये गए जिनमें अवतारवाद का विकास लक्षित होता है । प्रथम मत के अनुसार भगवान् अपना दिव्य मूर्ति का सर्वथा परित्याग कर ही भूतल पर अवतार लेते हैं । उनका यह अवतरण यथाविधि जन्म धारण करके हो सकता है और बिना जन्म धारण करके रूप परिवर्तन के द्वारा भी हो सकता है ।[1] द्वितीय मतानुसार ब्रह्मपुराण का कथन है कि जब-जब अधर्म की वृद्धि होती है और धर्म का ह्रास होता है, तब जनार्दन भगवान अपने स्वरूप को दो भागों में विभक्त करके स्वल्पांश से अवतार लेकर पृथ्वी में धर्म की संस्थापना करते हैं ।[1] तीसरे मत के अनुसार विष्णु अपनी मूर्ति के दो भाग कर देते हैं, पहली मूर्ति भूमि में स्थित होकर तपस्या करती है और दूसरी मूर्ति शेष निद्रा का आश्रय लेकर प्रजाओं की सृष्टि तथा संहार के विषय में विचार किया करती है । यह हजार युगों तक यह मूर्ति शयन करने के पश्चात् अपनी अमूर्त निद्रा से उठती है तथा कार्य के अनुकूल आविर्भूत होती है ।[2]

---

1. यदा यदा हि धर्मस्य वृद्धिर्भवति भो द्विजा: ।
   धर्मश्च ह्रासमभ्येति तदा देवो जनार्दन: ॥
   अवतारं करोत्येवं द्विधाकृत्वाऽऽत्मनस्तनुम् ।
   सर्वेदेव जगत्यर्थे स सर्वात्मा जगन्मय: ॥
   स्वल्पांशेनावतीर्य : धर्मस्य कुरुते स्थितिम् ।
   ब्रह्म पुराण 72/2-3 तथा 9
2. तस्यैका महाराज मूर्तिर्भवति सत्तम ।
   नित्यं दिविष्ठा या राजन् । तपश्चरति दुश्चरम् ॥
   द्वितीया चास्य शयने निद्रायोगमुपाश्रिता ।
   प्रजासंहार सर्गं किमध्यात्मविचिन्तयन् ।
   सुप्त्वा युग सहस्त्रं स प्रादुर्भवति कार्यत: ।
   पूर्णे युग सहस्त्रे तु देव देवो जगत्पति: ॥हरिवंश पुराण [illegible]41/18-20

चतुर्थ मत में ब्रह्म पुराण का यह कथन ध्यान देने योग्य है कि समस्त जगत को व्याप्त करने वाले भगवान् विष्णु ने अपनी मूर्ति को चार भागों में विभाजित किया जिनमें एक निर्गुण तथा तीन मूर्ति सगुण हैं। निर्गुण मूर्ति का नाम है, वासुदेव तथा सगुण मूर्ति के नाम हैं, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। ब्रह्म पुराण आगे कहता है कि वासुदेव मूर्ति निर्लेप शुक्ल, ज्वाला के समूह से दीप्यमान शरीरवाली, योगियों के द्वारा उपासित दूर और पास सर्वत्र रहने वाली तथा गुणों से अतीत होती है। दूसरी मूर्ति का नाम है, शेष या संकर्षण जो अपने मस्तक पर माथे से पृथ्वी को धारण करती है और तमोरूप होने के कारण उसे तामसी कहा जाता है। तृतीय मूर्ति प्रद्युम्न है जिसका कार्य धर्म की स्थापना तथा प्रजा का पालन करना है। इसीलिए यह सत्व प्रधान मूर्ति मानी जाती है। चतुर्थ मूर्ति अनिरुद्ध है जो समुद्र के बीच शेषनाग की शैय्या पर शयन करती है। रज उसका गुण होता है जिससे वह संसार की सृष्टि करती है। इन चारों मूर्तियों में तृतीय मूर्ति जिसका कार्य प्रजा का पालन है और धर्म की व्यवस्था करना। यह मूर्ति जब-जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म का उत्थान होता है तब-तब यह अपने को सृष्ट कर पृथ्वी में अवतरित होती है। अवतार करने वाली यह प्रद्युम्न मूर्ति है जिसका मुख्य कार्य रक्षा करना है। इस मत के अनुसार भगवान की प्रद्युम्न मूर्ति का ही कार्य अवतार लेना तथा धर्म की व्यवस्था करना है। अर्थात् अवतार भगवान के चतुर्थ अंश का ही विकास है। ब्रह्म पुराण का आगे कथन है कि देव, मनुष्य, तिर्यक् योनि में जहाँ जहाँ यह मूर्ति अवतरित होती है, वहाँ उसके

विष्णु पुराण 1/4/17 के अनुसार यह कहा गया है कि विष्णु जो परमतत्व है उसे कोई भी नहीं जानता परन्तु उनका जो रूप अवतारों में प्रकट होता है, उसी की देवगण उपासना करते हैं। पुनः 5/8/67 में इस कथन की पुष्टि करते हुए कहा गया है कि इन्द्रादि देवगण अवतार रूप के पूजक हैं इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि परमब्रह्म विष्णु अपने प्रयोजन के निमित्त सत्यार्थ ही उत्पन्न होते हैं।[1]

अवतारवाद के सन्दर्भ में विष्णु पुराण में सर्वप्रथम युगल अवतार का साविस्तार वर्णन किया गया। विष्णु पुराण 1/8/17-35 में विष्णु और लक्ष्मी के अनेक युगल सम्बन्ध एवं उनके अवतारों की चर्चा करते हुए कहा गया है कि देव, तिर्यक और मनुष्यादि में पुरुषवाची भगवान हरि हैं और स्त्रीवाची देवी लक्ष्मी।[2]

विष्णु जब जब अवतार धारण करते हैं तब तब लक्ष्मी भी उनके साथ अवतरित होती है।[3]

पिछले पेज का शेष-

देवत्वेऽथ मनुष्यत्वे तिर्यग्योनौ च संस्थिता।
पूजिता सम्बन्धेन च वासुदेवेच्छया सदा॥
ददात्यभिमतान् कामान् पूजिता सा द्विजोत्तमाः॥ 41-42
प्रोक्ताप्युरान् हन्ति अस्युद्धिकारस्वकारिणः।
याति देवान् गन्धर्वान् लोकान् परायणान्॥
ब्रह्म पुराण 71/43.

1. विष्णु पुराण 5/1/22.
2. विष्णु पुराण 5/1/22
3. विष्णु पुराण 1/9/34-35.

विष्णु पुराण 1/9/143-144 में यह बतलाया गया है कि हरि, पद्मा, परशुराम-पृथ्वी, राम-सीता, कृष्ण-रुक्मिणी रूप में युगल अवतार परम्परा आविर्भूत हुई है। भगवान् के देवरूप धारण करने पर लक्ष्मीदेवी भी वह रूप धारण करती है और उनके मनुष्य रूप में होने पर वह मानवी रूप में प्रकाशित होती है।[1]

श्रीमद्भागवत पुराण में तो अवतारवाद का सर्वांगीण विवेचन हुआ है। इस पुराण में सर्वप्रथम उस अतिरिक्त ईश्वर का परिचय मिलता है जो उत्पत्ति स्थिति और प्रलय के निमित्त त्रिगुणात्मक ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम ग्रहण करता है परन्तु उनके इन तीनों रूपों में सत्व गुण स्वीकार करने वाले हरि या विष्णु ही मनुष्य के लिए परम कल्याणकारी और उपादेय माने गए हैं।[2] श्रीमद्भागवत पुराण 1/3/1 में कहा गया है कि सृष्टि के आदि में भगवान् ने लोकों के निर्माण की इच्छा से षोडश कलाओं से अवतार लिया। इसी तारतम्य में भागवत में आगे कहा गया कि भगवान् का यही पुरुष रूप एक ओर तो समस्त लोकों का स्रष्टा है। दूसरी ओर यही नारायण रूप कहा गया है जो अनेक अवतारों का अक्षय कोष है, इसी से सभी अवतार उत्पन्न होते हैं।[3] श्रीमद्भागवत पुराण के 1/3 में 22 अवतारों का उल्लेख करने के पश्चात् कहा गया है जिन

---

1. विष्णु पुराण 1/9/142.
2. विष्णु पुराण 9/1/49.
3. श्रीमद्भागवत महापुराण 1/2/23.

प्रकार सरोवर से सहस्त्रों जल स्रोत निकलते हैं। इसी प्रकार सत्त्वमय श्रीहरि के असंख्य अवतार हुआ करते हैं।[1] श्रीमद्भागवत 2/6/41 में इसी प्रथम अभिव्यक्त पुरुष को परमब्रह्म का आदि अवतार कहा गया है। भागवत के 2/6/8 में विराट् पुरुष की चर्चा की गई और इसके प्रथम अभिव्यक्त होने के कारण आदि अवतार माना गया है। इससे प्रतीत होता है कि भागवतकार ने वेद के पुरुष सूक्त में वर्णित पुरुष को ही प्रथम अभिव्यक्त और आदि अवतार माना है। इस प्रकार इस पुराण में वैदिक मान्यताओं के आधार पर ही अवतारवाद का विकास हुआ है। समष्टिगत अवतार की व्यापक चर्चा करते हुए भागवत 2/6/44 में कहा गया है कि जितनी वस्तुएँ, ऐश्वर्य, तेज, इन्द्रिय, बल, मनोबल, शरीरबल आदि से युक्त हैं या जिनमें सौन्दर्य, लज्जा, वैभव, विभूति अद्भुत रूप या वर्ण विद्यमान है, ये सभी परमतत्त्व में भगवत्स्वरूप हैं। इन्हें लीला-वतारों की संज्ञा प्रदान की गई है। जिनमें से 24 लीलावतारों का वर्णन भागवत 2/7 में हुआ है। इस प्रकार भागवत पुराण में अवतारवाद के रूप का व्यापक विवेचन किया गया है

अवतार की आवश्यकता के समर्थन करने वाले पुराणों के अनेक वचन हैं।[2]

---

1. श्रीमद्भागवत महापुराण 1/3/36
2. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूधर ।
   अभ्युत्थानमधर्मस्य तदा वेषान् बिभर्म्यहम् ॥
   देवीभागवत 4/69.

द्वितीय - अध्याय

अलंकारवाद - परिगणन तथा मतमतान्तर

द्वितीय - अध्याय

अवतारवाद परिगणन तथा मतमतान्तर

विद्वानों के द्वारा अवतारवाद के सिद्धान्त तथा प्रयोजनादि के मान्य स्थान प्राप्त हो जाने पर भी अवतारों की संख्या के प्रति अनेक मत हैं । इस विषय में महाभारत तथा पुराणों में अनेक मतमतान्तर दिखाई देते हैं । अभी तक इस विषय में किसी निश्चित अवस्था के दर्शन नहीं हो सके । अवतारवाद का मौलिक तथ्य तो श्रीमद्भगवद् गीता की ही देन है, परन्तु गीता में अवतार निर्दिष्ट हैं - राम और कृष्ण । शान्ति पर्व अ0 339/77-102 में केवल 6 अवतार ही निर्दिष्ट किए गए हैं - वराह, नरसिंह, वामन, भार्गव राम, दाशरथी राम तथा कृष्ण । इन उपर्युक्त अवतारों का प्रयोजन जगत् प्रसिद्ध है । इसके अलावा इसी अध्याय में हंसावतार का भी वर्णन है जिसमें 'भगवान बुद्ध' के स्थान पर 'हंस' का वर्णन किया गया है ।[1]

ईश्वर के अवतारों की संख्या के सम्बन्ध में विद्वानों में ऐकमत्य नहीं है । श्रीमद्भागवत के बारह स्कन्धों में भगवान के अवतारों के

---

1. हंसः कूर्मश्च मत्स्यश्च प्रादुर्भावाद् द्विजोत्तम ।
   वराहो, नरसिंहश्च, वामनो राम एव च ॥
   रामो दाशरथिश्चैव सात्वतः कल्किरेव च ।
   शान्ति पर्व 339/77-102

विषय में बतलाया गया है । प्रथम स्कन्ध के तृतीय अध्याय में अवतारों की संख्या बाइस बतलायी गयी है । द्वितीय स्कन्ध के सप्तम अध्याय में भी (22) संख्या है, परन्तु दोनों सूचियों के अवतारी नामों में बहुत पार्थक्य दृष्टिगोचर होता है । भागवत के दशम तथा एकादश स्कन्धों में भी अवतारों का वर्णन है, जो प्रथम तथा द्वितीय स्कन्ध से कहीं समान तो कहीं पृथक दिखलाई देते हैं ।[1]

इस प्रकार भागवत की चारों अवतार सूचियों का अनुशीलन करने पर यही दृष्टिगोचर होता है कि अवतारों की संख्या अभी तक किसी निश्चित रूप को प्राप्त नहीं हो सकी थी, इसीलिए अवतारों के नाम कभी घटाये तो कभी जोड़े जाते थे । उदाहरण के लिए प्रथम स्कन्ध में- (1) कौमार सर्ग (सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार), (2) वराह, (3) नारद, (4) नर-नारायण, (5) कपिल, (6) दत्तात्रेय, (7) यज्ञ, (8) ऋषभदेव, (9) पृथु, (10) मत्स्य, (11) कच्छप, (12) धन्वन्तरि, (13) मोहिनी, (14) नरसिंह, (15) वामन, (16) परशुराम, (17) वेदव्यास, (18) रामचन्द्र, (19) बलराम, (20) कृष्ण, (21) बुद्ध तथा (22) कल्कि ।

दशम स्कन्ध में - (1) मत्स्य, (2) हयग्रीव, (3) कच्छप, (4) वराह, (5) नृसिंह, (6) वामन, (7) भृगुपति (परशुराम),

---

1. श्रीमद्भागवत - दशम स्कन्ध, गीता-प्रेस, गोरखपुर संस्करण.

(8) ऋषभदेव, (9) वासुदेव, (10) संकर्षण, (11) प्रद्युम्न, (12) अनिरुद्ध, (13) बुद्ध तथा (14) कल्कि ।

अतः भागवत के अनुसार सत्वनिधि भगवान् श्री हरि के असंख्य अवतार हैं जिन्हें गिना जाना असंभव है, जिस प्रकार एक विशाल सरोवर से हजारों नदियाँ, नाले प्रवाहित होते हैं, उसी प्रकार एक ही ईश्वर के हजारों रूपों में अवतार होते हैं ।[1]

हरिवंश तथा शाण्डिल्यसूत्र में भी अवतारों के इसी गणनातीत रूप का भाव परिलक्षित होता है ।[2]

श्रीमद्भागवत के अध्ययन से उसके परिनिष्ठित सिद्धान्त "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" को प्रत्येक विचारशील प्राणी सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ मानता है, ऐसा परिलक्षित होता है ।

भागवत के आधार पर ही विकसित "लघुभागवतामृत" में अवतारों की संख्या 25 और 'सात्वत तन्त्र' में लगभग 41 से भी अधिक प्राप्त होती है ।

---

1. अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्वनिधेर्द्विजाः ।
   यथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः । (26)
   ऋषयो मनवो देवामनुपुत्रा महौजसः ।
   कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयः स्मृताः ॥ (27)
   एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।
   श्रीमद् भागवत 1/3/26.
2. हरिवंश पुराण 1/41/41.

श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय में भगवान के अवतार की लीला के विषय में एक रोचक प्रसंग है ।[1] एक बार राजा 'निमि' ने महामुनि द्रुमिल से कहा- कि हे, मुनिवर । कृपा करके आप मुझसे भगवान के उन अवतारों का वर्णन करें जिनसे समय - समय पर ईश्वर ने भक्तों की रक्षा के लिए अवतार लेकर विभिन्न महान् कार्य किए। मुनि ने कहा - हे राजन । मनुष्य अपने बुद्धिकौशल से कदाचित् पृथ्वी के समस्त परमाणुओं की गणना कर सकता है परन्तु भगवान के अनन्त, असीम अवतारों और मङ्गल कार्यों की गणना करना सम्भव नहीं है फिर भी संक्षेप में मैं भगवान के अवतार की चर्चा करता हूँ । भगवान ने सर्वप्रथम पंच - महाभूतों से ब्रह्माण्ड की रचना करके अपनी चेतना से प्रकृति के साथ लीला के लिए प्रवेश किया और यही ईश्वर का प्रथम पुरुष अवतार है । जिसके सहार से तीनों लोकों की रचना हुई । उसी से उत्पन्न हुए ब्रह्मा, विष्णु और शंकर भगवान इस विश्व के निर्माता, पालक और संहारक हुए । उस अनादि पुरुष ने धर्म की मूर्ति रूप में, नर-नारायण के रूप में अवतरित होकर ज्ञान का उपदेश दिया तथा बदरिकाश्रम में कठोर तपस्या करके ज्ञानके सर्वोत्तम रूप को प्राप्त किया । वह दत्तात्रेय सनकादि ऋषभदेव रूप में भी अवतरित होकर ज्ञान एवं मोक्ष के मार्ग का उपदेश दिया । हयग्रीव के रूप

---

1. यानि यानीह कर्माणि यैर्यैः स्वच्छन्दजन्मभिः ।
   चक्रे करोति कर्ता वा हरिस्तानि ब्रुवन्तु नः ।
   यो वा अनन्तस्य गुणाननन्ता,- ननुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धिः ।
   रजांसि भूमेर्गणयेत् कथंचित्,-कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः ।
   श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध अध्याय-चतुर्थ श्लोक 1/2.

में अवतार लेकर मधु नामक दैत्य का वध करके देवों की रक्षा की । मत्स्य (मछली) रूप में अवतार लेकर सत्यव्रत धारण करने वाले महापुरुष मनुजी रक्षा करके अपनी प्रजाओं और समस्त सृष्टि की रक्षा की । वाराह रूप में अवतार लेकर गहरे समुद्र में डूबती हुई पृथ्वी का उद्धार किया । वामन रूप में अवतरित होकर दान गर्व से युक्त नृप बलि से तीन पग पृथ्वी मांगकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को नापकर गर्वदमन किया तथा देवताओं के राजा इन्द्र को उनका राज्य दिलाकर नृप बलि को पाताल लोक भेज दिया ।

परशुराम अवतार लेकर हैहय क्षत्रियों का अभिमान चूर्ण किया तथा श्री रामावतार ने विशाल समुद्र में सेतु बांधकर तीनों लोकों में सर्वाधिकबलवान्, त्रिलोक के अभिमान से मण्डित लंकापति रावण का वध करके संसार में सुख की स्थापना की । कूर्म (कछुआ) रूप में अवतार लेकर समुद्र मंथन के समय अपनी पीठ पर अत्यन्त भारी पर्वत (मन्दराचल) को धारण कर सहयोग दिया । हरि के रूप में ग्राह के मुख से गजेन्द्र का उद्धार किया, बालखिल्यों को संरक्षण दिया, असुरराज वृत्र का वध करके इन्द्र तथा देवांगनाओं की रक्षा की ।[1]

श्री कृष्ण के रूप में अवतार लेकर विभिन्न अद्भुत मनोहारी लीलाएं की तथा समस्त जनों के मनोरथों को पूर्ण तो किया ही पृथ्वी से दुष्ट जनों का संहार करके भूभार हल्का किया । भगवान् बुद्ध के रूप में अवतार लेकर विश्व को अहिंसा, सत्य एवं शान्ति का मार्गदर्शन

---

1. श्रीमद्भागवत 11/4.

किया तथा कलियुग में जब सर्वत्र अनाचार, व्यभिचार, लोभ, धर्म की हानि, असत्य की विजय तथा प्रजा पर अनेक कष्ट बढ़ने लगेंगे तभी 'भगवान् कल्कि' का रूप धारण कर दुष्टों को दुष्ट शासकों को मारकर प्रजा की रक्षा कर धर्म की स्थापना करेंगे। इसीलिए श्रीमद्भगवद्गीता में अवतार के प्रयोजन में धर्म की स्थापना और अधर्म इत्यादि के विनाश के बारे में भी कृष्ण का कथन है ।[1]

इस प्रकार श्रीमद्भागवत में एकादश स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय में नर-नारायण, हंस दत्तात्रेय से श्रीकृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि अवतार तक की विस्तृत चर्चा की गई ।

उपर्युक्त 24 अवतारों की संख्या में दस अवतारों की संख्या ही अधिक प्रसिद्ध हुई है यद्यपि इन दशावतारों की संख्या के क्रम में भी कई ग्रन्थों में भेद है - यथा- श्रीमद्भागवत पुराण के चारों स्कन्धों (प्रथम, द्वितीय, दशम, एकादश) की सूची में बहुत अन्तर है । इसीप्रकार वायु पुराण में, मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, बुद्ध और कल्कि इस क्रम की सूची है ।[2] इसी प्रकार दस अवतारों

---

1. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
   अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम् ।
   परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम् ।
   धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे । श्रीमद्भगवद्गीता, 4/7-8
2. मत्स्यो, कूर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा ।
   रामो रामश्च रामश्च बुद्ध कल्किरेव स्मृताः ॥
   वायु पुराण 92/27.

की महत्वपूर्ण संख्या की ही गणना मत्स्य पुराण, पद्मपुराण, अग्नि पुराण आदि में भी प्रसिद्ध है ।

मत्स्य पुराण में इन दस अवतारों के मध्य के नारायण, नरसिंह और वामन अवतार को दिव्य माना गया तथा अन्य शेष सातों अवतारों (दत्तात्रेय, मान्धाता, परशुराम, राम, व्यास, बुद्ध और कल्कि) को मनुष्य कहा गया है ।[1]

इस सृष्टि में जब तक प्राकृतिक (ईश्वर प्रदत्त) नियमों का उल्लंघन नहीं होता तब तक ऐसा माना जाता है कि ईश्वर को अवतार ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं होती परन्तु जब सृष्टि के नियमों का उल्लंघन होता है, तब पाँच कलाओं, आठ कलाओं या अपनी विभूति के द्वारा के सृष्टि में सामंजस्य स्थापित करते हैं, परन्तु जब विभूति के द्वारा भी कार्य सिद्ध नहीं होता है, सृष्टि की व्यवस्था अव्यवस्थित होती है, तब भगवान सृष्टि की सुव्यवस्था हेतु अथवा धर्म की स्थापना के लिए अंशावतार या पूर्णावतार ग्रहण करते हैं ।

जिस प्रकार गीता में स्पष्ट रूप से केवल दो (राम, कृष्ण) अवतारों को ही बतलाया गया है । देवी भागवत पुराण में मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन परशुराम सहित अवतारों की चर्चा करने के पश्चात्

---

1. एतास्तिस्रः स्मृतास्तस्य दिव्याः सम्भूतयो द्विजाः ।
   मानुषाः सप्त यास्तस्य शापजास्ता निबोधत ॥
   मत्स्य पुराण 47/238.

राक्षस राज रावण के वध के हेतु रामावतार का वर्णन किया गया है।

इसी प्रकार महाभारत के शान्तिपर्व में दशावतार के सम्बन्ध में मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण कल्कि का नाम वर्णित है तथा इसके पूर्व हंस, कूर्म, मत्स्य, वाराह नृसिंह, वामन, परशुराम, बलराम, श्रीराम, सात्वत (श्रीकृष्ण) कल्कि अवतार का वर्णन है परन्तु इन अवतारों में भगवान् बुद्ध के स्थान पर हंस के अवतार का उल्लेख किया गया है ।

अमृत के समान अर्थ करने वाले संस्कृत साहित्य के महान् कवि जयदेव ने अपनी अमर कृति गीतगोविन्द में श्रीकृष्ण का दशावतारों के रूप में स्तुति की है, एक-एक पद में बहुत ही कुशलता से ईश्वर के महान् कार्य को बड़ी कुशलता से वर्णन किया है ।[1]

महाकवि क्षेमेन्द्र ने भी अपने महाकाव्य 'दशावतार चरितम्' में दश अवतारों का विशद वर्णन किया है ।[2] दश अवतारों के माध्यम से कवि ने भगवान् का गुणगान इस कुशलता से किया है कि इस महाकाव्य को सुनकर भी पढ़कर मानव मन हर्ष से प्रफुल्लित होकर स्वर्गीय

---

1. वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते ।
   दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
   पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते ।
   म्लेच्छान् मूर्छयते दशाकृति-कृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ।
   जयदेव-कृत गीत-गोविन्द, पृ०-३.
2. दशावतार - चरितम् 1/2.

सुख की अनुभूति करता है । इसी भाव से अग्नि पुराण एवं पद्मपुराण के श्लोक दर्शनीय है ।[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि परवर्ती पुराणों में सर्वाधिक प्रचलित दशावतारों के अतिरिक्त विष्णु के अवतारों की भी संख्या सर्वथा समान नहीं देखी गई है ।

<u>दशावतार परम्परा :</u>

प्राचीन इतिहास के विद्वानों और इतिहासकारों ने विश्लेषणात्मक दृष्टि से अवतारों के उद्गम एवं उनके क्रमिक विकास के बारे में प्रकाश डाला है, विशेषकर 'महाभारत' का 'नारायणीयोपाख्यान' प्रारम्भिक कथों के कारण इनका मध्य बिन्दु रहा है । 'महाभारत' के 'नारायणीयोपाख्यान' की अवतार सूचियों की संख्या तीन है और तीनों सूचियों में न्यून अन्तर के साथ चार, छह या दस के क्रम में अवतारों के बारे में वर्णन किया गया है :

श्री भण्डारकर ने इस उपाख्यान का विश्लेषण किया है, तदनुसार महाभारत 12.339.76.98 में उपलब्ध वाराह, नृसिंह, वामन,

---

1. विष्णोर्दशावताराख्यान् यः पठेच्छृणुयादपि ।
   सोऽवाप्तकामो विमलः सकुलः स्वर्गमाप्नुयात् ।
   अ० पु० 16/12.

   मत्स्य कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ।
   रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश ॥
   इत्येते अवताराख्य पृथिव्यां परिकीर्तिताः ।
   येषां नाममात्रेण [illegible] मुच्यते सदा ।
   पद्म पुराण उत्तर 71/2 - 28,

परशुराम, राम और कृष्ण प्रथम सूची के अन्तर्गत, और द्वितीय सूची में महाभारत 12.229.103-104 में हंस, कूर्म, मत्स्य और कल्कि सम्मिलित कर दशावतार गिनाये हैं ।[1]

श्रीमद्भागवत में अवतारों की संख्या कहीं 22 तो कहीं 24 बतलायी गयी है, उस समय तक अवतारों की संख्या निश्चित न होने के कारण भिन्न-भिन्न हैं लेकिन इनमें 24 अवतारों से ही दशावतार प्रसिद्ध हुए हैं । अब प्रश्न यह है कि अवतारों का दस की संख्या का निश्चय कब हुआ ? यह अनुशीलन का विषय है । दशावतार परम्परा का उदयकाल अष्टम तथा एकादश शती के मध्य की शताब्दियाँ मानी गयी है। एकादश शती में दशावतार की कुछ सीमित योजना सर्वमान्य हो गयी थी और द्वादश शती में तो दशावतार की संख्या तथा क्रम दोनों ही सुस्थिर हो गए हैं क्योंकि जयदेव के गीत गोविन्द के प्रथम सर्ग में ही दशावतार की स्तुति सम्बन्धी श्लोक वर्णनीय है जिसकी रचना 1150 ई० के आसपास की है, और इसी समय भगवान बुद्ध को अवतार मानकर दशावतार में (उनके) इन को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ ।

जिस प्रकार संस्कृत साहित्य के महान् कवि जयदेव ने दशावतार परम्परा के अनुसार अपने काव्य की रचना की है, उसी प्रकार संस्कृत साहित्य के कवि क्षेमेन्द्र जी ने भी लगभग 1066 ई० में अपनी प्रसिद्ध कृति "दशावतार-चरित" महाकाव्य में दस अवतार की संख्या को ही

---

1. भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना अंक 4, पृ०-39.

माना है तथा उसी क्रम में अवतारों का सतत वर्णन किया है ।[1] उपर्युक्त उदाहरणों से यही सिद्ध होता है कि दशावतार परम्परा का काल काफी नवम शती माना जा सकता है । वैसे तो अवतार परम्परा वेदों से ही परिलक्षित होती है, परन्तु इनकी संख्या में विभिन्नता है । श्री भंडारकर ने हरिवंश और वायुपुराण दोनों पुराणों की तालिकाओं का तुलनात्मक अध्ययन करके यह निश्चित कर दिया है कि दोनों के अवतारों के नाम एवं संख्या में बहुत वैषम्य है । विष्णु पुराण में तो दशावतार का कहीं भी नाम निशान नहीं है किन्तु उसके परवर्ती पुराणों जैसे - अग्नि, वराह आदि में मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि का क्रम मिलने लगता है ।[2]

श्रीमद्भागवत पुराण 10/2/40 में कृष्ण को छोड़कर इसी क्रम से नौ अवतारों का वर्णन किया गया है, इसके अतिरिक्त भागवत 10/40/16-22 में हयग्रीव और चतुर्व्यूह के अलावा शेष क्रम में दशावतारों का ही आभास होता है । ऐसा ही क्रम मत्स्य पुराण के 281/67, अग्नि पुराण के 2/16, पद्म पुराण के 6/43/13-15 अध्यायों में दृष्टव्य है ।

महाभारत के शान्तिपर्व में भी दशावतार के क्रम को भी देखा जा सकता है, सिर्फ इसमें दशावतार के नामों में भेद है, इनके अवतारों

---

1. दशावतार चरितम्, श्लोक-2, पृष्ठ-01.
   गीत गोविन्द - प्रथम सर्ग.
2. भंडारकर - वर्क्स 4, पृ० 59, -अग्नि पुराण 16/1.

के नाम में - मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, बलराम, श्रीकृष्ण तथा कल्कि का नाम आता है । इस समय भगवान् बुद्ध के नाम के स्थान पर कहीं-कहीं हंस का नाम आता है ।

महाकाव्यों, पुराणों, महाभारत आदि के उल्लेख के अलावा देवगढ़ में निर्मित - 'दशावतार मन्दिर' गुप्तकाल के निकटवर्ती-काल में प्रचलित दशावतारों की उपासना स्पष्ट परिलक्षित होती है । विद्वानों ने इसका काल ईसा की छठी शताब्दी माना है । श्री प्रबोध चन्द्र के मतानुसार लक्ष्मण सेन के काल में दशावतारों की मूर्तियों के निर्माण का पता चलता है ।[1] इससे ज्ञात होता है कि दशावतारपरम्परा उस समय तक बद्धमूल हो गई थी ।

श्री वासुदेव उपाध्याय ने कहा है कि - 9वीं सदी में बहुत अधिक संख्या में दशावतार की मूर्तियों का निर्माण हुआ है । पृथ्वीराज विजय' नामक महाकाव्य में 'दशावतार सम्बन्धी' ताबीज के प्रचलन का भी वर्णन मिलता है ।

अतः यह स्पष्ट ही है कि जयदेव और क्षेमेन्द्र के बहुत पहले ही भारत के पूर्व देश में धार्मिक मान्यताओं में दशावतारों का महत्वपूर्ण स्थान बन चुका था ।

---

1. हिस्ट्री ऑफ बंगाल, पृ० 493.

उद्गम की दृष्टि से दशावतार परम्परा का उद्भव महाभारत से मानना चाहिए क्योंकि महाभारत में अवतारों की संख्या कहीं चार कहीं छः और कहीं दस का क्रम मिलता है और यहीं से दशावतारों की परम्परा का क्रमिक विकास हुआ है ।

पौराणिक साहित्य में दशावतार सम्बन्धी परम्परा का अध्ययन करने पर विदित होता है कि प्राचीनतर पुराणों में अवतार सम्बन्धी वर्णन तो बहुत मिलते हैं, परन्तु दशावतार परम्परा का क्रम दृष्टिगोचर नहीं होता है । दशावतार परम्परा को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राचीनतर पुराणों में नहीं है लेकिन परवर्ती पुराणों में दशावतार की संख्या ने अपना निश्चित तथा महत्त्वपूर्ण स्थान निर्धारित कर लिया था, तात्पर्य है कि परवर्ती पुराणों में दशावतार परम्परा का स्थान महत्त्वपूर्ण दिखाई पड़ता है ।

इसी क्रम में यह भी ध्यातव्य है कि जिस प्रकार महाभारत में दशावतारों का उद्भव और विकास का क्रम दिखाई देने लगता है, उसी प्रकार से विष्णु अवतार की अपेक्षा अवतारों की उपासना के प्रति अधिक भाव दिखाई देने लगता है । इसी क्रम में उपास्य रूप में दो अवतारों को अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ ।

दशावतारों की स्तुति-पूजा का प्रचलन होने पर परवर्ती पुराणों के द्वारा उनके उपास्य विग्रह रूप का अधिक से अधिक प्रसार प्रारंभ हो जाता है, यह प्रवृत्ति छठी शती से लेकर बारहवीं शती तक अधिक

दिखाई पड़ती है । गुप्तकाल तथा परवर्ती काल में भी लोकव्यापी भगवान् विष्णु के अवतारों सहित मूर्ति निर्माण तथा पूजा अर्चन के प्रमाण मिलने लगते हैं ।

काश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र, जैन कवि अमित गति, वैष्णव कवि जयदेव, धर्म ठाकुर सम्प्रदाय के कवि रमाई पण्डित तथा राजस्थान के कवि चन्द बरदायी द्वारा दशावतारों का वर्णन देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि दशावतारों के लोकव्यापी प्रचार की सीमा बहुत विस्तृत हो चुकी है, इसमें सन्देह नहीं है कि दशावतार परम्परा का उत्कर्ष आठवीं से लेकर सत्रहवीं (17वीं) शताब्दी तक अविच्छिन्न रहा है । परन्तु दसवीं से लेकर बारहवीं शताब्दी तक प्रचार की दृष्टि से दशावतार का सर्वोत्कृष्ट युग माना गया है । आजकल भी भगवान् के अवतारों की संख्या प्रचलित रूप में दस ही मानी जाती है जिनका नाम और क्रम इस प्रकार है -अवतार तो दस ही है जलजौ (जल से उत्पन्न होने वाले दो अवतार मत्स्य-कच्छप), वनजौ (वन में उत्पन्न होने वाले दो अवतार वराह, नृसिंह) खर्व (वामन) त्रिरामी (परशुराम, राम, बलराम) सकृपा (कृपायुक्त अवतार- बुद्ध) अकृप: (कृपाहीन अवतार-कल्कि).[1] कृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं । पूर्ण ब्रह्म हैं ।

---

1. जलजौ वनजौ खर्वः त्रिरामी सकृपोऽकृपः ।
अवतारा दशैवैते कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।
पुराण विमर्श, पृ० सं० 175.

मत्स्यावतार :

अवतारवाद पौराणिक साहित्य का विशिष्ट क्षेत्र है, परन्तु अवतारवाद पर पुराणों का ही सर्वस्व मानना बहुत ही भ्रान्ति है। अवतारों का मूल स्रोत वेद ही है - मन्त्रब्राह्मणात्मक वेद, जहाँ से ये विभिन्न पुराणों में उपन्यस्त तथा परिबृंहित किये गये हैं। यह तो सर्वविदित है कि वेदों का परिबृंहक इतिहास-पुराण ही है और इसी सिद्धान्त का एक पोषक साक्ष्य यहाँ बतलाया गया है।

यद्यपि अवतारवाद का मूल स्रोत तो वेद ही है। किन्तु अवतारवाद का मन्थन ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत आदि में विकसित रूप से दृष्टिगोचर होता है। इन ग्रन्थों के अनुशीलन से मानव जीवन की सफलता सुनिश्चित है। जहाँ एक ओर वैदिक ग्रन्थों में अवतारवाद का आभास प्रतीत होता है, वहीं दूसरी ओर पुराणों में अवतारवाद पर अधिक मात्रा में परिपूर्ण आख्यान और उपाख्यान प्राप्त होते हैं।

वैदिक साहित्य में जिन विभिन्न अवतारों का संक्षिप्त वर्णन है, उन्हीं अवतारों का विस्तृत वर्णन पुराणों में उपलब्ध होता है। मत्स्यावतार की वैदिक कथा शतपथ ब्राह्मण [1/8/1/1] में उपलब्ध होती है।[1]

---

1. मनुः ह वे प्रातः ..... मत्स्यः पाणी आपेदे। स हास्मे वाचमुवाच बिभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति। कस्मान्मां पारयिष्यसीति ? ओघः इमाः सर्वाः प्रजाः निर्वोढा ततस्त्वा पारयिष्यामीति। शतपथ ब्राह्मण 1/8/1/1.

वैदिक कथा का रूप इस प्रकार है - एक बार नदी के तट पर आचमन करते समय मनु के हाथ में एक मछली का बच्चा अकस्मात आ गया। मछली के बच्चे ने मनु से कहा कि यदि आप मेरा पालन पोषण करेंगे, मेरी रक्षा करेंगे तो मैं आपको पार उतार दूंगा। मनु ने आश्चर्य चकित होकर उस छोटे मत्स्य से पूछा कि तुम मुझे किससे पार उतारोगे? मछली के बच्चे ने कहा - कुछ समय पश्चात् भयंकर बाढ़ आने वाली है जिसमें समस्त प्राणियों का नाश अवश्यम्भावी है, उसी बाढ़ से मैं आपको बचाऊँगा।

मनवे हवै प्रातः मत्स्यः तवपाणे आपेदे वाचमुवाद बिभृहि मा, पारयिष्यामि त्वेति। कस्मान्मा पारयिष्यसीति औघ इमाः सर्वाः प्रजा निर्वोढा ततस्त्वा पारयितास्मीति। (शतपथ ब्राह्मण 1/8/1/1)

मछली के वचनों को सुनकर मनु ने उसके कथनानुसार अपने कमण्डल में रख लिया। फिर घड़े में, फिर तालाब में और अन्त में विशाल शरीर धारण करने के लिए समुद्र में रख दिया। मत्स्य के कथनानुसार मनु ने सब अन्नों के बीजों, एवं अन्य वस्तुओं का संग्रह किया। भयंकर बाढ़ आयी और चारों ओर विनाश लीला प्रारम्भ हो गयी। तब मत्स्य के द्वारा भेजी गयी नौका में मनु ने सभी अन्नों के बीजों एवं अन्य अन्य वस्तुओं को लेकर उसी मत्स्य के द्वारा नौका खींचते हुए उस भयंकर बाढ़ में अपनी रक्षा की। ओघ (बाढ़) के शान्त हो जाने पर मनु ने यज्ञ किया और उन्हीं सुरक्षित अन्नों के बीजों से पुनः पदार्थों का सृजन किया।

मत्स्यावतार की यह कथा अनेक पुराणों में है ।[1] मत्स्य पुराण के तो नाम से ही विदित होता है कि इस पुराण में भगवान विष्णु ने मत्स्य का अवतार ग्रहण किया था । श्रीमद्भागवत के एक ही अध्याय में [स्कन्ध-8, अध्याय 24 में] यह कथा संक्षेप में दी गयी है ।[1] शतपथ ब्राह्मण की कथा से इसमें अन्तर इतना ही है, वैदिक आख्यान में कथानक का भौगोलिक क्षेत्र हिमालय है तो भागवत में द्रविड़ देश की 'कृतमाला' नदी [8/24/12] तथा उस देश के राजा सत्यव्रत के सम्बन्ध में यह कथा द्रविड़ देश में घटित हुई मानी गई है । भौगोलिक अन्तर के अलावा कथा में कोई अन्तर नहीं है।

जलप्लावन की यह कथा, जिसमें समस्त संसार के समस्त पदार्थों का विनाश होने तथा पुनः नवीन सृष्टि का प्रारम्भ होने का वर्णन किया गया है, यह कथा केवल भारत में ही नहीं बल्कि विश्व की सभी जातियों में परम्परा रूप में विद्यमान है । 'बाईबिल' में इसी कथा के अनुसार 'नूह' की 'किश्ती' का हाल विस्तार से दिया गया है । कुरान में भी इसी आशय की कथा देखी जा सकती है । इतना ही नहीं अमेरिकी जातियों की धर्म कथाओं में भी यह कथा उपलब्ध होती है । इसीकारण विद्वानों ने इसे ऐतिहासिक माना है ।

इसी कथा को कविवर क्षेमेन्द्र जी तथा जयदेव जी ने भी अपने महाकाव्य "दशावतार चरितम्" तथा "गीतगोविन्दम्" में वर्णन किया है ।[2]

---

1. भागवत 1/3/15, 2/7/12, 8 स्कन्ध, 24 अध्याय 11-61 श्लोक मत्स्य पुराण 1-अध्याय 290, अग्निपुराण-2 अध्याय 49, गरुड़-1/142, पद्म पुराण 5/4/73, महाभारत 12/340 [शान्तिपर्व].
2. दशावतार चरितम् 1/2/3.

दशावतार चरित में क्षेमेन्द्र जी का कथन है कि संसार में सबसे पुरातन प्रजापति माननीय मनु नाम से प्रसिद्ध हुए जो समस्त तीर्थों की यात्रा करने हेतु पृथ्वी पर विचरण किया करते थे ।[1]

तदनुसार मनु बदरिका नामक आश्रम में जाकर विष्णु भगवान् के दर्शनार्थ चिरकाल तक तपस्या करते, तभी एक बार [एक नदी के] उसके जल में छिपे हुए छोटे से मछली के बच्चे ने भयभीत मनु से कहा है दया-निधे, मैं बड़ी मछलियों से भयभीत हूँ, मेरी रक्षा करो, ये बड़ी मछलियाँ दुर्बल मछलियों को खा जाती है । मछली के बच्चे के वचनों से आश्चर्य चकित, दयाभिभूत मनु ने मछली को लेकर घड़े में छोड़ दिया, फिर कूप में फिर गंगा और अन्त में समुद्र में छोड़ दिया । समय से सम्पूर्ण सागर के विस्तारवाले महाकाय मत्स्य ने विस्मय से देखने आए हुए मनु से कहा[2] हे प्रजापते, अब विचित्र पापपूर्ण समय आ गया है जिसमें उल्टे कार्य अमांगलिक, अशुभ लक्षित दिखने लगे हैं । युग समाप्ति वाले प्रलयकालीन मेघों की गर्जन ध्वनि के साथ तीव्र वर्षा से पीड़ित संसार शीघ्र ही एक समुद्र रूप धारण हो जायेगा ।[3]

---

1. मान्यः चिरं मनुर्नाम जगज्ज्येष्ठः प्रजापतिः ।
   चचार पृथ्वीमुर्वीं यः सर्वतीर्थयियासया ॥
   दशावतार-चरित,मत्स्यावतार प्रकाः,श्लोक 9-10.
2. काले न तव आश्रमेऽपि व्यापी विपुल विग्रहः ।
   कौतुकालोकनायातं मनुं मत्स्यः समभ्यधात् ॥
   अधुना विषमः कालः प्रवृत्तः समुपस्थितः ।
   ~~अधुना विषमः कालः प्रवृत्तः समुपस्थितः~~ ।
   विपरीतनिमित्तानि प्रवृत्तानि प्रजापते ॥
   दशावतार-चरित श्लोक 25,26.
3. दशावतार-चरित श्लोक 31.

प्रलयागमन के पश्चात् समस्त बीजों की सुरक्षा हेतु सभी अन्नों (पदार्थों) के बीजों को एवं सप्तर्षियों को लेकर आपको मेरी भेजी हुई नौका पर बैठ जाना चाहिए ।[1] मन को प्रकम्पित करने वाले उस मछली के वचनों को सुनकर, ऐसा ही अनिवार्य मानकर मनु अपने आश्रम की ओर प्रस्थान करते हैं ।[2]

उक्त महाप्रलय के प्रारम्भ होने पर मत्स्य के कथनानुसार मनु उस महामत्स्य के ध्यान में लग जाते हैं, सिर पर सुमेरु पर्वत के समान होने की सींग धारण किये हुए जल से घिरे अभिव्यक्त परम- आत्मा जैसे उस महामत्स्य को मनु देखते हैं ।[3]

उस महामत्स्य के द्वारा पूँछ से हिलाये गए जल की चंचल लहरों से तथा श्वास प्रक्रिया से फैलती हुई स्वच्छ ऊँची लहराती हुई तरंगों से मानों आकाश को अति प्रसन्नता से ही कैलाश पर्वत की चोटियों से छेदने जैसी क्रिया करते हुए (मत्स्य को), वह भगवान्

---

1. सर्वबीजभृतां तस्मिन्काले सप्तर्षिभिः सह ।
   मत्सृष्टां नावमारुह्य स्थातव्यम् निरपेक्षया ॥
   संदृष्टा) चा० च० श्लो० 32
2. मनः प्रकम्पनं श्रुत्वा मत्स्यस्य वचनं मनुः ।
   तथेति प्रतिश्रुत्य स्वाश्रमं निजाश्रयम् ॥
   (विनिश्चित्य) अवतार चरितम् – 33
3. विभ्राणं कैलासश्रीं शिरसि शृङ्गम् ।
   अम्भोभिराप्लुतस्थानम् निमिनिम्नाभिनवात्मकम् ॥ म०च०श्लो० 41-42.

विष्णु हैं, ऐसा देखकर मनु उस मत्स्य रूप धारी भगवान् विष्णु को प्रणाम करते हैं।[1]

मत्स्य के द्वारा खींची गई नौका में समस्त अन्नों के बीजों एवं सप्तर्षियों के साथ मनु ने (मत्स्य के द्वारा खींची गई) नौका से उस प्रलयकारी ओघ को पार किया। प्रलय समाप्ति के पश्चात् समस्त पदार्थों के विनाश होने पर ब्रह्मा के मन से उत्पन्न (मानस पुत्र) विशिष्ट प्रजापति मनु के द्वारा पूर्ववत् पुनः अद्भुत सृष्टि की रचना की गई।[2]

कविवर क्षेमेन्द्र की भाँति कविवर जयदेव ने भी दशावतार वर्णन अपने महाकाव्य 'गीतगोविन्दम्' में किया है। भगवान् (विष्णु) कृष्ण के उन्होंने दस अवतारों का वर्णन बहुत ही सरल एवं कथात्मक गीतों में किया है जो बहुत ही मनोहारी है, पुराणों का अनुसरण करते हुए ही उन्होंने भी भगवान का प्रथम अवतार मत्स्य को ही माना है, उन्होंने 'गीत गोविन्द' में मंगलाचरण के पश्चात् सर्वप्रथम मीनावतारी भगवान का वर्णन किया है जिस में

---

1. दशा० च० श्लोक - 43.
2. ब्रह्मणो मानसाज्जातैः प्रजापतिभिरद्भुतः ।
   मनुमुख्यैः कृतः प्राग्वत्सर्गः पुनरकल्पत ॥
   क्षेमेन्द्र कवि विरचित दशा० चरितम मत्स्यावतार (प्रथम) श्लोक-39.

उन्होंने भगवान् के अवतार का कारण और उस समय के दृश्य का इतना सुन्दर वर्णन किया है, ऐसा प्रतीत होता है, मानों उस प्रलयकालीन दृश्य को अभी अपने चक्षुओं से देख रहे हों। कवि जयदेव कहते हैं कि, "हे मीनावतारधारी केशव, हे जगदीश्वर! हे हरे! प्रलयकाल में बढ़े हुए समुद्र जल में बिना खेद नौका चलाने का कार्य करते हुए आपने वेदों की रक्षा की थी, आपकी जय हो।[1]

महाभारत 'वन पर्व' 187 अध्याय में भी यह कथा विस्तृत रूप में वर्णित है। इस कथा में मत्स्य मनु से कहता है कि मैंने ही महामत्स्य का रूपधारण कर तुम्हें बचाया है। समस्त सृष्टि के विनाश हो जाने के कारण वह सृष्टि की पुनर्रचना के लिए आदेश देता है। अपने माहात्म्य को बताते हुए कहता है कि मुझसे परे कोई वस्तु नहीं है, मुझसे ही समस्त सृष्टि का प्रारम्भ व विनाश होता है।

'वाल्मीकि रामायण' में मत्स्यावतार की कोई कथा नहीं मिलती है, केवल 'युद्धकाण्ड' में की गई राम की स्तुति में वराह के साथ 'एक श्रृंग' का प्रयोग किया गया है परन्तु वराह को भी एक श्रृंग कहा जाता है। इसलिए मत्स्यावतार को यहाँ भी

---

1. प्रलय पयोधिजले धृतवानसि वेदम् ।
   विहितवहित्रचरित्रमखेदम् ।
   केशव धृतमीन शरीर जय जगदीश हरे ॥
   श्री कविवर जयदेव कृत 'गीत गोविन्दम्' श्लोक-1.

मानव का अवतार है ।

'मत्स्य पुराण' में मत्स्य मनु से कहते हैं कि प्रलय के पश्चात् सृष्टि का आरम्भ किए जाने पर वे वेदों का प्रवर्तन करेंगे ।[1]

'अग्नि पुराण' में मनु की कथा और हयग्रीव वध आदि के प्रसंग में मत्स्यावतार का वर्णन मिलता है ।[2] स्कन्द-पुराण में भगवान् विष्णु शंखासुर का वध करने और वेदों की रक्षा के लिए मत्स्यावतार धारण करते हैं ।[3]

'पद्मपुराण' के अनुसार भगवान् विष्णु दैत्यराज 'मकुटेभ' का दमन करने हेतु मत्स्य का अवतार धारण करते हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदों से लेकर पुराणों तक एवं मध्यकालीन कवियों विशेषकर आर्यों की आस्था रही है कवि क्षेमेन्द्र, जयदेव, आदि कवियों ने किसी न किसी रूप में मत्स्यावतार का वर्णन अपने पुराणिक ग्रन्थों में किया है । भगवान् के अवतारों में सभी ने इसे प्रथम अवतार की मान्यता प्रदान की है । मत्स्य अवतार सृष्टि का आदि रूप है जो विकास प्रक्रिया का बिन्दु है ।

---

1. मत्स्य पुराण 2,3-16.
2. अग्नि पुराण - 2 अध्याय.
3. स्कन्द पुराण - उत्तरखण्ड 92/9.

<u>कूर्मावतार :</u>

भगवान् के प्रमुख दस अवतारों में द्वितीय अवतार 'कूर्म' (कछुआ) को माना गया है परन्तु अन्य अवतारों की अपेक्षा कूर्मावतार का अपना विलक्षण स्थान है क्योंकि अन्य अवतारों के विपरीत इस अवतार का प्रयोजन न तो किसी राक्षस के अत्याचार से छुटकारा करना है और न ही किसी दुष्ट का वध करना है। पुराणों के अनुसार इस अवतार का सम्बन्ध तो केवल समुद्र मंथन की एक कथा से है।

'वाजसनेयिसंहिता' के अंग्रेजी भाष्यकारों ने शुक्ल यजुर्वेद' की कुछ ऋचाओं के आधार पर कूर्म का सम्बन्ध कश्यप पुरुष या प्रजापति से स्थापित किया और भी कुछ वाक्यों के अर्थानुसार विष्णु और कूर्म का सम्बन्ध बतलाया गया है।[1]

वैदिक साहित्य में, पुराणों तथा महाकाव्यों में वर्णित समुद्र मंथन और कूर्म के सम्बन्ध की घटना विरल रूप में प्राप्त होती है। इसमें (वैदिक साहित्य में) कूर्म और समुद्रमंथन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध नहीं मिलता।

'ऐतरेय ब्राह्मण' में देवों और असुरों की एक कथा में अस्पष्ट रूप से समुद्र मंथन के बीज देखे जा सकते हैं, इसमें असुरों और देवताओं के आपसी झगड़े के बारे में बताया गया है कि असुरों ने उन्हें

---

1. शुक्ल यजुर्वेद - ग्रिफिथ का अनुवाद, पृष्ठ 140.

दिन के कृत्य से देवताओं ने उन्हें निकाल दिया, अतः असुरों को जो कुछ हस्तगत हुआ, उन्होंने उसको समुद्र में फेंक दिया । देवता असुरों के पीछे-पीछे दौड़े और छन्द के द्वारा उन्होंने असुरों से अपनी वस्तुओं को छीन लिया, इस छन्द ने अंकुश का कार्य करके समुद्र से वस्तुओं को निकाल लिया ।

तैत्तिरीय आरण्यक [1/23/3] में यह कथा इस प्रकार वर्णित है कि प्रजापति के शरीर से रस कम्पायमान हुआ । जल के भीतर कूर्म रूप से विचरण करते हुए देखकर प्रजापति ने कहा - हे कूर्म, तुम मेरा त्वचा तथा मांस से उत्पन्न हुए हो । कूर्म ने उत्तर में प्रजापति से कहा - नहीं, मैं यहाँ तुमसे भी पहले था, इसीलिए उसे 'पुरुष' की संज्ञा प्राप्त हुई अर्थात् 'पुरा आसीत् इति पुरुषः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार पहले से [पुरः] रहने वाला व्यक्ति 'पुरुष' पद वाच्य होता है. कूर्म यहाँ पहले से निवास करता था । अतः इस व्युत्पत्ति के अनुसार कूर्म 'पुरुष' कहलाया जिसके हजार सिर थे । [सहस्रशीर्ष] सहस्र नेत्र और सहस्र पैर थे । इस रूप में वह कूर्मपुरुष उठा ।[1] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्' पुरुष सूक्त के इस मन्त्र द्वारा यही कूर्म निर्दिष्ट है।

---

1. अन्तरतः कूर्मभूतः सर्पन्तम्. ममवैत्वङ्मांसात्समभूत् नेत्य - ब्रवीत् पूर्वमेवाहमिहासम् । इति तत्पुरुषस्य पुरुषत्वम्. । स सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपादः भूत्वोदतिष्ठत् । तैत्तिरीयारण्यक - 123/3]

इस आरण्यक के भाष्य में उक्त कूर्म रूप को परमात्मा से अभिन्न माना है।

शतपथ ब्राह्मण में भी इस तथ्य का प्रतिपादन किया गया है - "स यत् कूर्मो नाम एतद् वै रूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत।"
-शतपथ ब्राह्मण 7/5/1/5]

इस मन्त्र के अनुसार प्रजापति ने कूर्म का रूप धारण कर प्रजा की सृष्टि की।

जैमिनीय ब्राह्मण [3/2-72] में भी कूर्म अवतार की कथा संक्षेप में दी गयी है। यहाँ भी प्रजापति के द्वारा ही कूर्म का अवतार ग्रहण करने का वर्णन मिलता है। कूर्म पुराण [1/16/77-78] अग्निपुराण [4/39], मत्स्य पुराण [248/30], पद्मपुराण [5/4/13], ब्रह्मपुराण 180/213], विष्णु पुराण [1/4] में भी कूर्म के अवतार की कथा वर्णित है। इस वैदिक तथ्य का उपबृंहण समुद्रमंथन के अवसर पर पुराणों में किया गया है।

श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के सप्तम अध्याय में समुद्र मंथन के निराधार होने के कारण जब मन्दराचल समुद्र में डूबने लगा और समुद्र मंथन में महान् विघ्न उत्पन्न हुआ तब भगवान ने कच्छप का अद्भुत रूप धारण कर मन्दराचल को अपने ऊपर धारण किया। इस कूर्मावतार में कूर्म [कच्छप] का शरीर अति विशाल था, जिसका एक लाख योजन तक फैला हुआ जम्बूद्वीप के समान।[1]

---

[1] विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो,
दुरन्तवीर्योऽवितथाभिसन्धिः।
कृत्वा वपुः काच्छपमद्भुतं महत्,
प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार ....
दधार पृष्ठेन स लक्षयोजन- प्रस्तारिणा द्वीप इवापरो महान्॥
श्रीमद्भागवत 8/7/1-2.

इस समुद्र मंथन रूपी एक महान कार्य को सुचारु रूप से सम्पादित करने हेतु तथा संकट से उबार करने के लिए भगवान ने कच्छप रूप धारण किया, जिससे समुद्र मंथन से चौदह रत्नों की प्राप्ति सम्भव हो सकी ।

पुराणों ने इस कूर्म अवतार को भगवान विष्णु का दूसरा अवतार मानकर इस कथा का उल्लेख किया है । इस प्रकार कूर्म अवतार को वैदिक तथ्य का उपबृंहण समझना चाहिए क्योंकि कूर्म अवतार सम्बन्धी पर्याप्त आधार वैदिक साहित्य में उपलब्ध होते हैं ।

महाभारत के अनुसार समुद्रमंथन के समय समुद्र से अनुमति मिलने के पश्चात् देवताओं ने कूर्म से विनय की । कूर्म ने मन्दराचल को अपनी पीठ पर रखना स्वीकार कर लिया ।[1] यहाँ पर कूर्म को विष्णु या प्रजापति का अवतार नहीं माना गया बल्कि कूर्म के रूप में ही माना गया है ।

'वाल्मीकि रामायण' में समुद्र मंथन के समय पर्वत के पाताल में प्रवेश कर जाने पर भगवान् कूर्म रूप धारण कर वहीं समुद्र में सो गए ।[2]

'विष्णु पुराण' में भी भगवान स्वयं कूर्म रूप धारण कर क्षीर सागर में घूमते हुए मन्दराचल के आधार हुए ।[3]

---

1. महाभारत 1/18/11-12.
2. वाल्मीकि रामायण 1/45/29.
3. विष्णु पुराण 1/9/88.

कूर्म अवतार का नृसिंह अवतार के समान अपना सम्प्रदाय दृष्टिगोचर नहीं होता और न ही वाराह अवतार के समान स्वतन्त्र रूप से इनकी अधिक मूर्तियों का प्रसार ही मिलता है, केवल दशावतार मूर्तियों के साथ ही कूर्मावतार की मूर्ति भी मिलती है । क्षेमेन्द्र और जयदेव ने पौराणिक रूप ग्रहण करते हुए समुद्र मंथन से सम्बद्ध कूर्म को विष्णु और कृष्ण का अवतार माना है । अन्य अवतारों के सदृश कूर्मावतार के भी दो रूप मिलते हैं । एक पूर्ववर्ती - जिसमें प्रजापति एवं सृष्टि के विकास का सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है तथा दूसरा परवर्ती जिसका सम्बन्ध समुद्र-मंथन और विष्णु से है ।

कविवर क्षेमेन्द्र ने कूर्मावतार का विस्तृत वर्णन अपने महाकाव्य 'दशावतार चरितम्' में किया है । इसमें उन्होंने भगवान् विष्णु को ही दशावतार ग्रहण करने वाला बताया है । भगवान् विष्णु की स्तुति करते हुए कहते हैं कि - हे विश्वव्यापक विष्णु जी, तुम एक हो किन्तु कारण भेद से तीन रूपों में बंटे हुए हो जैसा कि ब्रह्मा रूप से सृष्टि के कर्त्ता हो, विष्णु रूप से पालक और शिव रूप में {युग समाप्ति पर} सृष्टि के विनाशक हो ।[1] पुनः समुद्रमंथन का वर्णन करते हुए कहते है कि समुद्र मंथन कार्य से समुद्र के व्याकुल होने पर कच्छप {कूर्म} की कठोर पीठ पर बैठे हुए तथा इधर-उधर झुकते हुए पर्वतराज

---

1. चतुर्मुखः सृष्टिविधौ समोऽपि, विष्णुः स्थितौ पाति जगन्निवासः ।
रुद्रो हरः संहरति त्रिलोकीमेकः स्वकारणभेदात्तत्वम् ॥
दशा० चरितम् श्लोक-8

मन्दर से उत्पन्न गंभीर शब्द मानो संसार रूपी घट को फोड़ने जैसे शब्द के भ्रम का कारण हो गया है ।[1] तत्पश्चात् विष्णु ने इन्द्र को समुद्रमंथन से निकले चन्द्रमा के समान चमकने वाले, श्यामाकार चार दाँतों वाले ऐरावत हाथी प्रदान किया, पुनः स्फूर्तिवान् उत्साहयुक्त, कीर्तिमान्, शुभ लक्षणों से युक्त, मनोरम वीरत्व, ओजगुण युक्त श्वेतवर्ण वाले उच्चैःश्रवा नामक अश्व को प्रदान किया ।

तत्पश्चात् मंथनक्रम से जो चन्द्रमा प्रादुर्भूत हुआ जिसे भगवान् विष्णु ने शिवजी के मस्तक पर सुशोभित किया । कौस्तुभमणि के प्राप्त होने पर विष्णु जी ने स्वयं धारण कर लिया और सुवर्ण जैसी आभा वाली हजारों शाखाओं से युक्त पारिजात वृक्ष इन्द्र भगवान् के नन्दन वन को सुशोभित करने लगा ।

समुद्र मंथन के इस क्रम में पुनः 'कालकूट' नामक विष उत्पन्न हुआ जिसे भगवान् शिव ने पीकर तीनों लोकों का कल्याण किया । उस महाविष को पीने से ही महादेव नीलकण्ठ से सुशोभित हो गए अर्थात् श्री शिवजी ने उस विष को गले से नीचे नहीं उतरने दिया जिसके कारण उनका कण्ठ नीला हो गया और 'नीलकण्ठ' के नाम से वह प्रसिद्ध हुए ।

---

1. [illegible]-मुखरितनिर्घोष-[illegible]-विष्णु
   तदा मथन [illegible] प्रमुदे,
   भुवन [illegible] [illegible] ।
   [illegible]-कमलदीर्घ-पुण्डरीक प्रतिष्ठ,
   प्रतिमुकुल[illegible]-निर्गत श्रीमन् ।

   पा० चरित्र, श्लोक सं०-16.

वराह अवतार :

भगवान् विष्णु के दशावतार में वराह अवतार का तीसरा प्रमुख स्थान है । यूं तो दसों अवतारों को तीन भागों में विभक्त किया गया है - प्रथम - पशु, द्वितीय - पशुमानव, और तृतीय - मानव । यह भगवान् विष्णु के प्रारम्भिक अवतार माने गए हैं । पौराणिक एवं तत्कालीन साहित्य में वराह का स्थान विशेष उल्लेखनीय है और यह वराहावतार का कई सदियों के क्रमिक विकास के फलस्वरूप निर्मित हुआ है । वैदिक साहित्य के मर्मज्ञों ने तत्र साहित्य में उपलब्ध कतिपय उपादानों पर विचार किया है, जिनमें कीथ, मैक्डोनल एवं डा० गोंद विशेष उल्लेखनीय हैं ।[1]

वैदिक साहित्य में विशेष रूप से ऋग्वेद में वराह एवं 'एमुष' नामक वराह का वर्णन मिलता है । ऋग्वेद 1/61/7 इन्द्र द्वारा वराह के मारे जाने का प्रसंग है । ऋग्वेद 8/77/10 एवं 10/99/6 दोनों में इन्द्र द्वारा वराह वध का ही वर्णन है । यहाँ वराह का सम्बन्ध प्रजापति या विष्णु से न होकर केवल इन्द्र से ही है । मैक्डोनल ने ऋग्वेद के 8/77/10 के 'एमुष' वराह से ही वराहावतार का बीज माना है । परन्तु कीथ महोदय ने इसे वृत्रासुर वध से सम्बन्धित कथा का रूपान्तरित रूप माना है।[2]

पुराणों में वराहावतार का प्रमुख उद्देश्य जलमग्न पृथ्वी को जल से बाहर निकालना बताया गया है । इस दृष्टि से "पृथ्वी उद्धार" का

---

1. मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद, डा०कपिलदेव, पृ० 412.
2. रेलिजन एण्ड फिलासफी आफ ऋग्वेद , पृ० 03.

यह मन्त्र अवश्य ही इस कथा का मूल रूप माना जा सकता है जिसमें पृथ्वी के बारे में वर्णन है कि जो पृथ्वी शत्रु और मित्र को समान भाव से धारण करने वाली, और वराह जिसको खोज रहे थे, ऐसी पृथ्वी वराह (रूपधारी भगवान्) को प्राप्त हुई ।[1]

तैत्तिरीय संहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण, शतपथ-ब्राह्मण तथा आरण्यक साहित्य में वराह-अवतार का विस्तृत वर्णन तथा प्रजापति एवं इन्द्र से सम्बन्ध बताया है । तैत्तिरीय संहिता में प्रजापति और वराह की कथा इस प्रकार उल्लिखित है -

पूर्वकाल में समस्त सृष्टि जलमग्न थी, चारों ओर सिर्फ जल ही जल था । प्रजापति इस जलमग्न सृष्टि के ऊपर वायु रूप में प्रवाहित होता था, उसने पृथ्वी को देखा और वराह में ऊपर उठा लिया ।[2] उसने विश्वकर्मा का रूप धारण कर पृथ्वी का जल पोंछ दिया । उस पृथ्वी का विस्तार किया और उसे पृथ्वी (फैली हुई) नाम से अभि-हित किया । इसके अलावा तैत्तिरीय ब्राह्मण में प्रजापति को ही वराह रूप में पृथ्वी को ऊपर उठाने वाला कहा गया है । जिसकी कथा कुछ इस प्रकार है -

---

1. मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।
   वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ॥
   अथर्ववेद संहिता 12/1/48.
2. आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत् । तस्मिन् प्रजापतिः
   वायुर्भूत्वाऽचरत् । स इमामपश्यत् । तां वराहो भूत्वा
   आहरत् ।
   तैत्तिरीय संहिता 7/1/5/1.

इस विश्व में पहले चारों ओर जल ही जल था । उस जल में प्रजापति तपस्या करते थे । तपस्या में लीन प्रजापति सोचते थे कि किस प्रकार सृष्टि की रचना हो । एक दिन अकस्मात् उन्होंने जल में एक कमल-पत्र को देखा - उसे देखकर प्रजापति ने सोचा- इसके नीचे अवश्य ही कोई आधार होगा जिस पर यह कमल पत्र आधारित है। ऐसा सोचकर उन्होंने वराह रूप धारण करके ठीक कमल पत्र के नीचे जल में प्रवेश किया, जल के नीचे उन्होंने पृथ्वी को देखा और उसके एक खण्ड को तोड़कर वह पुनः जल के ऊपर आ गए । उन्होंने उस [पृथ्वी के] खण्ड को फैलाया और उसे पृथ्वी नाम प्राप्त हुआ । इस प्रकार प्रजापति ने वराह का रूप धारण कर जल के भीतर निमज्जन किया । वह पृथ्वी को नीचे से ऊपर ले आये ।[1]

तैत्तिरीय आरण्यक में दूसरे प्रकार से कहा गया है कि एक कृष्ण [काला" वराह ने अपनी सौ बाहुओं से पृथ्वी को ऊपर उठाया।[2] परन्तु यहाँ पर किसी देवता विशेष के नाम का वर्णन नहीं किया गया जिसने वराह का रूप धारण किया हो सिर्फ उसके शतबाहु रूपी विचित्र शरीर से ऐसा प्रतीत होता है, मानों वह कृष्ण वराह किसी दैवी शक्ति से सम्पन्न हो ।

शतपथ ब्राह्मण में भी ऐसी ही कथा का वर्णन किया गया है । यथा -

---

1. स वराहो रूपं कृत्वोपन्यमज्जत । स पृथिवीमधः आर्च्छत् । तैत्तिरीय आरण्यक 1/1/6.
2. उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ॥ -तैत्तिरीय आ० 1/1/30.

उपर्युक्त कथा में प्रजापति या पृथ्वी किसी का भी उल्लेख नहीं हुआ, केवल विष्णु, यज्ञ और वराह का वर्णन हुआ है । इसलिए इस कथा को यज्ञ वराह की मूल कथा माना जा सकता है ।

वैदिक साहित्य के प्राप्त कथाओं से दो प्रकार की भूमि से सम्बद्ध और यज्ञ वराह के स्वरूप विकास की स्पष्ट परम्परायें मिलती है । सम्भव है, बाद में दोनों को एक ही परम्परा में समाहित कर दिया गया हो ।

यज्ञ वैदिक ग्रन्थों में प्रचलित तथ्य अधिकतः पुराणों में व्याप्त है । श्रीमद्भागवत के तीसरे स्कन्ध के तेरहवें अध्याय में बहुत ही सुन्दर और आकर्षक वर्णन किया गया है । इस स्थल पर 'यज्ञ वराह' के रूप में वराह को चित्रित किया गया है । तात्पर्य यह है कि यज्ञ में जितने साधन तथा अंग स्त्रुवा चमस आदि प्रयुक्त किए जाते हैं, उन सभी का प्रतिबिम्ब वराह के शरीर में विद्यमान था । वराह में 'यज्ञवराह' का निवारण स्पष्टतः वैदिकत्व का प्रभाव दे रहा है । अतः वराहावतार के पाताल लोक से भूशायी पृथ्वी के उद्धारकार्य प्रजापति के अन्य कार्यों में विशिष्ट स्थान रखता है और यह वेदों से निर्दिष्ट होकर पुराणों में उपबृंहित किया गया है । वैसे तो कहीं अन्यत्र मत्स्यावतार को प्रथम अवतार माना जाता है परन्तु कई जगह पर वराह को प्रथम अवतार माना गया है जिसे हम उचित भी कह सकते हैं क्योंकि जिस पृथ्वी पर

वराह अवतार के सम्बन्ध में जिस प्रकार क्षेमेन्द्र कवि वर्णन करते हैं, उसी प्रकार कविवर जयदेव भी वराहावतार का वर्णन अपने महाकाव्य "गीतगोविन्द" में करते हैं । जिस समय पृथ्वी पाताललोक में चली गई, चारों ओर जल ही जल दृष्टिगोचर हो रहा था । भगवान श्री कृष्ण ने सृष्टि की रक्षा के लिए, चन्द्रमा में निमग्न हुई कलंक रेखा के समान यह पृथ्वी [वराह रूप धारी भगवान के] दाँत की नोक पर सुशोभित हो रही है । तात्पर्य यह है कि जलमग्न पृथ्वी पर एक पताका सा फिरता हुआ जल के गर्त्त में छिपायी पड़ रहा था, जिसे ईश्वर ने वराह का रूप धारण कर अपने नुकीले दाँतों से खींच कर पृथ्वी और उसकी सृष्टि की रक्षा की । ऐसे शूकर रूप-धारी जगत्पति हरि केशव की जय हो ।[1] इस प्रकार जयदेव ने केवल पृथ्वी धारण करने के लिए या पृथ्वी का उद्धार करने के लिए वराह रूप का वर्णन किया है । हिरण्याक्ष वध की कोई चर्चा नहीं की ।

'लघुभागवतामृत' में रूप गोस्वामी जी ने कहा है कि — यज्ञ वराह ने ही पृथ्वी का उद्धार एवं हिरण्याक्ष वध किया था । वराह अवतार के प्रथम कल्प में दो अवतार माने गए हैं, प्रथम स्वायंभुव

---

1. वसति दशन शिखरे धरणी तव लग्ना ।
   शशिनि कलंककलेव निमग्ना ॥
   केशव धृत शूकररूप जय जगदीश हरे ॥ १ ॥
   गीत-गोविन्द — जयदेव,

मन्वन्तर में पृथ्वी की रक्षा के लिए ब्रह्मा जी की नासिका-रन्ध्र से, और द्वितीय चाक्षुष मन्वन्तर में पृथ्वी की रक्षा और हिरण्याक्ष के वध के लिए अवतार हुआ ।[1]

<u>नृसिंह अवतार :</u>

"वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्ण दंष्ट्राय तन्नो नरसिंहः प्रचोदयात्"[2] तैत्तिरीय आरण्यक के प्रपाठक दश के प्रथम अनुवाक के अनुसार इस गायत्री में नरसिंह अवतार के लिए "वज्रनख" तथा "तीक्ष्णदंष्ट्र" के पदों का प्रयोग उनकी भयंकरता की ओर आकृष्ट कर रहा है । इसी का उपबृंहण हिरण्यकशिपु को मारकर प्रह्लाद को आशीर्वाद देने वाले श्री नृसिंह भगवान के चरित्र चित्रण के समय पर पुराणों में किया गया है । श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कन्ध के अष्टम अध्याय में नृसिंह का जो सटामण्डित रूप वर्णित किया गया है, वह पूर्वोक्त गायत्री के "वज्रनखाय" तथा "तीक्ष्ण दंष्ट्राय" शब्दों पर मानो भाष्य रूप है-

"प्रतप्त चामीकर चण्डलोचनं,
स्फुरत् सटाकेसरजृम्भिताननम् ॥ 20 ॥
करालदंष्ट्रं करवाल चंचल-
क्षुरान्तजिह्वं भ्रुकुटीमुखोल्बणम् ।
स्तब्धोर्ध्वकर्णं गिरिकन्दराद्भुत:
व्यात्तास्यनासं हनुभेदभीषणम् ॥ 21 ॥[3]

---

1. लघुभागवतामृत, पृ0-46.
2. तैत्तिरीयारण्यक 1/1/31.
3. श्रीमद्भागवत 7-8-20-21.

ऋग्वेद संहिता में विष्णु के पराक्रम की तुलना करते हुए कहा गया है, चूंकि विष्णु के तीन पादक्षेप में सारा संसार रहता है, इसलिए भयंकर, हिंस्र, पर्वतीय मृग या वन्य जानवर के समान संसार विष्णु के शौर्य की प्रशंसा करता है ।[1] इस ऋचा के 'भीम मृग' से यहां कभी सिंह का बोध होता है । इस प्रकार के उदाहरण 'नृसिंह तापनीय उपनिषद' तथा 'यजुर्वेद संहिता' में भी दर्शनीय है । डॉ०कीथ ने नृसिंहावतार का बीज यजुर्वेद 29/8, तथा शतपथ ब्राह्मण 13/2/4/2 में प्रयुक्त "पुरुष व्याघ्र रूप" से माना है । कुछ विद्वानों ने नृसिंह-कथा का सम्बन्ध वैदिक साहित्य में प्रचलित 'इन्द्र-नमुची कथा' से माना है ।

ऋग्वेद एवं यजुर्वेद में कहा गया है जिस समय इन्द्र ने दस्युओं को जीता था, उसी समय नमुचि को समुद्र फेन से मार डाला था, उसका सिर छिन्न-भिन्न कर डाला था ।[2]

शतपथ ब्राह्मण में उपर्युक्त कथा को विस्तृत रूपमें देखा जा सकता है । इस कथा के अनुसार दैत्यराज नमुचि अपनी कठोर तपस्या से इन्द्र को प्रसन्न कर वर मांगता है कि इन्द्र उसे न वज्र से, न शुष्क स्थान में, न आर्द्र स्थान में, न रात्रि में, और न ही दिन में मारें ।[3]

---

1. ऋग्वेद संहिता 1·154·2.
2. शुक्ल यजुर्वेद ,ऋ० वे० 8/14/16.
3. शतपथ ब्राह्मण 12/7/3, 1-4.

श्रीमद्भागवत में भी हिरण्यकशिपु ब्रह्मा जी को तपस्या से प्रसन्न कर वर माँग लेता है कि "मैं ब्रह्मा के द्वारा निर्मित मनुष्य, पशु, प्राणी, अप्राणी, देवता, दैत्य और नाग से अवध्य होऊँ। भीतर-बाहर, दिन या रात्रि, अस्त्र या शस्त्र से, पृथ्वी या आकाश में कहीं भी मेरी मृत्यु न हो।[1]

परन्तु भागवत में इन्द्र - नमुचि कथा भी मिलता है - इसके अतिरिक्त 'अथर्वसंहिता' में हिरण्यकशिपु तथा ऋ०सं०, तै०सं० में हिरण्यकशिपु पुरोहित षण्डामर्क के वध का उल्लेख मिलता है।[2]

'तैत्तिरीय आरण्यक' के दसवें प्रपाठक के एक मन्त्र में नृसिंह अवतार का विष्णु से सम्बन्ध वर्णित किया गया है जिसमें वज्रनख वाले और तीक्ष्ण दाँतों वाले नृसिंह का वर्णन मिलता है, यहाँ नृसिंह के उपास्य रूप का ही अधिक बोध होता है।

'महाभारत' के 'नारायणीयोपाख्यान' के पश्चात् हिरण्यकशिपु के वध का वर्णन है। 'विष्णु पुराण' में भी प्रह्लाद की रक्षा हेतु भगवान् विष्णु नृसिंह रूप धारण कर हिरण्यकशिपु का वध करते हैं।[3]

'नृसिंह पूर्व तापनीयोपनिषद्' के अनुसार भगवान् विष्णु का क्षीरसागर में शयन करने वाला रूप ही विराट रूप नृसिंह है। वे

---

1 भागवत 7/3/35-36.

2. वैदिक साहित्य - रामगोविन्द तिवारी, पृ० 90.
ऋ०-2.30, तै०सं० 6/4/10.

3. वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्ण दंष्ट्राय धीमहि, तन्नो नारसिंहः प्रचोदयात्
तै०आ० 10/1/6.

विष्णु ही सोलह कलाओं में, एवं विविध ज्योतियों में व्याप्त रहते हैं, इसलिए महाविष्णु कहलाते हैं । जगत् के कल्याण हेतु नर और सिंह संयुक्त रूप धारण कर प्रकट होते हैं । 'त्रिदेव' रूप में लीला करने के कारण त्रिविध कहलाते हैं ।[1]

नरसिंहावतार का वर्णन कवि क्षेमेन्द्र, अपने महाकाव्य 'दशावतार चरित' में करते हैं । उनके अनुसार हिरण्याक्ष के वध के पश्चात् हिरण्यकशिपु ने दैत्यों की सेना का संगठन करके अपना राज्याभिषेक कराया और वह हिरण्याक्ष से भी अधिक श्री सम्पन्न हुआ । उसने समस्त शत्रुओं का समूल नाश कर दिया । एक बार, सभा में दैत्यराजों से घिरे हुए हिरण्यकशिपु से राक्षस राहु ने भगवान विष्णु के वध हेतु विनय की । सभा में विराजमान हिरण्यकशिपु का पुत्र भक्तराज प्रह्लाद भी उपस्थित था । विष्णु भक्त प्रह्लाद ने निन्दा करते हुए राक्षसों से कहा- "सब काल-विषय व्यापक सदैव विद्यमान रहने वाले भगवान विष्णु ही हैं । जन्म-मृत्यु रहित जिन विष्णु के अन्दर प्रलयकाल में करोड़ों जीव विलीन हो जाया करते हैं । उन विष्णु की पूजा करिये, ज्ञान,धैर्य तथा दया आदि को धारण करिए । मूर्खों के साथ परामर्श करना, दुष्टों से मित्रता करना हितकारी कार्यों के प्रति अरुचि आलस्य और गर्व-घमंड भगवान विष्णु के साथ शत्रुता जैसे कार्य विनाश के निमित्त होने के मुख्य हेतु कहते हैं ।[2]

---

1. कू० पु० भा० ३० 2/4.
2. दशा० चरित पंचम - श्लोक सं० 90/91/92.

भक्त प्रह्लाद के विष्णु के प्रति इस प्रकार के आदर युक्त वचनों को सुनकर उसके पिता हिरण्यकशिपु ने लज्जा, क्रोध और घृणा से अपने पुत्र प्रह्लाद से कहा – हे पुत्र प्रह्लाद, तुम मत्स्य वराहादि महाशरीर का धारण करने वाले जिस विष्णु की प्रशंसा वन्दना में ये वाक्य युक्त मत प्रदर्शन कर रहे हो ? यह कैसे संभव है कि शत्रु विनाशक वह, सिन्धुरूपी सागर वाले मधु दानवाधिराज कुम्भासुर, मय, तारक, शुम्भ, शम्बर, बाणासुर के होते हुए कल्याण रहित यह विष्णु सर्वथा प्रभावहीन है । हे दुष्टपुत्र ! सभा में मेरे सामने खड़ा हुआ यह जो मत्स्य मणियों से मण्डित स्तम्भ है, क्या तुम्हारे विख्यात विष्णु को मैं नहीं देखता हूँ । हिरण्यकशिपु के इतना कहने पर तेजो राशि नरसिंह स्तम्भ फाड़कर बाहर निकल आए । भगवान विष्णु के अवतारी नृसिंह ने तीक्ष्ण नाखूनों से दैत्यराज हिरण्यकशिपु के हृदय को विदीर्ण कर दिया ।

इस प्रकार उस नृसिंहावतारी भगवान विष्णु ने संसार का परम कल्याण करके प्रह्लाद को अजरामर आयु के साथ ही शान्ति प्रदान प्रदान कर तथा राज्याभिषेक करके अपने क्षीरसागर की ओर प्रस्थान किया।

इसी प्रकार कविवर जयदेव अपने महाकाव्य गीतगोविन्द में कहते हैं कि श्रीकृष्ण ही नृसिंह का रूप धारण कर हिरण्यकशिपु का वध करते हैं । जयदेव कहते हैं कि हिरण्यकशिपु रूपी तुच्छ भृंग को

चीर डालने वाले विचित्र नुकीले नख आपके कर कमल में हैं, ऐसे नृसिंह रूपधारी जगत्पति हे केशव आपकी जय हो ।[1]

उपर्युक्त दोनों ही कवियों ने नरसिंहावतार का ही वर्णन किया है । भक्त प्रवर प्रह्लाद के कथानक से चित्रित हैं नृसिंह केवल अवतार ही नहीं हैं, प्रत्युत सज्जनों के परित्राण और भक्तों की रक्षा करने वाले उपास्य देव के रूप में वर्णित रहे हैं । नरसिंह पुराण में तो नरसिंहावतार का वर्णन विशेष रूप से सविस्तार प्राप्त होता है। प्रायः सभी वैष्णव पुराणों में वामना अवतार कथाओं के अन्तर्गत नरसिंहावतार का मधुर वर्णन प्राप्त होता है ।

नरसिंहावतार विकास की कुछ अवस्था है, जिसमें पशुता से मानवता के विकास की कथा अन्तर्निहित प्रतीत होती है ।

वामनावतार :

भगवान विष्णु के अवतारों में 'वामन' रूप में अवतार यों भी वेदों में आया है । ऋग्वेद से ही इस अवतार के संकेत मिलने लगते हैं । ऋग्वेद के विष्णु सूक्तों के अनेक मन्त्रों में इस अवतार का वर्णन मिलता है । उदाहरण के लिए ऋग्वेद प्रथम मण्डल 154 सूक्त के अनुशीलन से विष्णु के वैदिक स्वरूप का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है, उनके विशिष्ट कार्यों में तीन पगों में समस्त पृथ्वी को नाप लेना अपनी अलग विशिष्टता रखता है । [विष्णुर्नारायणोलोकनाथः] विष्णु

---

1. तव कर कमलवरे नखमद्भुत शृंगम् दलितहिरण्यकशिपुतनुभृंगम् ।
केशवधृत नरहरिरूप जय जगदीश हरे ।
गीतगोविन्द – 10.

ने अकेले ही तीन पदों से इस दूर तक फैले हुए त्रिलोकों को नाप लिया है । यथा - य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित् पदेभिः [1/154/3] ऋग्वेद संहिता ।

भगवान् विष्णु को "उरुगाय" या "उरुक्रम" भी समस्त पृथ्वी को तीन पगों में नाप लेने के कारण ही कहा जाता है । वेदों में इन उक्त नामों को विष्णु के विशेषण रूप में जोड़ा जाता है ।[1] ऋग्वेद के इस मन्त्र से यही संकेत होता है कि विष्णु ने इस जगत को तीन चरणों से आक्रान्त कर पैर रखा और उनके धूलि-धूसरित [पांसुरे] पद में यह पृथ्वी आदि समस्त लोक अन्तर्हित हो गए ।

'शतपथ ब्राह्मण' में भी भगवान् विष्णु के लिए 'वामन' शब्द का प्रयोग किया गया है ।[2]

वेदों में जिस प्रकार 'उरुगाय' उरुक्रम आदि नामों का उल्लेख भगवान् विष्णु के लिए हुआ है, उसी तरह 'वामन' विशिष्ट नाम का प्रयोग वेदों में उल्लिखित है । अतः देखा जाता है कि 'वामनावतार' की कथा का स्रोत हमें वेदों में ही मिल जाता है जिसका आश्रय लेकर पुराणों एवं अन्य ग्रन्थों में वामनावतार का विभिन्न रूपों से वर्णन मिलता है ।

'विष्णु सूक्तों' के अनुशीलन करने पर भगवान्-गोपालकृष्ण की भी कथा का संकेत हमें वेदों में मिल जाता है । ऋग्वेद के एक मन्त्र

---

1. "इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् समूढमस्य पांसुरे"
   ऋग्वेद 1/22/17.
2. वामनो ह विष्णुरास - शतपथ ब्राह्मण [1/2/5/5]

युद्ध में देवता असुरों से पराजित हो गए । असुरों ने समस्त पृथ्वी पर एकाधिकार कर लिया ।

असुरों ने समस्त पृथ्वी को विभाजित करके परस्पर बंटवारा कर जीवन निर्वाह करने का आपस में विचार-विमर्श किया । इस निर्णय से देवता चिन्तित हो गए, वे सोचने लगे कि यदि इस बंटवारा में हमारा अंश हमें नहीं प्राप्त होगा तो हम अपना निर्वाह कैसे करेंगे ? तब देवताओं ने भगवान विष्णु से प्रार्थना की । भगवान विष्णु वामन (बौना) रूप धारण कर देवताओं की सहायता के लिए तत्पर हुए और जहाँ असुर पृथ्वी को बहुत बारीक रस्सी से पृथ्वी का बंट-वारा कर रहे थे, उसी में स्थान भगवान विष्णु वामन रूप धारण कर देवताओं के नेता के रूप में पहुँचे ।

वामन रूपधारी विष्णु को आगे करके देवताओं नेअसुरों से कहा - इस पृथ्वी का बंटवारा करने में जो हमारा अंश है, वह हमें मिलना चाहिए ।"

असुरों ने वामन रूपी विष्णु को देखकर उनका उपहास करते हुए व्यंग्य से कहा - जितने स्थान पर यह वामन सोता है या जितने स्थान पर यह वामन व्याप्त कर लेता है, उतनी पृथ्वी का अंश हम तुम लोगों को दे देंगे ।

विष्णु जी वामन रूप धारण किए हुए थे, इसलिए उनके शयन योग्य भूमि बहुत ही कम होती, इसलिए देवताओं ने पूर्ण विश्व

में विष्णु को स्थापित कर छन्दों के द्वारा उन्हें चारों ओर से घेर लिया । पूर्व दिशा में गायत्री छन्द से, दक्षिण में त्रिष्टुप् छन्द से, पश्चिम दिशा में जगती छन्द से, तथा उत्तर दिशा में उन्हीं छन्दों से चारों ओर से घेर लिया ।

पूर्व दिशा में अग्नि की स्थापना कर पूजा अर्चना करते हुए देवगण चारों ओर घूमने लगे और इस यज्ञ के प्रभाव से उन्होंने समस्त पृथ्वी को प्राप्त कर लिया ।

इस प्रकार इस कथा में वामन रूपी भगवान् विष्णु की ही विजय असुरों पर होती है और विष्णु के द्वारा ही देवगण असुरों से समस्त पृथ्वी पर अधिकार छीन पाते हैं ।

ऋग्वेद के अन्तर्गत विष्णु के त्रिविक्रम को तथा शतपथ ब्राह्मण की उपरोक्त कथा को मिलाकर पुराणों में भगवान् विष्णु के वामन अवतार का पूर्ण रूपेण प्रस्तुत किया गया है । अन्तर सिर्फ इतना ही है कि शतपथ ब्राह्मण में वामन रूपधारी विष्णु के माध्यम से देवता असुरों से पृथ्वी छीन लेते हैं और पुराणों में वामनावतारी विष्णु असुरराज बलि से पृथ्वी दान में माँग लेते हैं । 'शतपथ' में यज्ञ की भूमि को छन्दों के द्वारा विस्तृत कर भूमि आत्मसात देवों के द्वारा करने का वर्णन है तो पुराणों में वामन रूप धारी विष्णु तीन पग में विराट् रूप धारण कर पृथ्वी, स्वर्ग तथा बलि के शरीर को नापने के पश्चात् समस्त पृथ्वी असुरों से छीनकर देवताओं को दे देते हैं। दोनों कथाएं विष्णु के ही माहात्म्य-द्योतक हैं ।

पुराणों में विशेषतः भागवत पुराण के अष्टम स्कन्ध में वामन अवतार का वर्णन असुरराज बलि के प्रसंग में किया गया है। इसकी कथा का प्रकार है - असुर राज बलि ने स्वर्ग को जीत लिया, और इन्द्र सहित अन्य देवताओं को पराजित कर स्वर्ग से बाहर भगा दिया। पराजित देवगणों ने सामूहिक रूप से प्रार्थना की तब भगवान् (विष्णु) ने अदिति के गर्भ से जन्म धारण किया। देवताओं की प्रार्थना पर अदिति ने 'पयोव्रत' नामक व्रत किया था।[1]

वामन रूप धारण कर भगवान् बलि की यज्ञशाला में पधारे और दानवीर असुरराज बलि से तीन पग भूमि की याचना की। असुर गुरु शुक्राचार्य के निषेध करने पर भी राजा बलि ने वामन रूप-धारी भगवान् की कामना को पूर्ण किया। वामन ने दो ही पगों में स्वर्ग तथा पृथ्वी को नाप लिया और तीसरा चरण बलि के आत्म-समर्पित मस्तक पर रखकर अपने "त्रिविक्रम" नाम को सार्थक किया। बलि का यह यज्ञ नर्मदा के उत्तर तट पर 'भृगुकच्छ' आधुनिक नाम 'भड़ौच' में हुआ था, जहाँ भृगु लोगों ने ऋत्विज बनकर यज्ञ का कार्य सम्पन्न कराया था।[2]

---

1. श्रीमद्भागवत 8/18/21.
2. तं नर्मदायास्तट उत्तरे बलेः -

य ऋत्विजस्ते भृगुकच्छसंज्ञके ।

प्रवर्तयन्तो भृगवः क्रतूत्तमं,

व्यचक्षतारादुदितं यथा रविम् ॥

भागवत 8/18/21, अग्नि पुराण 4/5/13,

भागवत की यही कथा अन्य पुराणों में भी इसी रूप में मिलती है। भागवत में वैदिक विशेषणों का (वामन के लिए) अनेकशः प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिए – पृश्निगर्भ, वेदगर्भ, त्रिनाम, त्रिपृष्ठ, शिपिविष्ट तथा ब्रह्मण्यदेव आदि नामों के साथ ही 'उरुगाय' तथा 'उरुक्रम' शब्दों का प्रयोग स्पष्ट वेदों का अनुसरण करता है।[1]

वामनावतार की कथा वामन पुराण में तो है ही, लेकिन इस कथा का वर्णन श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध में 18/23 अध्याय में राजा बलि के यज्ञ के प्रसंग में आया है। अग्नि पुराण के चतुर्थ अध्याय के श्लोक 5-11 में वामनावतार की कथा का संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

'यजु' एवं अथर्व' संहिताओं में भी भगवान् विष्णु के तीन पग की महत्ता का वर्णन मिलता है। इन ऋचाओं में प्रयुक्त तीन पदक्रम का भाव निरुक्तकार तथा दुर्गाचार्य ने क्रमशः पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग तथा अग्नि, वायु और सूर्य से माना है और और्णनाभ ने सूर्य के उदय, मध्य और अस्त से लिया है किन्तु भाष्यकार सायण ने इन्हें विष्णु के वामन अवतार के तीन पग ही माने हैं। किन्हीं कार्य के आधार पर यहीं वामनावतार के मूलसूत्र देखे जा सकते हैं।

तैत्तिरीय संहिता और ब्राह्मणों में भी वामनावतार से सम्बन्धित कथाएं वर्णित हैं। तैत्तिरीय संहिता में विष्णु-वामन

---

1. भागवत 8/17/25-26.

इन्द्र से भी सम्बद्ध एक कथा वर्णित है, यथा - यह सम्पूर्ण पृथ्वी पूर्व-काल में असुरों के आधीन थी। देवताओं को केवल उतना ही भाग प्राप्त हुआ जितना कि एक मनुष्य बैठकर जितना दूरतक देख सके, जब देवताओं ने असुरों से अपना भाग माँगा तो देवताओं से असुरों ने पूछा कि तुम्हें कितना भाग चाहिए? देवताओं ने कहा—कि लोमड़ी जितना दूर तक तीन पगों में जा सकता है। असुरों के स्वीकार कर लेने पर इन्द्र ने लोमड़ी का रूप धारण कर तीन ही पग में समस्त पृथ्वी नाप ली, इस प्रकार पृथ्वी पर देवताओं ने अपना अधिकार प्राप्त किया।[1]

'तैत्तिरीय संहिता' में भी इसी प्रकार का कथा प्रसंग विष्णु से भी सम्बन्धित मिलता है। भगवान् विष्णु तीन पग में ही (वामन रूप में) समस्त पृथ्वी को नाप लेते हैं। इसलिए अन्य देवताओं से भगवान् विष्णु श्रेष्ठतम माने गए हैं।

'ऐतरेय ब्राह्मण' में कहा गया है कि इन्द्र और विष्णु एक साथ असुरों से लड़े थे। बाद में असुरों और देवताओं में यह निश्चित हुआ कि विष्णु तीन पग में जितना नाप लेंगे उतनी ही पृथ्वी देवताओं को मिलेगी। विष्णु ने लोक, वेद और वाक् को नाप लिया।[2] यहाँ इन्द्र और विष्णु दोनों का ही वर्णन किया गया है।

---

1. तैत्तिरीय संहिता- 11/1/3·1.
2. ऐतरेय ब्राह्मण 6/15.

बलि वामन की पौराणिक कथाओं में असुर राज बलि का वर्णन किया गया है परन्तु विष्णु पुराण [3/3/43-43] और भागवत [8/13/6] की मन्वन्तरावतार कथाओं में जिस वामन का वर्णन हुआ है, उनका असुर राज बलि में कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता ।[1]

महाभारत में वामनावतार का सम्बन्ध बलि से भी वर्णित है । भागवत आदि पुराणों में यही पौराणिक रूप विशेष रूप से गृहीत हुआ है ।

पौराणिक कथाओं का ही आश्रय लेकर संस्कृत साहित्य के महाकवि क्षेमेन्द्र ने भी अपने दशावतार चरित्र में बलि वामन का ही वर्णन किया है यथा -

भगवान् विष्णु ने नृसिंहावतार धारण कर भक्त प्रह्लाद की रक्षा करके उनके पिता राक्षसराज हिरण्यकशिपु का वध करके प्रह्लाद का राज्याभिषेक किया, तदनन्तर उसने अपने पुत्र विरोचन को राज्य भार सौंप दिया और विरोचन पुत्र राजा बलि का राज्याभिषेक होने पर उसके यश, विजय और दानवीरता से भयभीत इन्द्र सहित समस्त देवताओं ने भगवान विष्णु से उसके बढ़ते हुए यश और अपनी पराजय को रोकने की प्रार्थना की ।

भगवान विष्णु ने देवताओं की प्रार्थना पर, दैत्यों की विजय से अशान्त, त्रिलोक के कल्याण की कामना से अपना विराट

---

1. श्रीमद्भागवत 8/13/6.

रूप त्यागकर वामन रूप धारण कर लिया तत्पश्चात राजा बलि की यज्ञशाला में जहाँ मरीचि, अत्रि, अंगिरस आदि ऋषियों के द्वारा, सुविपुल दान से सन्तुष्ट, भरे पूरे याचक समूह वाले उस अश्वमेध यज्ञ के प्रारम्भ होने पर भगवान विष्णु - घुंघराले काले बालों, तीन कण्ठों से बनी उंगली से सुशोभित कर कमल, कंकण, कुण्डल और किरीटधारी, श्यामवर्ण वाले वामन रूप में शोभायमान होने लगे ।[1]

वामन रूपधारी भगवान विष्णु को देखकर बलि उन्हें अद्भुत बालक समझकर सम्मानपूर्वक आसन देते हैं । तब वामन रूपधारी विष्णु केवल तीन पग भूमि का याचना करते हैं । कामना पूर्ति के पश्चात् वे एक पग में ही समस्त त्रैलोक्य को नाप लेते हैं, दूसरे पग को दैत्यराज बलि के मस्तक पर रख देते हैं । तत्पश्चात वामन राजा बलि के तीनों लोकों के ऐश्वर्य को छीनकर देवताओं को दे देते हैं ओर भगवान (कृष्ण) के वामनावतार के सम्बन्ध में कविवर जयदेव ने भी अपने महाकाव्य गीतगोविन्दम् में सुन्दर वर्णन किया है । कविवर जयदेव कहते हैं कि - हे आश्चर्यजनक वामन रूप धारी केशव । आपने पैर बढ़ाकर राजा बलि को छला तथा अपने चरण नखों के जल से लोगों

---

1. श्यामः शिशु कुंचित कुन्तलोऽभि त्रिकण्ठाङ्गुलि कृत पाणिपद्मः ।
कैङ्कणः कुण्डलवान्किरीटी स ब्रह्मराज्य प्रतिभासकारी ॥
दशावतार चरितम् - 191.

को पवित्र किया, ऐसे जगत्पति केशव की जय हो ।[1]

वामन-पुराण में तो भगवान् - वामन की पराक्रम - कथाओं का गायन निहित है । इस प्रकार में पौराणिक साहित्य के विकास के तत्त्व परिलक्षित होते हैं ।

<u>परशुरामावतार :</u>

साहित्य में व्यक्तिगत वैशिष्ट्य के मूल्यांकन में गुण और चरित्र का विशेष योग माना गया है । विभिन्न कालों में विभिन्न साहित्यकारों द्वारा इस सम्बन्ध में विभिन्न मापदण्ड प्रस्तुत किए गए हैं । जैसे - वैदिक काल में देखा जाए भी प्रधानता थी तो मानवीयगुणों को दैवी और आसुरी दो भागों में विभक्त किया गया था ।[2]

साधु, सज्जनों की रक्षा, असुरों का नाश, दुष्टों का संहार आदि के लिए शक्ति, पराक्रम, तेज आदि अवतारी पुरुषों के प्रधान गुण बतलाये जाते हैं । और इन गुणों से युक्त वैदिक काल में इन्द्र

---

1. छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन ।
   पदनखनीर जनित जन पावन ।
   केशव धृत वामन रूप जय जगदीश हरे ॥
   गीतगोविन्दम् जयदेव श्लोक-5.
2. श्रीमद्भगवद् गीता 16/5.16/6.

या विष्णु को ही माना जाता था । यही कारण है कि वीर पुरुषों को इन्द्र या विष्णु के समान पराक्रमी कहा जाता था ।[1] यही भावना धीरे-धीरे अवतार शब्द में रूढ़ि हो गयी । ऐतिहासिक पुरुषों में परशुराम, राम और कृष्ण के प्रारम्भिक अवतारवादी विकास में इन प्रवृत्तियों का विशेष योग रहा है ।

दशावतारों के पाँच पौराणिक अवतारों के अतिरिक्त परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि आदि महापुरुषों को ऐतिहासिक महापुरुष ही बहुत से इतिहासकारों ने माना है । इनमें परशुराम अपने युग के सबसे अधिक प्रतिभाशाली व्यक्तियों में रहे हैं, इसीलिए बहुत से विद्वान इतिहासकार इस काल को 'परशुराम काल' कहते हैं जो अतिशयोक्ति नहीं की जा सकती ।

ऋग्वेद में राम जामदग्न्य का वर्णन प्राप्त होता है ।[2] बहुत से विद्वानों ने परशुराम को ऐतिहासिक महापुरुष माना है, तो बहुत से विद्वानों ने उन्हें अवतारी पुरुष माना है । श्री के०एम०मुंशी के मतानुसार 'अथर्ववेद' में परशुराम के अवतारत्व का प्रमुख प्रयोजन हैहय वीति एवं भृगुवंशी जनों में युद्ध एवं गौ सम्बन्धी कथाओं का उल्लेख मिलता है । मि०पार्जिटर ने भी परशुराम को ऐतिहासिक महापुरुष ही माना है । इनके मतानुसार ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के

---

1. विष्णुना सदृशो वीर्ये, - वाल्मीकि रामायण 1/1/18.
2. ऋग्वेद 10/110.

लोक में परशुराम ने क्षत्रियों को उखाड़कर मालाबार तट पर ब्राह्मणों को बसाया था ।[1]

परशुराम को भी राम और कृष्ण के समान ही भगवान विष्णु का अवतार माना गया है परन्तु जिस प्रकार राम और कृष्ण को पहले अंशावतार फिर कालान्तर में पूर्णावतार मान लिया गया है, उसी प्रकार परशुराम को अंशावतार तो माना गया है परन्तु पूर्णावतार नहीं माना गया । परशुराम को भगवान विष्णु के तेज, वीर्य और पराक्रम से युक्त अवतार माना गया है, परन्तु जनकपुरी में धनुर्भंग के पश्चात् राम द्वारा परशुराम का तेज और पराक्रम का हरण कर लिया जाता है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि परशुराम का अवतारत्व भी राम द्वारा हरण कर लिया गया और परशुराम केवल वीर महापुरुष रह गए । इस प्रसंग से यह आभास होता है कि यह युग ऐतिहासिक एवं दर्शन की अपेक्षा साहित्यिक अधिक है, तभी तो कवि सहस्त्रों वर्ष बाद भी अपने प्रतिपाद्य पात्र को पूर्ववर्ती पात्र से श्रेष्ठतम प्रदर्शित करता है । इससे स्पष्ट होता है कि महाकाव्य काल में अंशावतार की भावना साहित्यिक थी ।

परशुराम का अवतार छठा माना जाता है, मत्स्यपुराण में परशुराम अवतार के सम्बन्ध में लिखा है कि यह अवतार उन्नीसवें

---

1. हिन्दूइज्म ऐण्ड बुद्धिज्म लिस इण्डिया पण्डिचेरी 2, पृष्ठ-118.

त्रेता युग में हुआ था तथा विश्वामित्र विष्णु के पुरोहित थे, वह अवतार वामन और राम के मध्य का अवतार माना जाता है।[1]

भागवत के अनुसार यह सोलहवाँ या सत्रहवाँ अवतार विष्णु के 22 अवतारों के बीच में माना जाता है।[2] विष्णु पुराण (4/7.4/11) में भी इस अवतार के बारे में कहा गया है। यह अवतार भी राम, कृष्ण की भाँति ऐतिहासिक ही माना जाता है क्योंकि परशुराम को ऐतिहासिक व्यक्ति ही माना गया है। इनके जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घटना है कार्तवीर्य हैहय का मारा जाना तथा उद्धत क्षत्रिय राजाओं का 21 बार संहार। इनके द्वारा किए गए कार्य अलौकिक भले ही माने जा सकते हैं परन्तु अति मानव नहीं। इनके कार्यों ने यह सिद्ध कर दिया कि पृथ्वी की रक्षा के लिए एवं प्रजा के कल्याण के लिए नियुक्त क्षत्रिय शासक भी यदि प्रजा या ब्राह्मणों का शोषण करते हैं, अत्याचार करते हैं, पृथ्वी इनके अत्याचारों से त्राहि-त्राहि करने लगती है, तब भगवान परशुराम अवतार लेकर अभिमानी एवं दुष्ट राजाओं का गर्व हरण कर प्रजा और ब्राह्मणों के सम्मान की रक्षा कर पृथ्वी का भार हल्का करते हैं। 'क्षत्रात् किल त्रायते इति क्षत्रियः' यह सर्वविदित उक्ति है किन्तु परशुराम ब्राह्मण होकर भी

---

1. एकोनविंश्यां त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकृद् विभुः ।
   जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्र पुरः सरः ॥
   मत्स्यपुराण 47/241.

2. भागवत 1/3/20, 2/7/22, 9/15-16.

दुष्ट क्षत्रिय शासकों का 21 बार नाश कर पृथ्वी पर से अत्याचार हटाते हैं ।

महाभारत पूर्वयुग में इस अवतार का कहीं भी वर्णन नहीं मिलता है । कात्यायन की रचना 'सर्वानुक्रमणी' में जमदग्नि के पुत्र परशुराम किन्हीं वैदिक मन्त्रों के द्रष्टा हैं [10/110] । कालान्तर में शायद इन्हीं वैदिक द्रष्टा राम को ही जामदग्न्य परशुराम माना गया हो । परन्तु वैदिक ऋषि के सौम्य, शान्त रूप के साथ वीरयोद्धा शौर्य मण्डित कार्यकलापों की कल्पना ठीक नहीं लगती । महाभारत में इन्हें वीरपुरुष के रूप में चित्रित किया गया है । 'गीता' में जिस राम को अनेक विभूतियों से विभूषित किया गया है, वे 'भार्गवराम' माने गए हैं और इन्हीं को बाद में विष्णु अवतार से सम्बन्धित किया गया किन्तु कुछ आचार्यों ने गीता में उक्त राम को दाशरथि राम माना है ।[1]

महाभारत के 'वनपर्व' में एक प्रसंग में कहा गया है कि अत्याचारी 'कार्तवीर्य' के अत्याचार से त्राहि-त्राहि करते हुए इन्द्रादि देवताओं ने भगवान् विष्णु से उसके विनाश के लिए प्रार्थना की । इसी प्रकार 'नारायणीयोपाख्यान' में भगवान् विष्णु कहते हैं कि मैं त्रेतायुग में भृगुकुल' का उद्धार करूँगा और 'परशुराम' के रूप में अवतार लेकर क्षत्रियों की बढ़ती हुई सेना तथा वाहनों का संहार करूँगा ।[2] 'विष्णु पुराण' में

---

1. पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् । -श्रीमद्भगवद्गीता 10/31।
2. महाभारत वन पर्व 12/339/84.

हैहय राजकार्तवीर्य अर्जुन के वध करने वाले परशुराम को भगवान का अंशावतार कहा गया है ।[1] 'भागवत' के अनुसार परशुराम (अंशावतार) ने ही हैहयराज सहस्त्रार्जुन, के हैहयवंश का नाश किया और अत्याचारी क्षत्रियों का 21 बार पृथ्वी पर संहार किया ।[2]

कवि जयदेव ने भी इस अवतार के बारे में वर्णन करते हुए कहा है कि (कृष्ण भगवान ने) परशुराम अवतार में क्षत्रियों के रक्त से पृथ्वी को स्नान कराकर संसार के समस्त पापों और तीनों तापों का नाश किया है ।[3] वह कहते हैं कि हे केशव ! आप जगत के ताप और पापों का नाश करते हुए, उन क्षत्रियों के रुधिर रूप जल से स्नान कराते हैं । ऐसे आप परशुराम रूपधारी जगत्पति हरि की जय हो ।

इसी प्रकार कवि क्षेमेन्द्र भी कहते हैं कि भगवान विष्णु ने भृगुओं के विमल कुल में दैत्यदारिद्र्य - अन्धकार रूपी हाथियों के समूह का नाश करने वाले सिंह पराक्रमी प्रचण्ड तेजस्वी सूर्यरूपी सिंह जैसे शूरता, धीरता के सागर जमदग्नि पुत्र राम (परशुराम) के रूप में अवतीर्ण हुए ।[4] एक बार अहंकारी राजा सहस्त्रार्जुन अपनी सेना के साथ जमदग्नि

---

1. विष्णु पुराण 4/7/36.
2. भागवत 9/15/15, 13,20,27,22 और 11/4/21.
3. क्षत्रिय रुधिरमये जगदपगतपापम् ।
   स्नपयसि पयसि शमित भवतापम् ।
   केशव धृतभृगुपतिरूप जय जगदीश हरे ।

   गीतगोविन्द 1/3.
4. दशावतार चरितम्, परशुरामावतार, श्लोक-8.

के आश्रम आकर और तपोवन को तहस-नहस कर महर्षि जमदग्नि की कामधेनु गाय का भी अपहरण कर अपनी राजधानी लौट गया । परशु-राम जी के आने पर वृत्तान्त सुनने पर क्रोधित होकर राजधानी की ओर गए और सहस्त्रार्जुन को युद्ध के लिए ललकारा । दोनों महा-वीरों में युद्ध हुआ, अन्त में सहस्त्रार्जुन मारा गया । सहस्त्रार्जुन के मरने पर क्रुद्ध हुए अन्य क्षत्रिय राजा संगठित होकर तपोवन में आये और तपोवन विनाश के साथ ही महर्षि जमदग्नि को मार डाला । यज्ञ हेतु फल तथा समिधायें लेकर आश्रम लौटने पर जब परशुराम को पता लगा, तब राजकुलरूपी वनों के वन में तीव्र दाहक अग्नि स्वरूप परशुराम जी ने युद्ध रूपी यज्ञ कार्य के प्रत्यक्ष क्रियाभ्यास वाले क्षेत्र में अपार बल की दक्षिणा देने में शीघ्रता से पहुँचकर समस्त राजाओं का विनाश करके रक्त से सराबोर सरोवर में स्नान करके मानो जल से धुले हुए स्वेत कुण्डल से शोभायमान परशुराम जी ने क्रोधयुक्त होने के लिए समस्त संसार के क्षत्रिय जीवरूप वेणुवन को अग्नि रूप होकर भस्म करके श्रद्धापूर्वक श्राद्ध कर्म करते हुए बिछे हुए बाण रूपी कुशों पर क्षत्रिय राजाओं के जिनके मुकुटों से गिरे हुए दीप्त रत्न रूपी तिल और चावलों से सुशोभित मुण्डरूपी पिण्डों को अर्पित कर विदा किया । ऐसे उन परशुराम जी की जितनी स्तुति की जाये कम है ।[1]

---

1. गत्वा जवेन रणयज्ञ विधान दीक्षा-
   देशं क्षणात्क्षितिपतीन च नोप्लवाद्भिः ।
   कृत्वा समस्त नृप सैनिकसंहारं,
   वेशद्वेष न भवान्भिवरराम रामः ॥
   [illegible] परिषद, परशुराम अंक- 33-34.

इस प्रकार दुष्ट क्षत्रिय राजाओं को दण्ड देने के लिए और अपने पारलौकिक बल से धर्म की संस्थापना करने वाले परशुराम सर्वजन वन्दनीय हैं ।

रामावतार :

वैदिक - साहित्य में रामकथा के विभिन्न पात्रों का वर्णन मिलता है परन्तु इन सभी पात्रों में पारस्परिक सम्बन्ध दृष्टिगोचर नहीं होता है । ऋग्वेद [10/60/4] में एक बार "इक्ष्वाकु" शब्द का प्रयोग हुआ है तथा अथर्ववेद में [19/39/9] में भी एक बार ही 'इक्ष्वाकु' शब्द का प्रयोग हुआ है । ऋग्वेद [1/126/4] की एक दान स्तुति में, जहाँ अन्य राजाओं के दान की प्रशंसा की गयी है, वहीं एक बार दशरथ का नाम भी आया है ।[1] इसमें कहा गया है कि चालीस भूरे रंग के घोड़े एक हजार घोड़ों के दल का नेतृत्व करते हैं ।

इसी प्रकार राम नामके अनेक व्यक्तियों का वर्णन वैदिक साहित्य में मिलता है ऋग्वेद [10/93/14] में राजा के रूप में 'राम' का वर्णन हुआ है ।

ऐतरेय ब्राह्मण में [7/27/34] राम मार्गवेय जो श्यापर्ण कुल के तथा जनमेजय के समकालीन थे, का वर्णन किया गया है ।

शतपथ ब्राह्मण [4/6/1,7] में राम औपतस्विनी को

---

1. चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति ।
   ऋग्वेद [1/126/4]

याज्ञवल्क्य के समकालीन आचार्य (दार्शनिक) के रूप में प्राप्त होता है। जैमिनीय उपनिषद् ब्रा० में भी दो स्थानों पर राम क्रतुजातेय एक वैदिक आचार्य के रूप में वर्णित हैं।

परन्तु इससे सिर्फ यही आभास होता है कि राम नाम वैदिक काल में राजाओं तथा ब्राह्मणों में उपलब्ध था। किसी अवतार के विषय में कुछ स्पष्ट ज्ञात नहीं होता। इसी प्रकार जनक वैदेह एवं सीता का भी नाम वैदिक साहित्य में अनेकशः उपलब्ध होता है।

श्री जैकोबी आदि विद्वानों ने वाल्मीकि रामायण' की समीक्षा करते समय राम का सम्बन्ध इन्द्र से स्थापित किया है।[1] जिससे राम का रूप पौराणिक हो जाता है, परन्तु राम के ऐतिहासिक रूप के द्योतक भी वाल्मीकि रामायण और महाभारत दो महान् ग्रन्थ विद्यमान हैं। वाल्मीकि - रामायण की आदिकथा में राम को विष्णु के समान वीर्यवान् एवं पराक्रमी माना गया है।[2]

रामायण के प्रथम खंड में उन्हें विष्णु का अंशावतार और उत्तरकाण्ड में पूर्णावतार माना गया है, तो महाभारत के 'नारायणीयोपाख्यान' में अवतारों की संख्या-6 और 10 दोनों सूचियों में राम का नाम आया है।

विष्णु पुराण में राम को विष्णु का अंशावतार कहा गया है।[3] श्री भंडारकर रामावतार की प्राचीनता मानते हुए भी 'रघुवंश'

---

1. हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर पृ० 13, जैकोबी और आर०सी०दत्त का मत उद्धृत । कृष्णमाचारी.
2. विष्णुना सदृशो वीर्ये, वाल्मीकि रामायण 1/1/18.
3. विष्णु पुराण 4/4/87.

के 'दसवें सर्ग' में वर्णित [illegible] विष्णु के अवतार राम को अधिक प्रामाणिक मानते हैं -क्योंकि महाकाव्यों और पुराणों की तुलना में रघुवंश के प्रक्षिप्त होने की आशंका नहीं है, फिर भी बौद्ध पालि साहित्य में बुद्ध को रामावतार एवं बोधिसत्व के रूप में और जैनों में राम के आठवें बलदेव के रूप में माने जाते हुए देखकर, ईसा पूर्व राम के अवतार रूप में विख्यात होने का अनुमान किया जा सकता है ।[1]

तीसरी सदी के माने जाने वाले नाटककार भास के नाटकों में राम और सीता को अवतारी कहा गया है, उनके प्रसिद्ध नाटक "प्रतिमानाटकम्" में राम, लक्ष्मण, सीता को क्रमशः सत्य, भक्ति और शील का अवतार कहा गया है ।[2]

वैदिक कार्यों के लिए भगवान् विष्णु रामरूप में आविर्भूत होते हैं । वैदिक कार्यों से तात्पर्य है भूभार हरण, ताड़का से रावणतक देव शत्रु असुरों का संहार, वेद, ब्राह्मण और गो-रक्षादि। इन अवतारी कार्यों का प्राचीनतम रूप वैदिक प्रतीत होता है । 'वाल्मीकि रामायण' में वैदिक विष्णु का पूरा प्रभाव दीखता है, इसलिए यहाँ देव शत्रुओं का वध, भूभार हरण आदि के लिए भगवान् राम के रूप में भगवान् विष्णु अवतार लेते हैं । 'अध्यात्म रामायण' में भी

---

1. रामकथा बुल्के, पृ० 146.
2. अत्र रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च महायशाः ।
   सत्यं शीलं च भक्तिश्च येषु विग्रहवत् स्थिता ॥
   भास प्रणीतम् प्रतिमा-नाटकम् 4.4.

वैसा ही वर्णन मिलता है ।

वेदों में उन्हें 'नेति - नेति' कहा गया है, वे उपास्य राम अष्ट सिद्धि भक्ति और मुक्ति प्रदान करने वाले हैं, वे अवतार रूपि परब्रह्म और अवतारी हैं । उनकी ज्योति से अखिल विश्व आलोकित है । उन्होंने कैटभ, नरकासुर, मधु और मुर को मारा, उन्होंने ही बलि के सामने हाथ पसारा । वे बड़े-बड़े दानियों जैसे स्वभाव वाले, शत्रुओं से दान लेने वाले, समस्त द्वीपों के राजा गौ और ब्राह्मणों के रक्षक, देवताओं के पालक, अमल, अनन्त, अनादि देव विष्णु के सदृश वीर हैं, वेद इनके समस्त रहस्यों का उद्घाटन करने में असमर्थ हैं ।[1] समस्त प्राणियों को समान दृष्टि से देखते हैं, इनका न किसी से राग है और न द्वेष, फिर भी कभी भक्तों के निमित्त ही ये पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं । ब्रह्मादि भी जिनका अन्त नहीं पा सके, वेदों में अनेक प्रकार से इनकी स्तुति गान हुआ है, इस प्रकार ये राम केवल ब्रह्म हैं । ये राम अधर्म का नाश और धर्म का उत्थान करने वाले हैं, उन्होंने भक्तों की पुकार पर स्वेच्छा से पृथ्वी पर शरीर धारण किया । रावण को मारकर तपस्वियों की रक्षा करना, इनका प्रमुख कार्य रहा है । अनेक यज्ञों के फलस्वरूप ही महर्षि अगस्त्य ने भगवान राम का दर्शन किया । वेदों में "पूर्णकाम" रूप में स्तुति होने पर भी

---

1. वाल्मीकि रामायण - 1 प्रथम सर्ग.

विश्व के कर्त्ता, पालक तथा संहारकर्त्ता होने पर भी इन्होंने भक्तों की पुकार पर मनुष्य शरीर धारण किया । वे देवताओं में श्रेष्ठतम, असुरों के संहारक और तपस्वियों के रक्षक, भू-भार हरण करने वाले हैं। इनके नर रूप लीला की चर्चा करते हुए कहा गया है कि श्री रघुनाथ जी सर्वव्यापी और सर्वज्ञ होने पर भी मनुष्य लीला करते हैं। इन्हें परम पुरुष, नारायण, सदा शुद्ध, समदर्शी, करुणा निधान, मर्यादा पुरुषोत्तम, विश्व के आदि, मध्य और अवसान, विश्व मोहक आदि नामों से अभिहित किया जाता है ।[1]

भगवान् राम को अन्य कवियों ने महावीर, धीर, धर्म - धुरन्धर शारंग धनुष धारण करने वाले, दानव दल का विनाश करने वाले, कलि मल का मंथन करने वाले, देव- द्विज, दीनों के दुःख हरन करने वाले और पूर्ण पुरुष व पूर्णावतार है, ऐसा माना है । भगवान राम परम कृपालु, दिक्पालों के रक्षक, पाताल और स्वर्ग के विशाल आधार स्तम्भ हैं, वे परम उदार, भू-भार हरण करने वाले हैं । सभी अवतारों में राजा राम ही पुरुषोत्तम कहकर गाए गए हैं ।[2]

अन्य कवियों के समान संस्कृत साहित्य के महान नाटककार भवभूति ने भी अपने सुप्रसिद्ध नाटक उत्तर राम चरितम् में

---

1. अध्यात्म रामायण 1/2/24.
2. नरसिंह पुराण - अवतार कथा उपाख्यान.

भगवान राम को अवतारी मान कर उनका सरल, मनोरम चित्रण किया है । यथा - भगवान् राम हिन्दुओं में विष्णु के अवतार माने जाते हैं, वह आदि से अन्त तक मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, उनमें शील, शक्ति तथा सौन्दर्य गुणों की पराकाष्ठा है । वे त्याग तथा तपस्या की मूर्ति हैं। पिता के वचन को सत्य सिद्ध करने हेतु राज्य का त्याग कर वन जाते हैं, प्रजारंजन हेतु सीता का त्याग, आदर्श राजा एक पत्नीव्रत, कर्तव्यनिष्ठ आदि राम के स्वाभाविक गुणों का दर्शन कराते हैं । "वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि, लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति [2/7] उक्ति को चरितार्थ करते हुए राम जितने ही अधिक कोमल दिखाई देते हैं, कष्ट के समय उतने ही वज्र के समान कठोर स्वभाव वाले हो जाते हैं । यही महापुरुषों के लक्षण हैं ।

कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने 'दशावतार चरित्र' में भगवान राम का वर्णन बहुत ही सुन्दर किया है, यह अवतार क्षेमेन्द्र जी की मौलिक उद्भावना के कारण सर्वश्रेष्ठ बन गया है क्योंकि इसमें प्रतिनायक चित्रण के पश्चात् नायक के उदात्त चरित्र की प्रतिष्ठापना की है, उनके अनुसार राक्षस राज रावण के अत्यधिक अत्याचार के कारण भगवान् विष्णु राम रूप में पृथ्वी पर अवतीर्ण होते हैं और प्रजा, साधुओं, स्त्रियों एवं गो आदि की रक्षा हेतु रावण के वंश का समूल विनाश करके राज्याभिषेक करवाते हैं, परन्तु पुनः प्रजारंजन हेतु सीता का त्याग करते हैं, अश्वमेध यज्ञ के पश्चात सीता के पाताल गमन पर शोकाकुल रामचन्द्र की एकान्त-

महाकाव्य काल में विष्णु का अवतारवाद से सम्बन्ध होने पर अवतारवाद का प्रमुख प्रयोजन देव समुदाय, विप्र हेतु, सुर धेनु आदि की सुरक्षा रहा है । 'गीता' युग तक अवतार का पूर्ण सम्बन्ध धर्म पर आधारित हो जाता है । गीता [4/7] के अनुसार धर्मोत्थान के लिए आविर्भाव की आवश्यकता होती है । साधुओं के परित्राण, दुष्टों के विनाश, धर्म की रक्षा की आवश्यकता युग-युग में होती है ।[1]

श्री रामावतार कथा के अवगाहन से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीराम में मानवता की पराकाष्ठा विद्यमान है ।

श्री कृष्णावतार :

वैदिक साहित्य में कृष्ण का अस्तित्व असन्दिग्ध है, इन कृष्णों के तीन रूप प्राप्त होते हैं । प्रथम - कृष्ण आंगिरस, द्वितीय आर्येतर संस्कृति से सम्बद्ध कृष्णासुर और तृतीय कृष्ण अर्जुन के सहयोगी के रूप में महाभारत में दिखाई देते हैं ।[2]

---

1. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत,
   अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।
   परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्,
   धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे - युगे ॥
   गीता श्लोक 4/7, 4/8,
2. ऋग्वेद 8·74, 1/130/8,
   वही 2/207, 8/25/13

महाभारत के नायक वासुदेव कृष्ण के वासुदेव से सम्बन्ध का अनुमान देवकी पुत्र कृष्ण से किया जा सकता है। 'अष्टाध्यायी' से केवल वासुदेव भक्ति का ही नहीं बल्कि कृष्ण वासुदेव से सम्बन्ध का भी ज्ञान होता है।[1] क्योंकि 'गीता' में कृष्ण ने अपने को वृष्णियों में वासुदेव और पाण्डवों में धनंजय कहा है।[2] महाभारत में इन्हें विष्णु का अवतार कहा गया है।[3] तैत्तिरीय आरण्यक 1/1/6 एवं महाभारत नारायणीयोपाख्यान 4/16 में वासुदेव, नारायण, विष्णु एक साथ प्रयुक्त हुए हैं।

विद्वानों ने वैदिक साहित्य में वृष्णि, राधा, व्रज, गोप, रोहिणी आदि उपादानों को ढूंढने का प्रयास किया है जिसमें ऋग्वेद 9/52/17 के अनुसार यमुना तट गौ के लिए प्रसिद्ध रहा है तो तैत्तिरीय ब्राह्मण 3/11/9.3, जै0 ब्राह्मण 1/6.1 में गोपाल वार्ष्णेय' नामक शिक्षक का उल्लेख है। ऋग्वेद 1/22/18 में प्रयुक्त 'विष्णु गोपः' में गोविन्द, गोपाल, गोपेन्द्र आदि का भी कुछ विद्वानों ने अनुमान किया है। महाभारत 12/343/70 में वासुदेव स्वयं को गोविन्द कहते हैं। गीता 1/32 और 2/9 में गोविन्द

---

1. वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन् पा0 4/3/98.
2. वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः।
   श्रीमद्भगवद् गीता 10:37.
3. महाभारत 1/67/151.

शब्द का प्रयोग हुआ है । इसी प्रकार हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण और भागवत पुराण में गोपी कृष्ण की अनेक कथाएं वर्णित हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक युग में भी श्रीकृष्ण सम्बन्धी अनेक प्रमाण मिलते हैं । भगवान् विष्णु कृष्ण रूपमें अवतीर्ण होते हैं, इसके लिए देखा जाता है कि अवतारों के मध्य कृष्ण का अवतार महत्व अनेकत्र माना गया है, परन्तु कहीं-कहीं बलराम को भी कृष्ण के साथ अवतारी माना गया है । भागवत की प्रथम सूची में राम (बलराम) तथा कृष्ण दोनों ही अवतार माने गए हैं ।[1] विष्णु पुराण में परमेश्वर के श्याम और श्वेत दो केश कृष्ण - बलराम के रूप में अवतीर्ण होते हैं । परन्तु श्रीकृष्ण को कहीं-कहीं साक्षात् परमात्मा के रूप में घोषित किया गया है । उस समय महत्व अवतार बलराम को माना गया है । अग्नि पुराण में बलभद्र अनन्त की मूर्ति माने गए हैं जो चतुर्भुजी हैं जिनके एक हाथ में लांगल (हल) दूसरे में शंख तीसरे में मूसल तथा चौथे में चक्र लिए हुए हैं ।

पुराणों में विशेषतः श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण-परमेश्वर्य-मण्डित, निखिल ब्रह्माण्ड नायक अघटित घटना-पटीयान भगवान् के रूप में ही वर्णित हैं । जो वाणी द्वारा सदैव परम कमनीय हैं, जो वाणी सदैव कृष्ण के गुणगान में लिप्त हैं, वही तीर्थ के समान श्लाघनीय है ।[3]

---

1. श्रीमद्भागवत 3/23.
2. अग्नि पुराण 15/5.
3. श्रीमद्भागवत 12/12/50.

हरिवंश पुराण में कृष्ण के प्रति भक्त-भावुक भक्ति वर्णित है, इसमें कृष्ण की अलौकिक जीवनी ही प्रतिपाद्य है[1] किन्तु कृष्ण के लौकिक चित्रण का मुख्य आधार महाभारत है ।

महाभारत में पाण्डवों के उपदेशक, जीवन-निर्धारक, जीवन के विभिन्न पक्षों के द्रष्टा, युद्ध के प्रेरक के रूप में श्रीकृष्ण का चित्रण किया गया है । उसी स्वरूप का विश्लेषण कर उनकी उदात्तता तथा पूर्णता प्रकट करने का यह एक सामान्य प्रयास है ।[2]

पुराणों में केवल श्रीमद्भागवत ने श्रीकृष्ण के बाल्यकाल से लेकर महाभारत में गीता के उपदेश तक पूरा वर्णन किया है । दशम स्कन्ध का पूर्वार्ध कंस वध तक ही सीमित है परन्तु इसके उत्तरार्ध में महाभारत युद्ध से सम्बद्ध कृष्ण चरित्र का पूर्ण विस्तृत तथा संक्षिप्त विवरण किया गया है । महाभारत का प्रधान कथ्य श्रीकृष्ण के प्रौढ़ जीवन की घटनाओं का वर्णन है परन्तु समय-समय पर उनके बाल्यकाल की घटनाओं का भी वर्णन मिलता है यथा - युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की समाप्ति पर अग्रपूजा के समय शिशुपाल का कथन है - पूतना, केशी, वृषभासुर, चेतना रहित शकट के पैर तोड़ना, चींटियों से खोखला गोवर्धन पर्वत उठाना, पहाड़ शिखर पर नाना पकवानों को खाना, कंस वध

---

1. हरिवंश पुराण एक सांस्कृतिक अध्ययन 1970.
2. श्रीमद्भगवद् गीता - गीताप्रेस संस्करण.

की कृतघ्नता की पराकाष्ठा कहना आदि वचनों से भी कृष्ण का उपहास उड़ाता है । परन्तु शिशुपाल के क्रोधित और व्यंग्यात्मक वचनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीकृष्ण की बाललीला की आश्चर्य रस से भरी ये लीलायें थीं । द्रोण पर्व में धृतराष्ट्र ने संजय से श्रीकृष्ण की स्तुति में उनके गोकुल, मथुरा तथा हस्तिनापुर की लीलाओं का स्पष्ट उल्लेख किया है ।[1]

'भागवत' में श्रीकृष्ण के अनुपम अलौकिक सौन्दर्य का वर्णन किया गया है कि श्रीकृष्ण के बालरूप सौन्दर्य को देखकर ग्रामीण ललनायें तथा नगर की स्त्रियाँ आनन्द से आप्लुत हो जाती थीं तो शर शैय्या पर पड़े, जीवन समाप्त करने के इच्छुक, इच्छामरण भीष्म श्रीकृष्ण के सांवले रंग, पीताम्बर में सजे उनके शारीरिक सौन्दर्य से प्रभावित होकर उन्हें नारायण (विष्णु) का अवतार मानकर श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए उनके अलौकिक शारीरिक सौन्दर्य का विशद वर्णन करते हैं ।[2]

---

1. शृणु दिव्यानि कर्माणि वासुदेवस्य संजय,
   कृतवान् यानि गोविन्दो यथा नान्यः पुमान् क्वचित् ।
   : : : :
   : : : :
   एवं तन्महदाश्चर्यं तथ्यं मम संजय ,
   कृतवान् पुण्डरीकाक्षः कस्तदन्य करिष्यति ॥
   महाभारत द्रोणपर्व
2. त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं, रविकर गौर वराम्बरं दधाने ।
   वपुरलककुलावृताननाब्जं, विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ।
   ललितगति विलासवल्गुहास,प्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः ।
   कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धा,प्रकृतिमगन्किल यस्य गोपवध्वः ।
   भागवत 1/9/33,40.

जिस प्रकार उनके सौन्दर्य से प्राणीमात्र अभिभूत हो जाते हैं, उसी प्रकार उनके विभिन्न नामों की अलौकिकता और सार्थकता से मानव जन अभिभूत हो जाते हैं। जैसे महाभारत, विष्णु पुराण, भागवत आदि में उनके अनेक नाम वर्णित हैं। श्री कृष्ण को ही वासुदेवः भी कहा जाता है क्योंकि इस शब्द का प्रथम 'वासु' शब्द 'वस आच्छादने (ढकना) तथा वस निवासे' (रहना) इन दो धातुओं से निष्पन्न हुआ है। वासयति आच्छादयति सर्वमिति वासुः', यः ' वासुश्चैव देवश्चेति वासुदेवः' तात्पर्य है कि इस सम्पूर्ण सृष्टि का निवास भगवान वासुदेव में उसी प्रकार होता है जिस प्रकार सूर्य की किरणों से समस्त संसार ढक जाता है। भगवान् वासुदेव में समस्त जगत तथा 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च, सर्वभूताधिवासः' आदि श्रुति वाक्यों का तात्पर्य समाविष्ट है। महाभारत और विष्णु पुराण में इसी आशय का वर्णन है।[1]

इसी प्रकार महाभारत' में कहा गया है कि जो सूर्य, अग्नि तथा चन्द्रमा की किरणों को प्रकाशित करते हैं, वे ही भगवान्

---

1. छादयामि जगद् विश्वं भूत्वा सूर्य इवांशुभिः ।
   सर्व भूताधिवासश्च वासुदेवस्ततो ह्यहम् ॥
   महाभारत - शान्ति पर्व, अ० 341 -
   सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः ।
   ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते ॥
   विष्णु पुराण 1/2/12.

केश – पद – वाच्य हैं और उनके धारणकर्त्ता स्वयं केशव ही हैं ।[1]
विष्णु पुराण में कुछ भिन्नता है कि केशी नामक दैत्य से युद्ध करके उसका वध करने से इन्हें (भगवान को) केशव कहा जाता है। इन्हें (कृष्ण) को पृश्निगर्भ भी कहा जाता है क्योंकि इनके गर्भ में – अन्न, वेद, जल तथा अमृत अर्थात पृश्नि निवास करते हैं । कृष्ण के अनेक नामों में सबसे प्रसिद्ध नाम "हरि" है । विष्णु सहस्रनाम में 359वाँ नाम हविर्हरिः है जिसकी व्याख्या में शंकराचार्य जी ने भगवान को यज्ञीय हविष का ग्रहणकर्ता माना है । यह व्याख्या 'यज्ञो वै विष्णुः' के आधार पर आधारित है ।[2]

महाभारत में कृष्ण शब्द की व्याख्या बहुत विलक्षण है, भगवान् ने स्वयं कहा है कि –

'कृष्णाभिर्मेदिनीं पार्थ, भूत्वा कार्ष्णायसो महान् ।
कृष्णो वर्णश्च मे यस्मात् तस्मात् कृष्णोऽहमर्जुन ॥
–महाभारत (श्लोक 100/79)

---

1. सूर्यस्य तपतो लोकानग्नेः सोमस्य चाप्युत,
अंशवो यत् प्रकाशन्ते ममैते केशा – संज्ञिताः,
सर्वज्ञाः केशवं तस्मान्मामाहुर्द्विजसत्तमाः ॥
महाभारत, शान्ति पर्व 241/48.
2. यच्चादित्यगतं तेजो जगद् भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ।
श्रीमद् भगवत् गीता – 10.
विष्णु पुराण 5/16/23.

उक्त श्लोक का तात्पर्य है कि "मैं काले लोहे की कील बनकर पृथ्वी का कर्षण करता हूँ और मेरा वर्ण भी कृष्ण (काला) है, इसलिए मेरा नाम कृष्ण सार्थक है।"

श्रीमद्भगवद् गीता में कुरुक्षेत्र में, महाभारत तथा भागवत में तो आदि से अन्त तक श्रीकृष्ण को अवतारी तथा भगवान ही माना गया है। महाभारत में तथा भागवत में कथा का कुछ साम्य है। भगवान विष्णु देवकी नन्दन के रूप में अवतार ग्रहण करते हैं, भगवान के अवतीर्ण होते ही देवकी वसुदेव के समस्त बन्धन खुल जाते हैं और वसुदेव निश्चिन्त होकर बालक कृष्ण को नंद गाँव में नन्द और यशोदा को दे आते हैं।

ज्यों ज्यों बाल कृष्ण बड़े होते हैं त्यों-त्यों उनकी अलौकिक लीलाएँ दृष्टिगोचर होने लगती हैं, जब पूतना वध, कालिय-नाग को वश में करना, गोवर्धन पर्वत को उठाकर नन्दगाँव की इन्द्र के कोप से रक्षा करना, कंस के अत्याचार से नन्दगाँव को मुक्त करना तथा अलौकिक रास लीला करना भगवान कृष्ण की ही विशेषतायें हैं। किशोर कृष्ण कंसवध करके राजा उग्रसेन एवं अपने माता-पिता (वसुदेव-देवकी) को कारागृह से मुक्त करते हैं। उनकी रास लीला तो जगत प्रसिद्ध है, रास में प्रत्येक गोपी के साथ एक-एक कृष्ण और राधा के साथ भी कृष्ण ही रहते हैं, यह उनके अलौकिक रूप की मनोरम झाँकी है।[1] भागवत में रास पंचाध्यायी उसका (भागवत का) हृदय है, इसका

---

1. श्रीमद्भागवत 10/21/14,15,16.

भागवत में रास पंचाध्यायी उसका (भागवत का) हृदय है, उसका आध्यात्मिक महत्त्व जितना है, उतना ही साहित्यिक गौरव विपुल है. गोपियाँ कृष्ण के अदृश्य हो जाने पर व्याकुल होकर विभिन्न प्रकार की स्तुति करती हैं । भगवान कृष्ण की बाँसुरी से वे गोपियाँ और विशेषतः राधा बहुत ईर्ष्या करती हैं क्योंकि बाँसुरी एक तो हमेशा कृष्ण के ओष्ठों पर रहती है और जब वह बाँसुरी बजाते हैं तो समस्त जड़-चेतन अपना सुध-बुध भूलकर, मन्त्रमुग्ध हो जाता है । भागवत में कृष्ण के वंशीवादन के विश्वव्यापी प्रभाव का वर्णन इतनी सूक्ष्मता तथा मधुरता से किया गया है कि ऐसा प्रतीत होता है कि मानो मानस पटल पर वेणु की ध्वनि गूँज रही हो । नदियाँ भी मानो मोहन के गीतों को सुनकर भँवरों के द्वारा अपने हृदय की श्यामसुन्दर से मिलने के आवेग को व्यक्त करने का असफल प्रयत्न कर रही हैं और मानो वे आवर्तों से अपने मानस मनोभव को प्रकट कर रही हैं । वे अपनी तरंगों के हाथों से उनके चरण कमलों को स्पर्श कर कमल के फूलों को मानो उपहार स्वरूप चढ़ा रही हों । ऐसा प्रतीत होता है कि उनके (कृष्ण के) चरण कमलों का आलिंगन करने हेतु उनके चरणों में अपना हृदय ही अर्पित कर रही हों ।[1] कृष्ण की वेणु को सुनकर गायें दौड़ी आती हैं, गोपियाँ ब्रज में

---

1. नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीत -
   मावर्त - लक्षित मनो भवभग्नवेगाः ।
   आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारे-
   र्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥
   श्रीमद्भागवत 10/21/15.

गालों और ओष्ठों पर कज्जल आदि से युक्त विचित्र वेषभूषा में अपने तन,मन की सुध खो कर खिंची चली आती है ।

इसी प्रकार भागवत में भ्रमरगीत मात्र दस श्लोकों में है,परन्तु इनके भीतर गम्भीर रस का परिपाक काव्य रसिकों के चित्त को बलात् आकृष्ट करते हैं. इनमें उपालम्भ की भावना ही प्रमुख रूप से दर्शनीय है. यथा - गोपियाँ कृष्ण के मथुरा जाने पर उपालम्भ देती हुई कहती है कि भगवान् कृष्ण की जब प्रीति बढ़ जाने पर भूलना असम्भव है, भले ही समस्त संसार को भूल जाते हैं. उनके लीलामृत का एक बूंद भी जिन्होंने अपने कानों से सेवन किया है, उनके राग-द्वेष आदि द्वन्द्वों का सर्वथा नाश हो जाता है, चुन-चुनकर दाना चुगने वाली चिड़ियों की तरह वे भी भीख माँगकर जीवन निर्वाह करते हैं, वे दुनियाँ से जाते रहते हैं, फिरभी कृष्णलीलामृत को नहीं त्यागते । वैसी ही हमारी (गोपियों की) दशा है, दुनियाँ से नाता तोड़ देना गोपियों के लिए सहज है परन्तु उस श्याम सुन्दर से प्रेम का नाता हम (गोपियाँ) नहीं छोड़ सकतीं ।[1] मथुरा जाकर भी कृष्ण भगवान् अपने नाना उग्रसेन को पुनः राजगद्दी पर

---

1. यदनुचरित लीलाकर्ण पीयूष विप्रुट -
   सकृददन-विधूत द्वन्द्वधर्मा विनष्टाः ।
   सपदि गृह - कुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना,
   बहवइह विहंगा भिक्षुचर्यां चरन्ति ॥
   भागवत पुराण 10/47/18.

अधीन कर स्वयं द्वारिकापुरी का निर्माण करते हैं। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के पहले भीम द्वारा जरासन्ध का वध कराते हैं तथा शिशुपाल का वध करते हैं। द्रौपदी चीर हरण के समय असीम चीर बढ़ाकर दुःशासन का अभिमान चूर करते हैं। अर्जुन को वनवास के समय दिव्यास्त्रों की प्राप्ति एवं प्रयोग की सलाह देते हैं तथा महाभारत न हो, इसलिए अथक प्रयास भी करते हैं, यहाँ तक की दौत्य कार्य भी निःसंकोच करते हैं, इसका वर्णन महाभारत के 'उद्योगपर्व' में इस प्रकार है - धृतराष्ट्र के पास प्रधान पुरुष होकर भी सन्धि का सन्देश ले कर जाना दूत कार्य करना, उनके उदात्त चरित्र का परिचय है। श्रीकृष्ण पाण्डवों के मना करने पर समझाते हुए कहते हैं कि हे पार्थ! वहाँ मेरा जाना कदाचित् निरर्थक नहीं होगा। संभव है कि सन्धि का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाये और यदि नहीं भी होगा तो मुझे निन्दा का पात्र नहीं बनना पड़ेगा क्योंकि अधर्मिष्ठ मूढ़ तथा शत्रु लोग ये न कहें कि मैंने सक्षम और समर्थ होते हुए भी कौरवों और पाण्डवों को इस महायुद्ध से नहीं रोका।[1]

---

1. न जातु गमनं पार्थ! भवेत् तत्र निरर्थकम्।
   अर्थप्राप्तिः कदाचित् स्यादन्ततो वाप्यवाच्यता॥
   न मां ब्रुयुरधर्मिष्ठा मूढा ह्यसुहृदस्तथा।
   शक्तो नावारयत् कृष्णः संरब्धान् कुरुपाण्डवान्॥
   महाभारत - उद्योग पर्व 93/10.

परन्तु उनके इन वचनों की ओर ध्यान न देकर क्रुद्ध, अभिमानी दुर्योधन जब कृष्ण को बन्दी बनाने का उनका अपमानास्पद कार्य करने का प्रयत्न करता है, तब वह अपना विराट् रूप धारण कर वहाँ से अन्तर्धान हो जाते हैं ।

महाभारत के युद्ध में जब अर्जुन,कौरव और पाण्डव दोनों की सेनाओं को देखते हैं और अपने ही भाइयों, दादा, ताऊ,भतीजों से युद्ध करने की कल्पना करते हैं, तो उनका हृदय शोकाकुल होकर युद्ध से विरत हो जाता है, अर्जुन युद्ध से इन्कार कर देते हैं, जिससे पाण्डवों में हलचल मच जाती है क्योंकि युद्ध न करने की स्थिति वा नहीं थी परिस्थितियाँ इस मोड़ तक आ गयी थीं कि युद्ध करना ही अनिवार्य था, ऐसे समय में भी कृष्ण किंचित भी विचलित नहीं होते, वह दुःखी होते अर्जुन को इस सांसारिक माया का ज्ञान कराते हैं । 'आत्मा' के गूढ़ रहस्य को समझाते हैं, कहते हैं कि आत्मा कभी न मरती है, न मारी जा सकती है, वह सनातन, शाश्वत और अजर और अमर है । आत्मा अविनाशी है,इस शरीर का नाश होता है परन्तु आत्मा का कभी नाश नहीं होता । इसे न शस्त्र काट सकते हैं, न आग जला सकती है, न वायु सुखा सकती है और न ही जल भिगा सकता है ।[1] जिस प्रकार मनुष्य पुराने कपड़ों को त्याग

---

1. तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥ 2.10
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥
श्रीमद्भगवद् गीता 0·2, 23

कर नए वस्त्रों को धारण करता है, उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर को त्यागकर नया शरीर धारण करती है ।[1] आदि इसी प्रकार के उपदेशों से अर्जुन का मोहभंग करने का प्रयास करके अन्ततः वह अपने अलौकिक विराट स्वरूप को प्रकट करते हैं जिसमें सहस्त्रों ब्रह्माण्ड को हैं, समस्त जड़चेतन जिसके एक अंश में हैं तथा समस्त प्राणी उनके विराट शरीर में दिखाई पड़ रहे हैं, ऐसे भव्य दर्शन से अर्जुन का मोहभंग हो जाता है और वह यह जान जाते हैं कि स्वयं भगवान (विष्णु) कृष्ण का रूप धारण कर पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं । अन्ततः महाभारत का भयानक युद्ध हुआ, जिसमें रक्त की नदियाँ बहने लगीं । समस्त पृथ्वी उस महायुद्ध रूपी यज्ञ की आहुति में भस्म हो गया ।

इस युद्ध के पश्चात् युद्ध का विश्लेषण करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि भीष्म, द्रोण, कर्ण और भूरिश्रवा भूतल पर अतिरथी के नाम से विख्यात थे । माया युद्ध का आश्रय लेकर ही मैंने उपायों से उन्हें मार डाला है । यदि कदाचित मैं युद्ध में इस प्रकार माया - कौशलपूर्ण कार्य नहीं करता तो फिर तुम्हें (अर्जुन या पाण्डवों को) विजय कैसे प्राप्त होती ? राज्य हाथ में कैसे आता ? या धन कैसे मिलता । यह शोचनीय बात नहीं है । देवों ने भी प्राचीन काल में ऐसा

---

1. वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
   तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥
   श्रीमद्भगवद् गीता - 2, 22

ही किया था, वह मार्ग सज्जनों के द्वारा पूर्वकाल से ही समादृत हुआ है, इस माया में मेरा कोई दोष नहीं है ।[1] श्रीकृष्ण (विष्णु भगवान) तो सदा ही सत्य और धर्म के रक्षक हैं और सृष्टि रचने वाली तथा सृष्टि का संहार करने वाली, सदैव साथ रहने वाली, वह उनकी माया ही है ।

श्रीकृष्ण और अर्जुन के बारे में व्यास जी का कथन अक्षरशः सत्य है ।[2]

भगवान् श्रीकृष्ण को परब्रह्म मानकर उनके दशावतार का वर्णन संस्कृत साहित्य के महान् कवि जयदेव ने अपनी महाकृति 'गीतगोविन्दम्' में किया है, इसलिए उन्होंने दशावतार क्रम में रामावतार के पश्चात् बलरामावतार को माना है क्योंकि पूर्व प्रचलित दशावतार में कृष्ण को उन्होंने परब्रह्म माना है ।

---

1. मयानेकैरुपायैस्तु मायायोगेन चासकृत् ।
   हतास्ते सर्व एवाजौ भवतां हितमिच्छता ॥
   यदि नैवंविधं जातु कुर्यां जिह्ममहं रणे ।
   कुतो वो विजयो भूयः कुतो राज्यं कुतः धनम् ।
   पूर्वैरनुगतो मार्गो देवैरसुरघातिभिः ।
   सद्भिश्चानुगतः पन्थाः स सर्वैरनुगम्यते ॥
   महाभारत शल्य पर्व 61/63-64, 61/68.
2. यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
   तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥
   गीता 18/78.

इसी प्रकार संस्कृत साहित्य के कविवर क्षेमेन्द्र जी ने भी अपनी कृति "दशावतार चरितम्" में दश अवतारों का वर्णन किया है, परन्तु इन्होंने भगवान विष्णु के दश अवतार ही माने हैं, इसीलिए राम के अवतार के पश्चात् वह कृष्णावतार का ही वर्णन करते हैं। यथा -

अत्याचारों से पीड़ित पृथ्वी क्षीरसागर में शेष शैय्या पर आसीन शिवरूपी भगवान् विष्णु से बोली- वृष्णिवंश में उग्रसेन के निर्दयी पुत्र के रूप में तथा सहयोगियों के साथ पुनः कालनेमि ने पृथ्वी पर जन्म लिया है, उन असंख्य दैत्यरूपी अत्याचारी राजाओं एवं उनके सहयोगियों के असहनीय बोझ को मैं अब सहने में असमर्थ हूँ। पृथ्वी के इस प्रकार के वचनों को सुनकर भगवान् विष्णु ने "यथायोग्य सब करूँगा" ऐसा कहकर पृथ्वी को विदा किया।

विष्णु के ऐसे वचनों को सुनकर ब्रह्मा जी ने आए हुए सभी देवताओं से कहा - भगवान विष्णु पृथ्वी का भार दूर करने के लिए पृथ्वी पर अवतार लेते हैं जो यदुवृष्णि कुल में वसुदेव के पुत्र रूप में होने वाले हैं। अतः 'तुम लोग भरतकुल में अंशरूप में अवतार लो' ऐसा कहने पर देवताओं ने 'ऐसा ही हो' यह कह कर सभी देवता यथास्थान चले गए।[1] तत्पश्चात्

---

1. भूमिभारावताराय देवोऽवतरति विष्णुः ।
   यदुवृष्णिकुले जाति वसुदेवस्य पुत्रताम् ।
   यूयमंशावतारं कुरुत भारते ।
   इत्युक्तो पद्मयोनि तथेत्युक्त्वा ययुः सुराः ॥
   दशावतार चरितम् - कृष्णावतारः श्लोक 15-16.

भयंकर युद्ध में विनाश होने के पश्चात् युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ और कालान्तर में उन्होंने अश्वमेध यज्ञ भी सम्पूर्ण किया । इसके पश्चात् उसी मार्ग में रथ पर बैठे हुए कंसारि श्रीकृष्ण को देखकर कुरुओं के विनाश से दुःखी उत्तंक नामक मुनि ने कहा कि "समर्थोऽपि आपके द्वारा कुरुओं का विनाश क्यों कर उपेक्षित रहा - यह उचित नहीं किया गया, ऐसा कहकर क्रोधित मुनि शाप देने हेतु तत्पर हो गए, तत्पश्चात् मन्दमुस्कान से युक्त मुख वाले श्रीकृष्ण ने उत्तंक मुनि को शरीर के अज्ञानान्धकार दूर करने वाले प्रकाशमान हजारों सूर्यों की दीप्ति वाले विराट विश्व रूप को दिखा दिया।[1]

कालान्तर में कुरुक्षेत्र में मृत पुत्रों को देखकर क्रोधित गान्धारी ने श्रीकृष्ण को ही विनाश की जड़ मानकर यदुवंश के विनाश का शाप दे दिया । उसी शाप के कारण मूसल [मुनि के शाप वश] से यदुवंशियों का नाश हो गया । बलराम के पाताल प्रवेश करने पर और व्याध के द्वारा सोये हुए हरि [श्रीकृष्ण] कृष्णसार मृग समझकर मार डाले गए ।[2] इस प्रकार जड़-चेतन के स्वामी उन विष्णु जी ने भुवन मंगल हेतु अपरिमित अद्भुत शक्ति से पृथ्वी का भार दूर करने हेतु अवतार लेकर देवताओं से प्रशंसा किए जा रहे प्रभाव वाले भगवान् विष्णु के अवतारी श्रीकृष्ण जी नरमुनि [अर्थात् अर्जुन] के साथ अपने वैकुण्ठधाम चले गए ।[3]

---

1. दशावतार चरितम्, पृ०सं० श्लोक-830,831,832.
2. बले प्रविश्य पातालमनन्तत्वं गतायुषि । सुप्तोऽथ हरिः लुब्धः कृष्णसारधिया हतः ॥ - दशावतार-चरितम् पृ०सं० श्लोक-833.

इस प्रकार श्रीकृष्ण विपुल व्यक्तित्व के धनी हैं: वे विष्णु के पूर्णावतारी हैं। उनका चरित्र अलौकिक दिव्य लीलाओं से संवलित है। उन्होंने अपने जीवन में अनेक कौतुक किए हैं।

बुद्धावतार :

हिन्दू पुराणों के अनुसार सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग का क्रमानुसार आविर्भाव होता है क्योंकि संहार के बाद ही सृष्टि का नियम है। सृष्टि का आरम्भ होने पर सत्ययुग में पुनः चार वर्ण, राजा, ऋषि और अवतार प्रादुर्भूत होते हैं, तथागत बुद्ध का, ज्योतिर्मय रूप में, और देवता, लोकेश्वर आदि के रूप में सत्य-युग में अवतार होता है। पुनः कलियुग में तथागत बुद्ध मनुष्य रूप में अवतरित होते हैं।

कृष्ण आदि ऐतिहासिक अवतारों के समान बुद्ध भी ऐतिहासिक महापुरुष माने गए हैं। इतिहासकार उनका जन्म 448ई0पूर्व मानते हैं। भगवान बुद्ध एक महान धार्मिक प्रवर्त्तक थे। पुराणों में दशावतारों के क्रम में भगवान् बुद्ध का नाम आता है, परन्तु महाभारत में कहीं बुद्ध का नाम आता है और कहीं उनके स्थान पर 'हंस' का नाम आता है।[1] इन विरोधों के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत काल में

---

1. मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ।
   रामो रामश्च रामश्च बुद्धः कल्कीति ते दश ॥
   महाभारत,शान्तिपर्व अ0 348,
   हंसः कूर्मश्च मत्स्यश्च प्रादुर्भावा द्विजोत्तम ।
   वराहो नरसिंहश्च वामनो राम एव च ।
   रामो दाशरथिश्चैव सात्वतः कल्किरेव च ॥
   महाभारत शान्ति पर्व,श्लोक-33,

बुद्ध का स्थान अवतारों में निश्चित नहीं था क्योंकि मूल महाभारत में बुद्ध की गणना अवतारों के अन्तर्गत कहीं नहीं है ।

भगवान् बुद्ध का अवतारों में स्थान या उनका अवतारी रूप पुराणों में (एक दो को छोड़कर) प्रायः सर्वत्र ही वर्णित है । परन्तु पुराणकर्त्ताओं के समक्ष भी बुद्ध को अवतारी मानने में समस्या लक्षित होती है क्योंकि बुद्ध वैदिक सिद्धान्तों, वैदिक यज्ञादि की निन्दा करते हैं, वह वेदों को धूर्तों का प्रलाप तथा वेद प्रतिपाद्य भगवान् तथा आत्मा का अभाव भी मानते हैं । उस समय वेदों, यज्ञों आदि का समाज में ऊँचा स्थान था, अतः पुराणकर्त्ताओं ने बहुत ही साहस के साथ वैदिक सिद्धान्तों के विरोधी बुद्ध को अवतारों के मध्य स्थान दिया । इसके लिए उन्होंने एक उपाय निकाला, वेद विरोधी असुरों का व्यामोहन । इसका तात्पर्य है कि कलियुग आने पर मगध देश में, देवताओं के द्वेषी दैत्यों को मोहित करने के लिए 'अजनपुत्र' रूप में बुद्धावतार होगा । देवताओं के शत्रु दैत्य लोग भी वेद मार्ग का सहारा लेकर मय दानव के द्वारा रचित दृश्य वेग वाले नगरों में रहकर लोगों का सर्वनाश करेंगे । तब भगवान् उनकी बुद्धि में मोह और लोभ उत्पन्न करने वाले धर्मों का उपदेश करेंगे । बुद्ध विभिन्न वाद-विवाद, तर्कों आदि से दैत्यों को मोहित कर वेद विरुद्ध करेंगे ।[1] भागवत की तीनों सूचियों में बुद्ध का नाम अवश्य आया है और असुरों को

---

1. श्रीमद्भागवत 1/3/24, 2/7/37, 11/4/22.

मोहित कर वेदों से पराङ्मुख करने के लिए ही उनका अवतार माना गया है।[1] यही भाव अन्य पुराणों में भी देखा जाता है। यथा – अग्नि पुराण में (अ–3.30 16 में) दिगम्बर महामोह प्रथमतः जैनधर्म का उपदेश देता है। यह महामोह शुद्धोधन का पुत्र बन गया तथा दैत्यों को वेदधर्म छोड़ने के लिए मोहित करता है।[2] भगवान बुद्ध की मूर्ति का वर्णन भी इस पुराण में दर्शनीय है।[3] यही तथ्य भविष्य पुराण में (4/12/26–29) भी मिलता है। इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत के महाबलिपुरम में पर्वतों को काटकर बनाए गए मन्दिर के एक अधूरे श्लोक में भी भगवान बुद्ध का नाम अवतारों में है।[4] मध्य प्रदेश के "सोरपुर" में अष्टम शताब्दी के एक मन्दिर में भगवान राम के साथ भगवान बुद्ध की ध्यानावस्थित मुद्रा में मूर्ति मिलती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पुराणों में तथा सप्तम, अष्टम शती से ही बुद्ध को

---

1. ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम् ।
   बुद्धो नाम्ना जिन - सुतः कीकटेषु भविष्यति ॥
   श्रीमद्भागवत 1/3/24

2. महामोह स्वरूपोऽसौ शुद्धोदन सुतोऽभवत् ।
   मोहयामास दैत्यांस्तान् त्याजिता वेद धर्मकम् ॥
   अग्नि पुराण 16/2.

3. शान्तात्मा लम्बकर्णश्च गौराङ्गश्चाम्बरावृतः ।
   ऊर्ध्वपद्मस्थितो बुद्धो वरदाभयदायकः ॥
   अग्निपुराण 49/8.

4. [illegible] नारसिंहश्च वामनः ।
   रामो रामश्च (कृष्ण) रामश्च (कृष्ण) बुद्ध कल्की च ते दश ।
   दक्षिण भारत के महाबलिपुरम मंदिर में प्राप्त अधूरा श्लोक ।

अवतारों की गणना में स्थान प्राप्त हो चुका था ।

बुद्ध का जीवन नितान्त अपरिग्रहमय है, विक्रम की प्रारम्भिक शताब्दियों में बुद्ध धर्म का प्रभूत अभ्युत्थान हुआ । इसमें राजाश्रय ही प्रधान कारण था । मौर्य सम्राट् अशोक कलिंग युद्ध के नरसंहार से इतना व्यथित और विरक्त हो गया, उसका हृदय इस क्रूर कृत्य से इतना संतप्त हुआ कि उन्होंने बुद्ध धर्म को राजधर्म का गौरव प्रदान किया । और युद्ध को सदा के लिए तिलांजलि दे दी । उसने बौद्ध-धर्म के प्रचारार्थ भिक्षुओं को विदेश तथा देश के अन्य भागों में भेजा । अपना पुत्री संघमित्रा और पुत्र महेन्द्र को बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए लंका भेजा। तत्पश्चात् लगभग चार सौ वर्षों के पश्चात् कुषाण नरेश कनिष्क ने पुनः इसी में बुद्ध धर्म का देश और विदेशों में अभूतपूर्व प्रचार कराया । भारतीय जनता का हृदय वैदिक धर्म से हटकर बौद्ध धर्म की सरलता से आकृष्ट होकर इस नवीन धर्म में दीक्षित होने लगा । वैदिक धर्म में पुनः श्रद्धा हेतु पुराणों में एक सार्वभौम धार्मिक क्रान्ति उत्पन्न की । अवतारों में बुद्ध की गणना भी इस क्रान्ति का एक महनीय साधन बना।

भगवान् बुद्ध बौद्ध धर्म के प्रवर्तक मात्र ही नहीं, बल्कि लोकोत्तर पुरुष भी माने गए हैं । राम, कृष्ण की तरह पहले इन्हें भी ऐतिहासिक महापुरुष ही माना जाता था, परन्तु क्रमशः इनमें देवत्व की भावना का विकास होने लगा । महात्मा और ऋषि

जनों का जो चमत्कारी प्रभाव भारतीय जनमानस पर था, बुद्ध उसके विरोधी थे, परन्तु महात्मा जनागुह के विचारों को उन्होंने पूरी तरह अतिक्रमण न कर एक नयी दिशा का ज्ञान कराया। उन्होंने जनता को शान्ति और अहिंसा का उपदेश दिया, जिस प्रकार पृथ्वी जब क्षत्रियों के अत्याचार से आक्रान्त होती है, तब भगवान (विष्णु) परशुराम अवतार धारण कर पृथ्वी को क्षत्रियों के अत्याचार से रक्षित करते हैं। वैसे ही पृथ्वी जब ब्राह्मणों के अत्याचार से आक्रान्त हुई, विभिन्न यज्ञों में विभिन्न प्रकार की बलियों से हिंसा की अग्नि अधिक प्रज्वलित होने लगी, तब भगवान् ने अवतार ग्रहण करने का निश्चय किया। इसके लिए उन्होंने मध्यदेश चुना। जब पृथ्वी ब्राह्मणाक्रान्त होती है, तब भगवान ब्राह्मण कुल में ही जन्म लेने पर तुषित (स्वर्ग) लोक में ही इन बातों को विचार कर 64 गुणों से युक्त कुल में अवतरित होते हैं। भगवान् बुद्ध के माता-पिता (माया देवी एवं शुद्धोदन) दशरथ और कौशल्या की भाँति अनेक जन्मों में बोधिसत्व के माता-पिता रह चुके हैं। तुषित (स्वर्ग) लोक सभी देवता, नाग, बोधिसत्व और अप्सरायें अवतार ग्रहण के समय एकत्रित होती हैं। बुद्ध उनके समक्ष 108 ज्योतियाँ निरूपित करते हैं। इन ज्योतियों में सृष्टि के कल्याण हेतु अनेक गुण विद्यमान हैं। भगवान बुद्ध भी मानव रूप में ही अवतार ग्रहण कर पृथ्वी को हिंसा तथा अशान्ति रूपी अत्याचारों से मुक्त करते हैं। इसके समय

कविवर जयदेव ने भी अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "गीत - गोविन्दम्" में भगवान बुद्ध को दशावतार में नवम् अवतार माना है। उनके कथनानुसार भगवान् बुद्ध सत्य, अहिंसा प्राणीमात्र पर करुणा हेतु अवतार ग्रहण करते हैं। क्योंकि वह वेदों में वर्णित यज्ञ - बलि आदि की तीव्र निन्दा करते हैं हिंसा के भयानक परिणामों से जनता जनार्दन को अवगत कराते हैं। भगवान् बुद्ध की स्तुति करते हुए जयदेव जी कहते हैं कि सदयहृदय से पशुवध्या की कठोरता दिखाते हुए यज्ञविधान सम्बन्धी श्रुतियों की निन्दा करने वाले आप बुद्धरूपी जगत्पति भगवान् केशव की जय हो ।[1] यहाँ कवि भगवान कृष्ण को ही बुद्ध के रूप में अवतारी मानते हैं ।

महाकवि क्षेमेन्द्र ने भी भगवान् विष्णु के दशावतार में बुद्ध को नवम् स्थान ही दिया है । 'दशावतार च रित' में वह बुद्ध के अवतार का विशद वर्णन करते हुए कहते हैं कि - कालान्तर में कलि के अत्याचार से दुःखी जनता के दुःख से करुणासागर विष्णु दया से द्रवित होकर समस्त जीवों पर कृपा हेतु शाक्य कुल में शुद्धोदन नामक

---

1. निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम् ।
सदय-हृदय-दर्शित-पशुघातम् ॥
केशवधृत-बुद्ध-शरीर जय जगदीश हरे ॥
जयदेव-रचित-गीत-गोविन्द- श्लोक-9 नवम् अवतार.

तपस्या में लीन उन सिद्धार्थ पर कामदेव के उग्र सैनिकों के द्वारा और स्वयं कामदेव के शर-प्रहार करने पर सेना के अतिशय विफलप्रयत्न हो जाने पर वज्रासन में योग सिद्ध करने वाले वर्धमान सिद्धार्थ परमतत्त्व ज्ञान की दशा को प्राप्त हुए। बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् उन्होंने अज्ञानी मानवों को अपने ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित किया। अपने पिता शुद्धोधन द्वारा विभिन्न प्रश्नों के सार्थक उत्तर देकर भगवान् बुद्धदेव ने राजा को अमृत [अचेत] करने वाली चेतना [ज्ञान] प्रदान की, जिससे उनका मोक्ष भी हो जाता है।[1]

इसके पश्चात् उन मुनियों के बन्धु भगवान् बुद्ध रूपी सूर्य ने ज्ञानरूपी प्रकाश से शनैः शनैः समस्त संसार को अज्ञानान्धकार, दुःख, दैन्य, पापादि से रहित करके संसार रूपी सागर में मनुष्यों पर दयाभाव के कारण सर्वं नामक उदारक शरीर धारण कर पुनः भगवान् विष्णु रूप वाले हो गए।[2]

---

1. न भोक्ष्यमाणाय जीविषे मे
   स्पृहेय राज्यमिदं च मे न रोगः ।
   - बुद्ध-चरितम् 9-35.
2. अथ स भगवान्बुद्धवा सर्वं जगच्चिन्तन भवकर -
   दिव्यमिन्दुरिव ज्ञानालोकैः क्रमाद्गुणि वान्धवः ।
   अनन्तरया करुणीर्यं निःसार्य परं वसु -
   ध्रवण रक्षी संसारसागरमूदनुधरस्नुतः ॥
   कल्पवतार-चरितम् बुद्ध अध्याय, श्लोक-74.

भागवत और अन्य पुराणों की बुद्धावतार कथा का ही आश्रय लेकर परवर्ती अनेक कवियों ने बुद्धावतार की कथा की रचना की है, ऐसा प्रतीत होता है ।

कल्कि अवतार :

भगवान् का यह अवतार कलियुग में होता है । विभिन्न शास्त्रों, पुराणों तथा महाभारत में भी इस 'कल्कि अवतार' की भविष्य में, कलियुग में होना वर्णित है । जब राजाओं के दुष्ट कर्मों से,अत्याचारों से जनता का उत्पीड़न होगा । जब अधर्म, धर्म को विनाश के कगार पर पहुँचा देगा, ब्राह्मण धर्म की सर्वत्र निन्दा होगी तभी ब्राह्मणों के धर्म और सम्मान के रक्षार्थ , प्रजा के कल्याण हेतु तथा धर्म की पुनःसंस्थापना के लिए कलियुग के अंत में कल्कि अवतार ग्रहण करेंगे । इनके अवतार के स्थान के सम्बन्ध में महाभारत,हरिवंशपुराण ब्रह्मपुराण आदि के अनुसार सम्भल या शम्भल ही कल्कि का अवतार स्थान बतलाया गया है ।[1] हरिवंश में कहा गया है कि कल्कि का जन्म स्थान शम्भल होगा,परन्तु उनका एवं उनके सहयोगियों का कर्म-स्थल गंगा तथा यमुना के बीच का प्रदेश(अन्तर्वेदी) होगा और यह अनुमान किया जाता है कि - इसी अन्तर्वेदी के पास ही कहीं उनका जन्म स्थान (शम्भल भी) होगा ।

महाभारत में तथा मत्स्य पुराण में कल्कि के सम्बन्ध

---

1. महाभारत - वनपर्व 190-91
   हरिवंश पुराण 1-41, ब्रह्म पुराण 1-104,मत्स्यपुराण 47-245

में बहुत ही रोचक और विशद वर्णन मिलता है। यथा- ब्राह्मण कल्कि ब्राह्मण सहयोगियों के साथ अधार्मिक, अत्याचारी तथा दुष्टों का विनाश करेंगे। अपने तीक्ष्ण नाना प्रकार के आयुधों से दुष्टों का दमन करेंगे। इस विनाश के बाद एक नए युग - कृत युग का शुभारम्भ करेंगे। कल्कि का यह चरित्र विशिष्ट होगा और उनका तथा उनके सहयोगियों का वाहन अश्व होगा। विष्णु के दशावतार में यह अन्तिम दसवाँ अवतार माना जाता है। भागवत में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अन्य अवतारों के समान इस अवतार का भी प्रमुख उद्देश्य धर्म की स्थापना और अधर्म का विनाश है।[1]

भावी कल्कि का अवतार भविष्य में होगा, ऐसा वर्णन "महाभारत" में भी मिलता है। महाभारत "वनपर्व (190/191) और 'नारायणीयोपाख्यान' में विशेष रूप से तथा विशद रूप से कल्कि अवतार का वर्णन मिलता है। इसमें कलियुग की दुरवस्था का वर्णन किया गया है। कलियुग में पाप के अत्यधिक बढ़ जाने पर युगान्त में किसी ब्राह्मण के घर में एक महान शक्तिशाली बालक अवतीर्ण होगा, जिसका नाम होगा "विष्णुयश कल्कि"। वाहन, अश्व, शस्त्र उसकी इच्छानुसार उसके पास आ जायेंगे और वे अवतार ग्रहण करेंगे म्लेच्छों के

---

1. यर्ह्यालयेष्वपि सतां न हरेः कथाः स्युः
   पाखण्डिनो द्विजजना वृषला नृदेवाः ।
   स्वाहा स्वधा वषडिति स्मगिरो न यत्र,
   शास्ता भविष्यति कलेर्भगवान् युगान्ते ॥ -भागवत 2/7/38.

विनाश एवं कलियुग के अन्त के लिए ।[1]

विष्णु पुराण में शम्भल निवासी विष्णु यश के पुत्र म्लेच्छों का नाश करने वाले वासुदेव के अंशावतार कल्कि हैं ।[2]

भगवान कल्कि के पौराणिक एवं ऐतिहासिक दो रूप विद्वानों के मत में माने गए हैं । इनके ऐतिहासिक रूप के सम्बन्ध में श्री काशी प्रसाद जायसवाल ने कल्कि को यशोधर्मन का रूप बताया है, उनके अनुसार कल्कि की भावी अवतार की कल्पना परवर्ती है ।[3] किन्तु इलियट ने कल्कि का 'महाभारत' वनपर्व एवं "नारायणीयोपाख्यान" में मिलने वाले उल्लेखों से उपर्युक्त मत का खण्डन किया है । इसी प्रकार श्री के०बी०पाठक ने जैन ग्रन्थों को आधार बनाकर "चतुर्मुख कल्कि" "कल्कि" एवं कल्किराज" के नाम से एक अत्याचारी राजा का वर्णन करते हैं जो जैनियों पर कर लगाता था, जिसे एक राक्षस ने मार डाला था । [illegible] ने केशरी काल [illegible] वर्षों में निर्धारित युग का किया है ।[4] डा० वी०आर० मनकड ने विशेषकर "कल्कि पुराण के कल्कि को अपने विस्तृत वर्णन में कहा है कि विशाखयूप, माहिष्मती का राजा तथा सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजा मरु और देवापि, जो सुमित्र

---

1. महाभारत 3/190,96/97,93,94,12,349,29-38
2. विष्णु पुराण 4/24/98
3. इण्डियन एन्टीक्वेरी1918, पृष्ठ-145.
4. इण्डियन एन्टीक्वेरी 47,1918 पृष्ठ 18-19.

और शेषक के नाम से प्रसिद्ध है। ऐतिहासिक व्यक्ति है, कल्कि का सहयोगी विष्णुयश, अग्निराज प्रसीत का पुत्र था। कल्कि ने सभी हिन्दू शासकों को पराजित कर बौद्ध राजाओं को हराया था, इसके बाद "रुद्र" को भी कल्कि नाम से अभिहित किया गया।[1]

निष्कर्षत: साम्प्रदायिक रूप में गृहीत होने से पूर्व ऐतिहासिक कल्कि की सम्भावना की जा सकती है। इनमें से विभिन्न नाम के व्यक्तियों की अपेक्षा "प्रभावक चरित्र" की कल्कि-कथा, चरित्र और व्यक्तिगत गुणों की दृष्टि से पौराणिक अवतार कल्कि के अधिक निकट प्रतीत होती है, अतः पुराणों का कुछ सम्बन्ध प्रभावक चरित्र से अवश्य माना जा सकता है [2]

कवि जयदेव ने कृष्ण के दसवें अवतार के रूप में कल्कि का वर्णन किया है, पृथ्वी पर म्लेच्छों के अत्याचार बढ़ जाने पर भगवान् कल्कि रूप में अवतीर्ण होते हैं। जयदेव स्तुति करते हुए कहते हैं कि जो म्लेच्छ समूह का नाश करने के लिए धूमकेतु के समान अत्यन्त भयंकर तलवार चलाते हैं, ऐसे कल्कि रूप धारी आप जगत्पति भगवान् केशव की जय हो।[3]

---

1. प्रभावक चरित्र -जैन ग्रन्थ में वर्णित कल्कासुरि चरित्र4 पृष्ठ 22-27.
2. न्यू इण्डियन एन्टीक्वेरी अंक 4 पृष्ठ 337-341.
3. कल्कि अवतार गीतगो० श्लोक-10.

अवतार में विकासवाद के तत्व :

'अवतार' शब्द की व्युत्पत्ति 'अव' उपसर्गपूर्वक तृ धातु से 'घञ्' प्रत्यय से सिद्ध होती है। अष्टाध्यायी [3/3/120] अवतार शब्द का अर्थ ऊपर से नीचे उतरना है। सृष्टि एवं सभ्यता के संहार का अध्ययन करते समय अध्ययन की प्रक्रिया को प्रायः 'विकास' शब्द से अभिहित किया जाता है। लेकिन विकासवाद की मूल प्रक्रिया उत्पत्ति और प्रसार की क्रियाओं पर निर्भर करती है। यदि उत्पत्ति और प्रसार के आधार तात्त्विक दृष्टिकोण से आनुवंशिक प्रवृत्ति को देखा जाय तो यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जायेगा कि विकासवाद का सिद्धान्त मूलतः अवतारवाद का ही सिद्धान्त है। हमेशा देखा गया है कि संहार के बाद पुनः सृष्टि, सृष्टि के बाद संहार, किसी भी सभ्यता के जीर्ण-शीर्ण होने पर ही नवीन सभ्यता का जन्म उसी से होता है और फिर वही सभ्यता पुरानी होकर नयी सभ्यता की जन्मदात्री होती है, यही विकास है।

आदिकाल से आधुनिक काल तक प्रत्येक युग में नयी भौतिक - शक्तियों तथा अन्य महाशक्तियों का अवतरण जैसे आकाश तत्व से वायु का वायु से अग्नि का, अग्नि से जल और जल से मिट्टी के भौतिक पदार्थों का अवतरण प्रायः सांख्य मत में भी प्रचलित रहा है।[1] पुराणेतिहासों ने भी विकासवाद पर

---

1. तैत्तरीय - आकाशाद्वायुः ...इत्यादि 2·1

अपना अलग ढंग से विचार किया है। जैसे पूर्व से अग्नि, अग्निकाण्ड से जल और पृथ्वी की अवधारणा स्वीकार की है, परन्तु इस प्रादुर्भाव की प्रक्रिया में एक शक्ति से दूसरी शक्ति का आविर्भावक्रम लक्षित होता है। अतः सृष्टि से एवं सभ्यता के विकासवादी अध्ययन के क्रम में विकास की अपेक्षा अवतार अधिक वैज्ञानिक प्रतीत होता है। अवतार के इस क्रम में एक वैज्ञानिक रहस्य छिपा हुआ है कि भगवान को कोई भी जन्म लेना या बढ़ना नहीं पड़ता क्योंकि समस्त जीवों या जन्मों का सृजन तो वह स्वयं करते हैं, अतः चाहे मत्स्यावतार हो या मर्यादा पुरुषोत्तम राम अवतार हो वह सभी अवतारों में सहज भाव से सृष्टि का कल्याण करते हैं। और दूसरा तथ्य यह है कि इस अवतारवाद में वैज्ञानिक विकास तत्व छिपा हुआ है। सृष्टि के विषय में विकासवाद का यही तात्पर्य तो है कि सृष्टि का प्रारम्भ अमीबा लघुकाय जीवों से प्रारम्भ होकर दीर्घकाय प्राणियों में आविर्भूत होता है। पहले जीव बुद्धिहीन होते थे फिर उनमें बुद्धि का विकास हुआ।[1]

अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि विकासवाद के आधार पर अवतार तत्व की समीक्षा की जा सकती है। सर्वप्रथम

---

1. सारस्वत-सर्वस्व - पृष्ठ- 199, प्रो० सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी, संस्करण 1973,

सृष्टि का आरम्भ जल जीव से होता है और प्रथम जल जीव मछली है । मछली का जीवन ही जल है, फिर जल-थल में रहने वाली जीव में कछुआ आता है जो जल और जमीन दोनों में ही समान रूप से जीवन धारण कर लेता है, तत्पश्चात् जमीन पर विचरण करने वाले जीव - पशु के रूप में शूकर है जो जमीन पर ही जीवन धारण करता है । अब विकास पुनः होता है और पशुता मानवता की ओर बढ़ने लगती है, शनैः-शनैः पशुत्व से मानवत्व का विकास होता है, परन्तु इस समय तक दोनों का सम्मिश्रण निकला हो जाता है । अतः नर (मनुष्य) आधा और सिंह (पशु) आधा पुनः मानव की ओर विकास होता है, जो उसका रूप बहुत ही छोटा होता है, और वामन (बौना) रूप धारण करता है, तत्पश्चात् विवेक प्रवृत्तियों से युक्त क्रूरता से पूर्णतया परशुराम और उसके बाद मर्यादाओं से युक्त पुरुषोत्तम राम आते हैं जो समस्त संसार की मर्यादाओं का विकास करते हैं, मानव अपने चरम विकास पर पहुंच गये, परन्तु अभी कला, संगीत आदि का मानव सभ्यता में अभाव ही था, अतः श्रीकृष्ण नृत्य, गीत, राजनीति, कूटनीति आदि से परिपूर्ण सभ्य समाज का विकास करते हैं । कहीं-कहीं बलराम को भी कृष्ण के स्थान पर रखा गया, इससे ऐसा प्रतीत होता है मानो जो कार्य मर्यादा से न किया हो उसे बलपूर्वक (बलराम) करवा लेना है।[1]

---

1. पुराण विमर्श - बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ-177.

बुद्ध में कृपा की ही अधिकता है, करुणा और दया के द्वारा विरोध को अभिभूत करने में समर्थ होते हैं तो कभी-कभी ऐसे दुष्ट भी होते हैं जो करुणा या कृपा का महत्व नहीं समझते या उनके ऊपर करुणा का कोई असर नहीं होता, तब अवतार अर्थात् कल्कि के रूप में दुष्टों के विनाश तथा वर्तमान युग की समस्याओं का समाधान देखते हैं। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया का तात्पर्य है कि यह पृथ्वी पहले जलमग्न थी, चारों तरफ जल ही जल था तब केवल जल जीवों (मछली आदि) का जीवन ही सुरक्षित था, कालान्तर में कुछ स्थलों से जल सूखा और धरती और जल में विचरण करने वाले जीव कछुआ का आविर्भाव हुआ, इसी प्रकार सूकर, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण (बलराम कहीं-कहीं) बुद्ध और कल्कि के रूप में मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक विकास का उत्तरोत्तर क्रम से विकास हुआ और यही अवतारवाद का विकास है।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सृष्टि के आरम्भकाल से ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण को भारत ने अपनाया है। इसलिए समय-समय पर अनेक घात-प्रतिघात होने पर भी भारतीय सिद्धान्त अक्षुण्ण रूप से टिके हैं। सामान्य दृष्टि से विचार करने पर दोनों का पौराणिक और वैज्ञानिक युक्तियुक्त प्रतीत होते हैं। धार्मिक

---

1. पुराण विमर्श, पृष्ठ-178.

भावना से देखने पर पौराणिक मत समीचीन प्रतीत होता है तथा प्राकृतिक दृष्टि से विचार करने पर वैज्ञानिक मत युक्तिसंगत प्रतीत होता है लेकिन दोनों ही मतों का लक्ष्य एक ही है, और भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विकासवाद के तत्व को अवतारवाद के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है ।[1]

0000000
00000
000
0

---

1. सारस्वत [illegible] , पृ० 220.
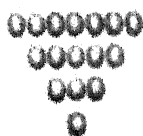
तृतीय - अध्याय

अलंकारवाद के विविध रूप

तृतीय - अध्याय

अवतारवाद के विविध रूप

अवतारवाद के विविध रूपों के वर्णन हमें विभिन्न पुराण - ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं । प्राचीन काल में यद्यपि अवतारवाद की स्पष्ट अभिव्यक्ति लक्षित नहीं होती है, फिरभी अवतारवाद के संकेत मिलने लगते हैं । जैसे - वैदिक साहित्य में अवतारवाद की भावना स्पष्ट न होने पर भी, ईश्वर के मनुष्य रूप में प्रकट होने की प्रवृत्ति नहीं होने पर भी कतिपय मन्त्रों में एक ही ईश्वर के विभिन्न देवताओं या दिव्य शक्तियों के अस्तित्व का पता चलता है । "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" अथवा "एकोऽहम् बहुस्याम प्रजायेय" आदि मन्त्रों से जो एक से अनेक रूप होने की भावना विद्यमान है, इसकी परम्परा उत्तरोत्तर उपनिषदों में भी विकसित होती हुई दृष्टिगोचर होती है । कठोपनिषद् के अनुसार एक ही परमात्मा जगतात्मा अंतरिक्ष (वसु) में वसु, घरों में अतिथि, यज्ञ में अग्नि और होता, मनुष्य तथा मनुष्य से भिन्नतर प्राणियों में आकाश, जल, पृथ्वी, वायु, सूर्य आदि के रूप में वह एक ही है परन्तु विविध रूप धारण करता है । इस युग में सामान्यतः जिस अवतारवाद की अभिव्यक्ति हुई है, वह प्राचीन एवं पूर्ववर्ती साहित्य का ही परिवर्तित एवं तत्कालीन प्रभावों से प्रभावित रूप है । प्रायः अवतारवाद के जिन सिद्धान्तों

और परम्परागत पारिभाषिक शब्दों का विवेचन सम्प्रदायों में होता रहा है, उन्हीं के व्यावहारिक रूपों का प्रयोग तत्कालीन कवियों में दिखलायी पड़ता है । इस दृष्टि से ध्यान देने की बात यह है कि अवतारवाद से सम्बद्ध अंश, कला विभूति और आवेश इन चार रूपों का साम्प्रदायिक सिद्धान्तों में विचार किया गया है ।[1] अंश, कला, विभूति तथा आवेश इन शब्दों का कवियों द्वारा जहाँ प्रयोग हुआ है, वहाँ पारिभाषिक रूपों में प्रयुक्त होने के कारण, वे अपने विकसित रूप तथा पूर्व परम्परा का सम्पूर्ण रहस्य अपने में ही अन्तर्हित रखते हैं । इसलिए मध्यकाल में इनके प्रयोग अभिधात्मक न होकर प्रायः रूढ़िगत रूपों में हुआ है ।

अवतारवाद का विभिन्न रूपों में प्राचीन काल से ही विकास होता गया परन्तु इस समस्त विकास प्रक्रिया के मूल में सदैव प्रधान कारण अंशावतार को ही मिलता है । अंशावतार की परम्परा प्राचीन है । इसमें दार्शनिक एवं विद्वानों की दृष्टि से ईश्वर के सम्पूर्ण रूप की अपेक्षा अंश रूप ही विवेचित होता है, क्योंकि उसका असीम रूप जब ससीम अथवा सीमित हो जाता है, तो वह अंश मात्र रूप को धारण करने वाले हो जाते हैं । मानव

---

1. यस्यानन्तावताराश्च कलाश्च विभूतयः ।
   आवेशा विष्णु प्रवेशाः [illegible] ॥
   वैष्णवधर्मरत्नाकर - वशिष्ठ संहिता : पृ० 125.

रूप तो ससीम है क्योंकि उसके विकास की एक निश्चित सीमा है परन्तु ईश्वर तो असीम है । और जब ईश्वर अंश रूप में अवतार ग्रहण करता है, तब वह ससीम हो जाता है । ईश्वर भी अवतार रूप में सामान्यतः देवता, साधु, भक्त या आराधक के प्रति एक पक्षीय या पक्षपाती हो जाता है । अतः वह निरपेक्ष ब्रह्म या ईश्वर न होकर भक्तों का भजन उपास्य और उनका अभिमत दाता हो जाता है, ऐसी स्थिति में ब्रह्म पूर्णावतारी न होकर केवल अंशावतारी ही माना जायेगा । वैदिक साहित्य में भी एक ही देवता के अनेक अंशों में अवतरण के अस्तित्व का पता चलता है और यही परम्परा आगे भी देखी जाती है, उपनिषदों में एक ही परमब्रह्म के अंश रूप में, सूर्य, अग्नि वायु, जल, आकाश, पृथ्वी, वृक्ष और पर्वत आदि के विभिन्न रूप धारण करता है । उपनिषद के उक्त रूपों से संचालित सगुण उपासकों ने विभिन्न अंशात्मक रूपों के उत्पन्न होने का वर्णन किया है, उनके अनुसार उपास्य राम से शिव, ब्रह्मा विष्णु आदि नाना प्रकार के अंश रूप उत्पन्न होते हैं । वे ही राम (परमब्रह्म) सृष्टि रहस्य के ज्ञाता आदि देव हैं, उन्हीं से ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्यचन्द्र, अग्नि, जल पृथ्वी आदि का अंशावतार होता है ।[1]

---

1. ॐ कृष्णः शिव संयुक्त ।
   श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य , पृ० 14.

'पुरुष सूक्त' के अनुसार 'पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि' में भी परमब्रह्म के अंशावतार परम्परा का बोध होता है ।[1] पुनः इसका विकास क्रमशः वैश्वानर, तैजस, प्राज्ञ और ब्रह्म शब्दों में माना गया है ।[2] विष्णु पुराण में सृष्टि, पालन और संहार के सम्बन्ध ब्रह्मा, मरीचि, काल और प्राणी, विष्णु, मनु, काल, सर्वभूतात्मा, रुद्र, अग्नि, काल, अखिल भूत आदि को बार-बार अंशों में विभक्त बतलाया गया है ।[3] इस प्रकार परमात्मा के विषय में जो कुछ भी ज्ञात है, वह दृश्य रूप इसका केवल अंशमात्र है । 'केनोपनिषद्' में ब्रह्म के इस अंशस्वरूपात्मक ज्ञान का उल्लेख हुआ है । इसके अतिरिक्त मनुष्य आदि सभी प्राणियों को जीवात्मा, परमात्मा का अंश माना जाता रहा है । आरण्यकों एवं उपनिषदों में विश्वात्मा और व्यष्टि - आत्मा के अभिव्यक्त रूपों का वर्णन होता है । इस प्रकार उक्त तथ्यों में अंशाभिव्यक्ति के मूल रूपों का आभास परिलक्षित होता है ।

अंशावतार की सर्वाधिक व्याप्ति बहुदेववादी रूप में मिलती है । जहाँ पर ईश्वर के अवतार के साथ - साथ उनके सहयोगी रूप में अन्य देवता और देवियों का भी अवतरण

---

1. ऋग्वेद 10/90/3.
2. छान्दोग्योपनिषद् 2/12/6.
3. विष्णु पुराण 1/22,24-31.

होता है । वैदिक देवों के चरित्रगत तथा व्यक्तिगत रूपों में प्रचलित होने के कारण, उनके मानुषिक अभिव्यक्तिकरण की यह भावना विशिष्ट गुणों से युक्त होने से प्राचीन महाकाव्यों वाल्मीकि रामायण और महाभारत में प्रमुख रूप से वर्णित है । देवताओं जैसे इन्द्र, वायु अग्नि आदि का क्रमशः एक मानवीय कृत रूप प्रचलित हो चुका था । ये देवता मनुष्यों के रूप में अवतीर्ण होते थे, इसलिए मनुष्य के समान ही उनके समस्त गुण या अवगुण दिखलाई पड़ते हैं ।[1]

वैदिक ग्रन्थों में ईश्वर के आविर्भाव का आभास मिलता है, "अग्नि" का ग्लोक से अवतरण और तेजबल से जन्म प्राप्त करना, इन्द्र के अमोघ वीर्य और तेज से जन्म लेने तथा सूर्य और सोम के जन्म के भी उदाहरण मिलते हैं । इन्द्र प्रजापति के अंश से विश्वामित्र, सप्त ऋषि, दस अंगिरस एवं आठ बाल-खिल्यों की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है ।[2]

महाभारत का विशद वर्णन है, इसके मुख्य नायकों के रूप में वैदिक देवताओं का अंशावतार होता है तथा इसके अतिरिक्त बहुत से देवता, दानव, गन्धर्व, किन्नर, नाग आदि भी अंशावतार ग्रहण करते हैं । जैसे इन्द्र के अंश से अर्जुन

---

1. ऋग्वेद 5·13, 1
2. ऋग्वेद संहिता 8·7·36.

का अवतार और नारायण के अंश से भगवान् कृष्ण का अवतार माना जाता है।[1]

वाल्मीकि रामायण में भी अंशावतारों का वर्णन किया गया है, जहाँ भगवान विष्णु, राम तथा भाइयों के रूप में अंशावतार ग्रहण करते हैं। इन्द्र, ब्रह्मा, शिव आदि भी अंशरूप में रामचन्द्र, हनुमान आदि के रूप में अवतीर्ण होते हैं। इसके अतिरिक्त एक और परम्परा "विष्णु पुराण" में मिलती है जिसमें देवताओं के साथ स्वयं नारायण अंशावतार लेते हैं और इसी परम्परा का वर्णन भागवत में भी देखने को मिलता है।[2]

अंशावतार की एक और परम्परा राजाओं के अंशावतार में भी मिलती है। मनुस्मृति के अनुसार इन्द्र, अग्नि, सोम, यम और वरुण के स्वरूप को भगवान राम धारण करते हैं।[3] 'विष्णु पुराण' में समस्त सृष्टि को परब्रह्म का अनुतांश कहा गया है।[4] और 'भागवत' में अवतारों के आद्य कोश पुरुष नारायण' के अंश से देवता, पशु, मनुष्य आदि की उत्पत्ति बतलाई गई है।

---

1. महाभारत 1/67/116, 1/67/151.
2. वाल्मीकि रामायण 1/17, 6/30, 20/23
3. मनुस्मृति 7/4.
4. विष्णु पुराण 1/9/53.

अंशावतार की परम्परा अवतारवाद की उन प्रारम्भिक मूल भावनाओं से है जिनके आधार पर वैदिक काल से ही किसी न किसी रूप में अवतारवाद का क्रमिक विकास होता आया है ।[1]

अतः यह स्पष्ट ही परिलक्षित होता है कि अंशावतार की परम्परा वैदिक साहित्य से लेकर आधुनिक साहित्य तक विकसित होता हुई चरमोत्कर्ष तक पहुँच गयी थी ।

पुराणों में अंशावतार या अंश रूपों के साथ कला और विभूति का भी वर्णन मिलता है और इन तीनों का इस प्रकार सम्मिश्रित रूप है कि उनमें भेद अत्यन्त विरल विदित होता है ।

भारतीय साहित्य में कला का विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया गया है लेकिन अवतारवादी साहित्य में अंश का ही विशेष रूप में वर्णन किया गया है । प्राचीन भारतीय साहित्य में अवतारियों को विभिन्न कलाओं से युक्त कहा गया है । जैसे भागवत में विभिन्न अवतारों का वर्णन करने के पश्चात उन्हें हरि की कलायें कहा गया है,[2] जिनमें शक्तिशाली ऋषि, मनु, देव, गन्धर्व तक आते हैं । कृष्ण को नारायण का पूर्णावतार तथा अन्य अवतारों को अंशावतार या कलावतार कहा गया है ।[3]

---

1. श्रीमद्भागवत 1/3/9.
2. कला: सर्वे हरेरेव [illegible] कला: पुंस: .
   श्रीमद्भागवत 1/3/27.
3. वही. 5/15/6. 1/3/28.

भागवत के ही एकादश स्कन्ध में भगवान विष्णु कहते हैं कि मैं अपने स्वरूप में एक रस स्थित रहते हुए भी, समस्त जगत के कल्याण हेतु अनेक कलावतार ग्रहण करता हूँ ।[1] आगे भागवत में एक स्थान पर "शेषनाग" अंशकलावतार तो दूसरे स्थान पर अंशावतार बताया गया है, इससे स्पष्ट होता है, अंश का ही कलावतार एक विशिष्ट रूप है क्योंकि विष्णु पुराण में पृथु और कपिल को केवल अंशावतार माना गया है जबकि 'भागवत' में ये दो पृथु एवं कपिल विष्णु का विभिन्न कलाओं के अवतार माने गए हैं । इसके अनुसार पृथु को "भुवन पावनी कला" और कपिल को "ज्ञानकलावतार" कहा गया है । राजा गय और कृष्ण को भी कलावतार कहा गया है ।[2]

वैदिक साहित्य में कला का स्वतन्त्र प्रयोग भी देखा गया है जो अंश पर आधारित नहीं है । "शतपथ ब्राह्मण" "बृहदारण्यक" "छान्दोग्य", "प्रश्नोपनिषद" तथा अन्य उपनिषदों में प्रजापति और पुरुष को षोडश कला से परिपूर्ण बताया गया है, इनमें कहा गया है कि जिस प्रकार रथ चक्र में सोलह अरों का प्रयोग होता है, वैसे ही इस प्रजापति - पुरुष में षोडश कलाएँ सन्निहित हैं ।[3]

---

1. श्रीमद् भागवत 11/4/27.
2. वही - 4/15/3, 9/14/19
3. शतपथ ब्राह्मण 10/4/16.
   प्रश्न उपनिषद् 1/5/14.

भागवत में एक अन्य श्लोक में वर्णन है कि "सृष्टि निर्माण की इच्छा होने पर भगवान् ने पुरुष रूप ग्रहण किया जिसमें महत्तत्व अर्थात् दस इन्द्रियाँ, पाँच भूत तथा एक मन के रूप में सोलह कलाएँ विद्यमान थीं। यही पुरुष अवतारों का अक्षय कोष तथा आदि अवतार के रूप में "भागवत" में वर्णित हुआ है।[1] भागवत में दो (1/3/27 और 11/4/10) उक्त कलावतारों के बारे में कहा गया है कि मनु, मनुपुत्र, धर्मानुष्ठान, प्रजा पालन और धर्म पालन करते हैं और भगवान् युग-युग में सनकादि सिद्धों का रूप धारण कर ज्ञान का, याज्ञवल्क्य आदि ऋषियों का रूप धारण कर कर्म का, दत्तात्रेय आदि रूप में योग का उपदेश देते हैं। वे मरीचि और प्रजापतियों के रूप में सृष्टि विस्तार करते हैं, सम्राट् रूप से लुटेरों, दुष्टों का विनाश और काल रूप से संहार करते हैं। अतः कलावतार के विकास तथा कलाशक्तियों के निर्धारण में विष्णु पुराण (6/5/74) के ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य, विष्णुपुराण के शक्ति, बल, वीर्य, तेज तथा भागवत के ऐश्वर्य आदि के अतिरिक्त सत्य, अमृत, दया आदि के न्यूनाधिक योग का अनुमान किया जा सकता है।[2] क्योंकि कला-वतारों के विशिष्ट कार्यों में कलात्मक शक्तियों की अपेक्षा उपर्युक्त

---

1. श्रीमद्भागवत 1/3/5 एवं 2/6/41.
2. विष्णु पुराण (6/5/7)
   श्रीमद्भागवत (1/10/25)

गुणों का अधिक समावेश हुआ है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अवतारवादी साहित्य में अंशावतार का उद्भव वैदिक पुरुष की षोडश कलाओं से हुआ है। भागवत, विष्णु पुराण, पद्म पुराण आदि में अनेक अंशावतारों में से अनेक अवतारों को उनके विशिष्ट गुण, कार्य और रूप आदि के कारण अंश के ही पर्याय और अंशावतार के रूप में प्रयोजित किया गया ऐसा प्रतीत होता है ।

विभूतिवाद :

जगत् में ईश्वर के अनेक रूप प्रकाशित हैं, कहीं वह साकार है तो कहीं निराकार । कहीं अवतारी रूप है तो कहीं भावुक भक्त के हृदय में समस्त विश्वव्यापिनी सत्ता के कर्ता के रूप में विद्यमान है । अतः ईश्वर की शक्ति इस समस्त सृष्टि के जड़-चेतन में समान रूप से विद्यमान मानी जाती है जो मानव हृदय में अपनी अपूर्व शक्ति या अपूर्व क्षमता का प्रभाव डालती है । किसी परम शक्ति के अनुभव के कारण ही कालान्तर में विभूतिवाद को अवतारवाद में समाविष्ट किया गया ।

विभूतिवाद में सृष्टि के उन्हीं प्रतिनिधियों को चुना गया जो अपने वर्ग या जाति के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि थे । अवतारवाद में भी उन्हीं प्रतीकों को सर्वश्रेष्ठ स्थान मिला जिनका

अपने सूक्ष्मतम रूप, गुण, ऐश्वर्य, चिन्तन, त्याग, तपस्या, साधना और अद्भुत कार्यों से मनुष्येतर या परमेश्वर के ऐश्वर्य या दिव्य शक्तियों में ज्ञानवान् हो और यह तर्क, ज्ञान या कर्म पद्धतियों पर आश्रित न होकर साधारण जन की श्रद्धा और भक्ति पर आधारित होता है। इस भावना में अवश्य ही वह साहित्यिक मनीषी प्रतिविम्बिता की दृष्टि है जिसने प्रत्येक सर्वोत्तम वस्तु में प्रभु के ऐश्वर्य - शक्ति को देखने का प्रयास किया है।

पुराणों में अवतार, अंश के अलावा कुछ ऐसे रूपों का भी उल्लेख है जो सामान्यतः विभूति रूप में ही प्रचलित हो गये हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के दसवें अध्याय के अनुसार विभूतियों में, अनन्त विभूतियों में केवल कुछ विभूतियों का ही वर्णन किया गया है।[1] और यह प्रचलित रूप भी इसी अध्याय से सम्बद्ध है। गीता 10/7 में शंकराचार्य ने "एतां विभूति योगं च" की व्याख्या करते हुए उसे योगैश्वर्य - अणिमा सर्वज्ञता आदि सामर्थ्यवाद माना है। "पुरुष सूक्त" के 11/12/13 मन्त्रों में विशिष्ट कार्यों और शक्तियों से उत्पन्न पशुओं, चन्द्र, सूर्य, वायु, अग्नि, आकाश तथा अन्य लोकों में विभूतिवाद के बीज का अनुमान किया जा सकता है।[2] "विष्णु पुराण" में शासन एवं लोकपालन में लगे हुए सभी भूपादि-

---

1. श्रीमद्भगवद् गीता 10/19.
2. ऋग्वेद 10/90

पत्तियों को विष्णु की विभूति माना गया है। इस पुराण में देवता, दैत्य, दानव, मांसभोजी, पशु, पक्षी, मनुष्य सर्प, वृक्ष विविध वर्गों के भूत, भविष्य एवं वर्तमान कालीन जितने व्यक्ति हैं एवं भूमिधर तथा पर्वत आदि हैं वे सभी विष्णु के अंश कहे गए हैं।[1] भागवत (11/16/6) में "गीता" के अनुसार और (11/16/3) में उन्हीं रूपों और विभूतियों के विषय में उद्धव प्रश्न करते हैं, जिनकी ऋषि - महर्षि उपासना करके सिद्धि प्राप्त करते हैं। प्राचीन साहित्य में उपलब्ध ईश्वर के सर्वाभिव्यक्त रूपों में कुछ विशेष विभूति सम्पन्न और शक्तिमान् रूपों के विशेषीकरण के आधार पर ही विभूतिवाद की परम्परा का विकास हुआ और जो लगातार अविच्छिन्न ही रही। इस धारणा के उद्गम के बोधक मूल तत्व "पुरुष सूक्त" के मन्त्रों में ही प्रतिभासित होने लगते हैं जिनका प्रायः विकसित रूप और अविच्छिन्न रूप "ब्रह्म-देवता" बृहदारण्यक, छान्दोग्य तथा अन्य उपनिषदों में दृष्टिगत होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अवतारों के समान विभूतियों की गणना करना भी सम्भव नहीं है।[2] विभूति परम्परा में बहुदेवता वाद के साथ एकेश्वरवाद, सर्वेश्वरवाद का रूप भी

---

1. विष्णु पुराण 1/22, 16/22.
2. श्रीमद्भागवत 11/16/39.

भी विभूतिवाद का मूल तत्व है। इसमें एक परब्रह्म अनेक रूपों में सृष्टि का सृजन, पालन, संहार करते हैं, अपने विभिन्न रूपों को धारण कर सृष्टि का कल्याण करते हैं और पृथ्वी की रक्षा करते हैं। इसलिए राम, कृष्ण आदि को क्षत्रिय राजा के रूप में वर्णन किया गया है। इन क्षत्रिय राजाओं (राम,कृष्ण आदि) को ईश्वर की विभूति ही नहीं बल्कि उन्हें ईश्वरीय अवतार के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि रामकृष्ण आदि क्षत्रिय महापुरुषों को लेकर अवतारवादी उपासना का अधिकांश महाकाव्य युग से प्रारम्भ हुआ। निश्चय ही प्रारम्भिक विभूतियों में पूजित राजाओं को ही अवतारवादी और उपास्यवादी रूप प्रदान किया गया।

विभूतिवाद में वासुदेव के वर्णन तो "गीता" "विष्णु पुराण" और "श्रीमद्भागवत" में भी मिलता है परन्तु महाभारत में भी इसका वर्णन विशद रूप से मिलता है। महाभारत के अनुशासन पर्व (14/317-324) में विभूतिवाद का महत्वपूर्ण वर्णन प्राप्त है। यथा - इसका सम्बन्ध न तो विष्णु से है, न कृष्ण आदि से। इसकी विशेषता है कि इसका सीधा सम्बन्ध शिवजी से स्थापित है, शिव ही विभूति रूप में आदित्यों में [illegible], ईश्वरों में महेश्वर, धनों में कुबेर, यज्ञों में विष्णु, पर्वतों में मेरु, नक्षत्रों में चन्द्रमा, ऋषियों में वशिष्ठ तथा ग्रहों में सूर्य प्रतीत होते हैं।

इस प्रकार "महाभारत" में वर्णित सभी विभूतियों का सम्बन्ध शिवजी से जोड़ा गया है ।[1]

अतः उपर्युक्त तथ्यों और विवेचनों के आधार पर यह स्पष्ट विदित होता है कि भारतीय धर्म एवं अवतार वाद में विभूतिवाद और बहुदेवतावाद का अभिन्न सम्बन्ध रहा है । यहाँ एकेश्वरवाद एवं सर्वेश्वर वाद का बोध भी होता है । एक ही परमब्रह्म से अनेक देवताओं का आविर्भाव होता है तथा एक ही देवता विभिन्न कालों में अपने विभिन्न अंशों कलाओं और विभूतियों के साथ भिन्न-भिन्न रूपों में अवतीर्ण होता है । जैसे - भगवान विष्णु - त्रेता में राम, द्वापर में कृष्ण, कलियुग में बुद्ध और कल्कि के रूप में अपनी विभिन्न विभूतियों के साथ पृथ्वी पर जन कल्याण हेतु अवतीर्ण होते हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शक्ति एवं गुणों की दृष्टि से अंश, कला, विभूति एक समानान्तर भूमि पर स्थित होते हैं क्योंकि गीता में विभूति की पूर्ण परम्परा के अनुसार इन दिव्य विभूतियों को अनन्त कहा गया और यहाँ स्पष्ट रूप से श्रीकृष्ण ने बतलाया है कि जो - जो विभूतिमान, श्रीमान और ऊर्जित है, वह मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न है ।"[2]

---

1. महाभारत, अनुशासन पर्व 14/317/324.
2. यद्यद्विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
   तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥
   श्रीमद्भगवद् गीता 10/41.

का अवतार के समय से ही आवेश हो जाता है । ईश्वर की शक्ति का अंश माना जाता है । इस अवतार में जीव पर ही भगवत् - शक्ति का भगवत् कार्य के निमित्त आवेश होता है ।

पद्म पुराण के अनुसार पृथु, वेन, सनकादि, नारद, परशुराम आदि में भगवान आविष्ट होते हैं, अतः ये आवेशावतार माने गए हैं । विष्णुधर्मोत्तर पुराण में "कल्कि" को भी आवेश अवतार ही कहा गया है । भागवत के टीकाकारों में प्रमुख इसी के टीकाकार "श्रीधर स्वामी" ने भागवत (1/3/27) की व्याख्या में उपर्युक्त अवतारों पर विचार करते हुए मत्स्यादि अवतारों में ज्ञान, क्रिया, शक्ति उचित आवेशों का पृथक् पृथक् समावेश माना है ।[1] तथा अंश, कला और आवेश का समन्वय कर कुमारादि को ज्ञाना-वेश और पृथु आदि को शक्त्यावेश के रूप में ग्रहण किया है । अन्य टीकाकारों ने भी अंश, कला के साथ ही आवेश का समन्वय माना है।[2]

"गर्गसंहिता" में अंश, अंशांश, कला, आवेश और पूर्ण अवतार इन पाँच रूपों में अवतारवाद का वर्गीकरण किया गया है। जिनमें सृष्टि, पालन संहार के कर्त्ता ब्रह्मा, विष्णु और महेश अंशा-वतार हैं । इनसे उत्पन्न होने वाले मरीचि आदि अंशांश, कपिल

---

1. भागवत 1/3/27,
   लघु भागवतामृत पृ० 82
2. भागवत-सुबोधिनी टीका 1/3/27 एवं श्रीधरी टीका 1/3/27.

आदि कलावतार, कृष्णादि आवेशावतार और नृसिंह, राम, श्वेत द्वीप के हरि, वैकुण्ठ, यज्ञ, नारायण आदि पूर्ण अवतार माने गए हैं। उपर्युक्त रूपों को अलग-अलग स्पष्ट बताते हुए कहा गया है कि कार्याधिकार के कर्ता उनके अंश और उन कार्यों के प्रतिपादक अंशांश हैं। जिनके अन्तर में प्रविष्ट होकर विष्णु कार्य करते हैं, वे आवेशावतार हैं। जो गुण धर्मों को जानकर और उन्हें परिपूर्ण कर अन्तर्धान हो जाते हैं, वे कलावतार हैं।[1]

यहाँ अंश, आवेश, अंशांश, कला आदि रूपों को अधिक स्पष्टता से दिखाया गया है। इससे तत्कालीन युग में उनके रूपों को निर्धारित होने में अधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति हो जाती है। इस प्रकार अवतारवाद के विभिन्न रूपों में विशेष रूप से आवेशावतार के सम्बन्ध में बहुत सी नयी बातें ज्ञात हो जाती हैं। सबसे पहले यह कि अवतारवाद के अंश, कला, विभूति और पूर्ण-रूपों में जहाँ अंशावतार की विशेषताएँ लक्षित होती हैं, वहाँ आवेशावतार अंश रूप से एकदम भिन्न हो जाता है।

यदि "आवेश" का वास्तविक अनुशीलन किया जाये तो स्पष्ट पता चलता है कि आवेश का सम्बन्ध समष्टिगत सामाजिक व्यवहार में प्रचलित नहीं हो सकता क्योंकि आवेश का प्रत्यक्ष सम्बन्ध तो केवल व्यक्ति से होता है, क्योंकि विभिन्न अवस्थाओं का मानसिक

---

1. [illegible] 1/1/16.

वैदिक साहित्य में अवतार शब्द का अर्थ स्थानों पर प्रयोग हुआ है जिसके अनुसार कोई वस्तु ऊपर से नीचे उतरती है। इसी प्रकार पुराणों में भी ईश्वर के अनेकों अवतारों के बारे में वर्णन किया गया है जिसका तात्पर्य भगवान, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र आदि के अवतार लेने के सम्बन्ध में है। पृथ्वी से अत्याचारियों, दुष्टों का विनाश करके साधुओं और भक्तों की रक्षा करने, धर्म की स्थापना करने के लिए देवता अवतार ग्रहण करते हैं। अवतारग्रहण करने के लिए देवताओं को विभिन्न कालों, परिस्थितियों और उद्देश्यों के अनुसार विभिन्न अवतार ग्रहण करने पड़ते हैं, अतः अवतारों के भी विविध रूप हैं जिनका वर्णन अनेक पुराणों में विभिन्न प्रकार से किया गया है। कुछ पुराणों ने ईश्वर के अवतार पाँच प्रकार के माने हैं, यथा –[1] पूर्णावतार, [2] अंशावतार, [3] विशेषावतार, [4] अविशेषावतार और [5] नित्यावतार।

"गर्ग संहिता" के गोलोक खण्ड में राजा जनक ने नारद जी से भगवान के अवतारों के प्रसंग में उनसे [नारद जी से] अवतारों के विविध रूपों के बारे में पूछा –"हे महर्षि नारद, भगवान विष्णु या हरि [ईश्वर] के अवतार के कितने रूप हैं जो उन्होंने कृपा करके साधुओं की रक्षा हेतु ग्रहण किए हैं। मुझ पर कृपा कर ईश्वर के विविध रूपों के बारे बताने की कृपा करें।[1]

---

1. "कतिधा श्री हरेर्विष्णोरवतारा भवन्त्यम। साधूनां रक्षणार्थाय
   कृपया वद मे प्रभो ॥"
   गर्गसंहिता गोलोक खण्ड – 5

विदेहराज जनक के इस प्रकार विनम्र वचनों को सुनकर देवर्षि नारद जी ने कहा - हे राजन, भगवान के अवतारों के छः रूप माने जाते माने गए हैं । यथा -(1) अंशावतार, (2) अंशांशावतार, (3) आवेशावतार, (4) कलावतार, (5) पूर्णावतार और (6) परिपूर्णावतार ।[1]

नव कलाओं से पन्द्रह कलाओं में अवतार धारण करने वाले अवतार का अंशावतार माना जाता है । अंशावतार का कार्य एक समय में, एक देश में, एक परिस्थिति में किसी विशेष के हित के लिए (वर्ग विशेष, जाति विशेष या कार्य विशेष) होता है । जिस प्रकार भगवान परशुराम (नारायण के अंश रूप अवतार थे) का क्षत्रियों (अभिमानी, अत्याचारी क्षत्रिय शासकों) का विनाश करने का कार्य तत्कालीन समय में ही आवश्यक था किन्तु हमेशा उस विनाश करने कार्य की आवश्यकता नहीं थी । इसी प्रकार ईश्वर की उपेक्षा, यज्ञ सम्बन्धी कार्यों का विरोध करके भगवान बुद्ध ने अहिंसा का प्रचार किया था जो उस समय अति महत्वपूर्ण कार्य था, परन्तु बाद के समय में उसकी व उतनी उपयोगिता नहीं रह गयी ।

अवतारवाद के विकास में सर्वप्रथम अंश रूप अवतार

---

1. अंशांशांशस्तथावेशः कला पूर्णः प्रकथ्यते ।
व्यासाद्यैश्च स्मृतः षष्ठः परिपूर्णतमः स्वयम् ॥
गर्गसंहिता 1/16.

का ही वर्णन मिलता है । कोई भी देवता अपने वास्तविक रूप में पृथ्वी पर अवतीर्ण न होकर किसी प्राणी के रूप में जन्मग्रहण करता है और यही ईश्वर का अंशावतार होता है । विष्णु, इन्द्र, अग्नि, सूर्य और बृहस्पति के अंशावतार पुरोहित, राजा, योद्धा आदि माने गए हैं । प्रजापति के अंश से विश्वामित्र, वाग्यशिष्य और अंगिरसों का अवतार माना गया है । इसके अलावा मनुष्य शरीर में भी अग्नि वायु, सूर्य और आकाश आदि के अंश माने जाते हैं । महाभारत में अंशावतार का विशद वर्णन किया गया है । विभिन्न योनियों में जन्मे देवता, दानव, गन्धर्व, नाग, राक्षस, सिंह, व्याघ्र, हरिण, सर्प, पक्षी आदि के अंशावतारों का विस्तृत वर्णन किया गया है ।[1]

पुराणों में मुख्य नायकों के रूप में वैदिक देवताओं के अंशावतारों का वर्णन मिलता है जिसमें वैदिक काल के मुख्य देवता नर और इन्द्र के अंश से अर्जुन तथा तत्कालीन उपास्य नारायण के अंश से कृष्ण का अवतार होता है ।[2]

"वाल्मीकि रामायण" में भी ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता पुनः अपने अंश से आविर्भूत होते हैं ।

विष्णु पुराण में अखिल सृष्टि को परब्रह्म का "अंशांश" कहा गया है और "भागवत" में अवतारों के अंश को

---

1. महाभारत 1/67.1/67.110-116.
2. ऋग्वेद 8/7/36.

पुरुष नारायण के अनुग्रह अंश से देवता, ऋषि आदि की उत्पत्ति बतलाई गई है। अंशावतार का वैदिक काल से ही क्रमशः विकास होता गया है।

प्रारम्भ में भगवान् राम और कृष्ण को भी विष्णु भगवान् का अंशावतार ही माना जाता था, परन्तु कालान्तर में उन्हें पूर्णावतार से विभूषित किया गया।

महाकवि क्षेमेन्द्र ने भी अपने काव्य "दशावतार चरित" में "कृष्णावतार" प्रसंग में कहा है कि "जिस समय पृथ्वी को भगवान् विष्णु आश्वासन देते हैं कि - शीघ्र ही मैं पृथ्वी से अत्याचार दूर करने के लिए यथायोग्य करूँगा। तत्पश्चात् भगवान् विष्णु के पृथ्वी पर अवतार लेने के भाव को जानकर ब्रह्मा जी अन्य देवताओं से कहते हैं कि "यदुवंशियों कुल में वसुदेव के रूप में होने वाले हैं। अतः "तुम लोग भारत कुल में अंश रूप में अवतार लो" ऐसा ब्रह्मा जी के कहने पर "ऐसा ही हो" कहकर देवता चले गए।[1]

भागवत में कहा गया है कि - जिसमें तेज, श्री, कीर्ति, ऐश्वर्य, त्याग, सौन्दर्य, पराक्रम, तितिक्षा आदि श्रेष्ठ गुण हों वह मेरा ही अंश है।[2] भागवत में ही [2/6/41-44] में वर्णित

---

1. कुलमंशावतारैर्भुवि कुरुत भवन्तो, वसुदेवो यदुवंशे तथेत्युक्त्वा ययुः सुराः ॥
दशावतार चरित, कृष्णावतार श्लोक-16.
2. तेजः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यं ह्रीस्त्यागः सौभगं भगः ।
वीर्यं तितिक्षा विज्ञानं यत्र यत्र स मेंऽशकः ॥
भागवत 11/16/40.

अंशावतार विराट् पुरुष से आविर्भूत ब्रह्मा, शिव, विष्णु, आदि प्रजापति, मरुद्गण, स्वर्लोक के स्वराड, पक्षियों के राजा, गंधर्व, विद्याधर, यक्ष, राक्षस, सर्प, नागों के स्वामी, महर्षि, दैत्येन्द्र, सिद्धेश्वर, दानवराज, प्रेत, पिशाच, भूत, कूष्माण्ड, जलजन्तु मृग आदि सभी प्राणी भगवत्स्वरूप हैं।

अंशावतार के पश्चात् अंशांशावतार का वर्णन भी यत्र-तत्र प्राप्त होता है। विष्णु पुराण में सृष्टि, पालन और विनाश से सम्बन्धित ब्रह्मादि, मरीचि, काल और प्राणी, विष्णु अंश रूप में, मनु, रुद्र, अग्नि, अखिल भूत आदि को चार-चार अंशों में विभक्त बतलाया गया है। यही अंश के रूप में जीव रूप में पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करते हैं। वाल्मीकि रामायण में एवं महाभारत में सामूहिक अंशावतार की यह भावना विशिष्ट गुणों और रूपों से युक्त वैदिक देवों के व्यक्तिगत या पारिवारिक रूपों में प्रचलित होने के कारण विदित होती है। भगवान् राम विष्णु के अंश रूप में पृथ्वी पर अवतार लेते हैं और उनके अन्य भाई अंशांश रूप में अवतरित हुए हैं, यथा - भरत चक्र का अंशांश, लक्ष्मण, नाग का अंशांश है। इसी प्रकार राक्षस भी, रावण, कुम्भकर्ण आदि भी अंशों के रूप में अवतरित होते हैं।

महाभारत में "श्रीकृष्ण" भगवान् विष्णु के अवतार माने गए हैं तो बलराम, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि अन्य देवताओं के अंश के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। कंस, दुर्योधन, दुःशासन,

धृतराष्ट्र के अन्य पुत्र, कालनेमि, असुरों आदि के अंशरूप में अवतार ग्रहण करते हैं। पितामह भीष्म, विदुर आदि गन्धर्व आदि के अंशों के रूप में जन्म लेते हैं।

विष्णु पुराण में इस समस्त सृष्टि के जड़ और चेतन में परब्रह्म के अंश ही अवतरित होते हैं। समस्त सृष्टि में ही परम ब्रह्म के विराट रूप का ही दिग्दर्शन होता है।

भागवत में श्रीकृष्ण के अवतार माने गए हैं तथा गोपियों को अप्सराओं तथा राधा, रुक्मिणी आदि को लक्ष्मी तथा माया आदि का अंश कहा गया है।

गीता में युद्ध से विरक्त पारिवारिक मोह से आकुल कुरुक्षेत्र में अर्जुन को विराट् रूप दर्शन देते समय कृष्ण आदि देव परम-ब्रह्म के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं परन्तु उनके विराट रूप में हजारों करोड़ों ब्रह्माण्ड, जीव-जन्तु, पाण्डव, कौरव, समस्त जड़-चेतन आदि दिखाई पड़ते हैं जो पृथ्वी पर उनके अंशरूप में अवतार लिए हैं।

विश्वामित्र, वशिष्ठ, मरीचि, मनु तथा अन्य देवतागण अंशों के रूप में ही पृथ्वी पर अवतरित हुए थे।

भगवान के विविध - अवतारों में कला अवतार का भी वैदिक साहित्य से सम्बन्ध होना सम्भव है। 'कला' शब्द का प्रयोग यों तो भारतीय साहित्य में विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है, परन्तु अवतारों के विभिन्न रूपों में एक विशिष्ट रूप कलावतार

इस प्रकार स्पष्ट है कि अवतारवादी साहित्य में अंश-अवतार का उद्भव वैदिक पुरुष के लिए प्रयोजित सौम्य रूप को लेकर हुआ, क्योंकि भागवत युग तक विष्णु पुरुष के पर्याय रूप में प्रचलित हो चुके थे। जिसके फलस्वरूप सौम्य स्वयं पूर्ण पुरुष (विष्णु) ही अवतार ग्रहण करते हैं।

भगवान राम एवं कृष्ण का भी बारह एवं सोलह कलाओं से सम्पूर्ण अवतार माना गया है। महामुनि कपिल, कूर्म, सूकर वामन आदि को अंशावतार कहा गया है क्योंकि प्रत्येक में समय, परिस्थिति और कार्य के प्रयोजन के अनुसार कलाओं का समावेश हुआ है।

प्राचीन साहित्य में प्रारम्भ से ही अंशावतार अधिक प्रचलित रहा है। इसके प्रचार प्रसार के पश्चात ही अन्य अवतारों का विकास हुआ है, जिनमें पूर्णावतार भी है। पूर्वसाहित्य में राम एवं कृष्ण को अंशावतार के रूप में ही वर्णित किया गया परन्तु ज्यों ज्यों पूर्णावतार का विकास होता गया, यह दोनों अवतार भी पूर्णावतार माने जाने लगे हैं। अन्य वैदिक देवताओं के समान विष्णु प्रारम्भ में केवल देवता मात्र हैं। वैदिक साहित्य में "वामन" अवतार में तीनों लोकों को मापने के कारण वे देवताओं में सर्वश्रेष्ठ माने गए हैं। कालान्तर में इन्हें पुरुष और सोलह कलाओं के विशेषण से विभूषित किया गया और वे परमेश्वर, परमब्रह्म पुरु-

त्रिगुण विशिष्ट विराट रूपधारी सर्वात्मा रूप में प्रसिद्ध हो गए । इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण और महाभारत के राम और कृष्ण प्रथम के मात्र अंशावतार माने जाते है परन्तु विष्णु अवतार मान लेने के बाद राम और कृष्ण पूर्णावतार माने जाने लगे ।

कहीं-कहीं नृसिंहावतार को भी पूर्णावतार माना जाता है ।[1] पूर्णावतार से तात्पर्य होता है जिस अवतार का नायक सोलह कलाओं से परिपूर्ण हो उसे पूर्णावतार कहा जाता है । पूर्णावतार का कार्य सम्पूर्ण देश के समस्त काल (भूत, भविष्य, वर्तमान काल), सभी परिस्थितियों और समस्त प्राणियों के कल्याण के लिए होता है । यथा लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण का, मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम का आदर्शमय कार्यकलाप समस्त काल, देश, सभी परिस्थितियों में, समस्त सृष्टि के प्राणियों के लिए उपयोगी, उपादेय, आचरणीय, आदर्श चरित्र अनुकरणीय है । भगवान् श्रीकृष्ण ने तो भू-भार हरण करने के लिए अवतीर्ण होकर अनेकों, असंख्य और असाधारण कार्य के उपयोगी धार्मिक किए ।

भागवत पुराण में विष्णु के विविध अवतारों का वर्णन करते समय भगवान् श्रीकृष्ण को पूर्णावतार माना है । आनन्द रामायण में विभिन्न अवतारों का वर्णन तो किया गया परन्तु हर अवतार में

---

1. नरसिंह पुराण, 64.60-62

कुछ न कुछ कमी दिखाई गयी और और सबसे श्रेष्ठतम अवतार रामावतार को माना गया । इस रामायण में एक स्थान पर स्वयं राम कहते हैं कि सभी प्रकार के गुण - गुण प्राप्त होने पर इस अवतार में मैंने पूर्ण रूप धारण किया ।

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण को पूर्ण ब्रह्म का अवतार माना गया है जिसमें श्रीकृष्ण ब्रह्मा जी को अपने विराट स्वरूप के बारे में बतलाते हुए कहते हैं कि "सृष्टि के पूर्व मैं ही था, न कोई क्रिया थी, उस समय सद् अर्थात् कोई कार्यात्मक स्थूल भाव नहीं था, असद् कारणात्मक सूक्ष्म भाव न था । यहाँ तक कि इनका कारण मूल प्रधान भी अन्तर्मुख होकर मुझमें लीन हो गया था । सृष्टि का यह प्रपंच मैं ही हूँ । प्रलय में सब लीन होने पर सिर्फ मैं ही रहूँगा । अतः यह स्पष्ट है कि भगवान् ही निर्गुण, सगुण,जीव तथा जगत् सब वही है । इसीलिए उन्हें ज्ञानी लोग परम ब्रह्म, योगीजन परमात्मा और भक्तगण परमेश्वर के नाम से पुकारते हैं ।[1] अतः श्रीमद्भागवत पुराण में श्रीकृष्ण को (ब्रह्मा) परमब्रह्म का पूर्णावतार माना गया है ।

गर्गसंहिता के अनुसार जिसके तेज में समस्त सृष्टि लीन हो जाती है उन्हें साक्षात् पूर्णावतार कहते हैं । अवतार के विभिन्न रूपों का वर्णन करते हुए उसमें श्रीकृष्ण को साक्षात् परिपूर्णतम अवतार भी कहा गया है।[2]

- -

1. अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यद् सदसत्परम् ।
   पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥ भागवत 2/9/32

2. ब्रह्मादयः स्मृता अंशा अंशांशाश्च मरीचयः ।
   कलाः कपिल कूर्माद्या आवेशा भार्गवादयः ॥
   पूर्णो नृसिंहो रामश्च श्वेतद्वीपाधिपो हरिः ।
   वैकुण्ठोऽपि तथा यज्ञो नर नारायणः स्मृतः ।
   परिपूर्णतमः साक्षात् श्रीकृष्णो भगवान् स्वयम् । गर्गसंहिता गोलोकखण्ड1/7-19

इस प्रकार महाकाव्य काल में ही अवतारों के उपास्य रूप गृहीत होने के कारण अवतारवाद की भावना का पूर्णावतार तक क्रमिक विकास हुआ है ।

****

****

****

****

*****

***

*

चतुर्थ - अध्याय

प्रयोजन की दृष्टि से कथाकार

परम्परा

चतुर्थ - अध्याय

प्रयोजन की दृष्टि से अवतार परम्परा

वेद, पुराण, दर्शन एवं शास्त्र के अनुसार सच्चिदानन्द के रूप में स्वयं भगवान् सर्वत्र व्याप्त हैं फिर भी जब साधारण शक्ति से संसार में कार्य नहीं होता तब परम दयालु परमात्मा प्राणियों के कल्याणार्थ पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करते हैं। यजुर्वेद में भी इसी सम्बन्ध में कहा गया है कि जो भगवान् अजन्मा है, वे स्त्री गर्भ से जन्म लेते हैं। माया से अनेक रूपों को धारण करते हैं। "गरुड़ पुराण" में देवों के देव, परम ब्रह्म जो समस्त सृष्टि के कर्ता हैं, वे अजन्मा हैं परन्तु संसार के रक्षण हेतु अनेक अवतारों को ग्रहण करते हैं। "गीता" में श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं कि जब धर्म का ह्रास होता है, अधर्म की प्रगति होती है जो ब्राह्मण साधु और नारियाँ दुष्टों से अपमानित होती हैं तब मैं धर्म की रक्षा के लिए, अधर्म का विनाश करता हूँ, दुष्टों को मार कर भू-भार हल्का करता हूँ।[1] इसी प्रकार ब्रह्म पुराण आदि में भी भगवान् के अवतार के प्रयोजनों का वर्णन हुआ है, परन्तु श्रीमद्भागवत में मुख्य प्रयोजन है कि इस पावन भूमि पर भगवान् के अवतार से मानव जीवन के मुख्यलक्ष्य परम पुरुषार्थ, मोक्ष आदि का मानवों को प्रेरणा मिलती है। ईश्वर के अलौकिक सौन्दर्य, रुचिर चरित्र चित्रण, लीला माधुर्य, लोकोत्तर चमत्कार, नाम कीर्तन, गुणगान आदि का अनुभव मनुष्य को ज्ञान ईश्वर के अवतार रूप में ही होता है अर्थात् साकार रूप में ही अनुभव

---

1. गीता 4.7.8

मनुष्य को ज्ञान ईश्वर के अवतार रूप में ही होता है। अपितु साकार रूप में ही अव्यक्त मानस ईश्वर के अनुपम सौन्दर्य का अवलोकन कर सकता है, निर्गुण रूप में नहीं।[1]

भगवान् ही सब गुरुओं के गुरु हैं तथा समस्त ज्ञानों के आधार हैं, जहाँ से ज्ञान गंगा की धारा लोकमंगल के लिए प्रवाहित होती है जिसकी कुछ बूंदों को पाकर ही मनुष्य का जीवन धन्य-धन्य हो जाता है। भगवान् के अवतारों का एक प्रयोजन विश्व कल्याण हेतु ज्ञान प्रसार करना भी है। शुद्ध - बुद्ध - मुक्त ईश्वर ही सांसारिक बन्धनों से बन्धे हुए जीवन के बन्धन काटने में समर्थ हैं, अतः भौतिक रोगों के विनाश हेतु भी ईश्वर का पृथ्वी पर अवतार होता है।[2] अतः श्रीमद्भागवत का इस विषय में सुस्पष्ट मत है कि.....

मर्त्यावतारः खलु मर्त्य शिक्षणं ।
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः ॥

अवतारवाद की परम्परा में अवतार परम्परा का क्रमिक विकास दृष्टिगोचर होता है। प्राचीन इतिहास के विद्वानों और इतिहासकारों ने ऐतिहासिक दृष्टि से अवतारों के उद्गम एवं उनके

- -

1. नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥
श्रीमद्भागवत 10/29/14

2. ~~[illegible]~~ श्रीमद्भागवत 3·25·36.

कोई भी नहीं है जो जगत् प्रसिद्ध है। महाभारत की दशावतार परम्परा में बुद्ध का स्थान नहीं था, उस समय तक सम्भवतः भगवान् बुद्ध को ईश्वर के अवतारों की गणना में शामिल नहीं किया गया था। बुद्ध के स्थान पर "हंस" का नाम आया है।

"वाल्मीकि रामायण" की भाँति "विष्णु पुराण" में भी ईश्वर के अवतार की परम्परा तो दृष्टिगोचर होती है परन्तु अवतार का क्रम निश्चित नहीं है और इसलिए दशावतार सम्बन्धी परम्परा इस पुराण में दिखाई नहीं पड़ती है लेकिन साधारणतः स्वीकृत दश अवतारों का क्रम अन्य पुराणों में अनुक्रमशः उपलब्ध है। 'वराहपुराण 4/2;48/17-22 में, मत्स्य पुराण 285/6-7 में, अग्निपुराण 2/16, पद्म पुराण 6/43/13-18 आदि में दशावतार परम्परा स्पष्ट दिखाई देती है। हरिवंश पुराण और वायु पुराण में अवतारों के क्रम में विशेष अन्तर दिखाई पड़ता है।

श्रीमद्भागवत में कृष्ण को छोड़कर इसी क्रम से अवतारों का उल्लेख हुआ है। भागवत में चार स्कन्धों में भगवान् के अवतारों की संख्या भिन्न-भिन्न है परन्तु इन चारों स्कन्धों में दशावतार के सभी अवतारों का क्रम दिया गया है लेकिन इस पुराण में क्रम निश्चित नहीं है।

मत्स्य पुराण में दशावतारों के बीच में तीन-नारायण-नरसिंह, वामन आदि दिव्य अवतार माने गए हैं तथा दत्तात्रेय, मान्धाता, परशुराम, राम व्यास, बुद्ध और कल्कि आदि केवल मानव रूप में अवतार

माने गए हैं ।

इस प्रकार उद्गम की दृष्टि से दशावतार परम्परा महाभारत से ही मानी जायेगी क्योंकि अवतारों के चार, छः और दश का जो क्रम महाभारत में मिलता है, उनसे दशावतार परम्परा के क्रमिक विकास का परिचय प्राप्त होता है । ये अवतार उपास्य रूप में अधिक प्रचलित प्रतीत होते हैं ।

पौराणिक साहित्य में दशावतार परम्परा का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन पुराणों में दशावतार की दश संख्या के प्रति अधिक उदासीनता है, परन्तु परवर्ती पुराणों में दशावतार परम्परा निश्चित हो गया है । गुप्तकाल के निकटवर्तीकाल में प्रचलित दशावतार परम्परा का पता देवगढ़ के मन्दिर की मूर्तियों से चलता है जिसमें दशावतार मूर्तियों की स्थापना की गयी और उनकी उपासना की जाती है । अतः 'महाभारत' से लेकर आज तक भगवान् के अवतारों में दशावतार परम्परा अत्यधिक विख्यात हो गई है । इनको इस प्रकार भी कहा जाता है कि जलजौ (जल में उत्पन्न होने वाले दो अवतार - मत्स्य, कच्छप) वनजौ (वन में उत्पन्न होने वाले दो अवतार वराह, नृसिंह), खर्व (वामन), त्रिरामी (तीन राम-परशुराम, दाशरथी राम तथा बलराम), सकृपः (कृपायुक्त अवतार बुद्ध) तथा अकृपः (कृपाहीन अवतार कल्कि) । इसी संख्या को लिंग पुराण (2/48/31-32) गरुड़पुराण (1/86/10-11, 2/201/31-32) तथा पद्म पुराण, उत्तर

दूसरा अवतार कच्छपावतार है, इस अवतार में मुख्य प्रयोजन है - देवता और दैत्यों के साथ हो रहे मंथन को अन्तिम रूप देने के लिए, समुद्र मंथन के समय मन्दराचल को आधार देने हेतु वह कच्छपावतार धारण करते हैं जिससे समुद्र मंथन होता है और उससे देवताओं को वांछित रत्नों एवं अमृत की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त एक अन्य प्रयोजन भी दृष्टिगोचर होता है कि प्रजापति कूर्म रूप धारण कर सृष्टि की रचना करते हैं।[1]

तीसरा अवतार वाराह का है जिसमें भगवान् वराह (सूकर) रूप धारण करते हैं। इस अवतार का प्रयोजन भी पृथ्वी तथा समस्त सृष्टि के कल्याण के लिए ही है। जब असुरों के अत्याचार से पीड़ित पृथ्वी रसातल में धसती जा रही था, तब भगवान् ने सूकर रूप धारण कर जल में निमग्न होती हुई चन्द्रमा में कलंक रेखा सदृश दिखाई देने वाली पृथ्वी को अपने पैने, नुकीले दांतों से खींचकर बाहर निकाला और इस प्रकार पृथ्वी का उद्धार हुआ और सृष्टि की रक्षा हुई।[2]

चतुर्थ अवतार नरसिंह का है जिसमें हिरण्यकशिपु के अत्याचारों से समस्त पृथ्वी पीड़ित हो गयी थी। साधुओं

---

1. कूर्म पुराण 1/16/77-78, भागवत 8/7; अग्निपुराण 3/49
2. विष्णु पुराण 1/4/32-36, भागवत 3/13/35-39.

और भक्तों का अपमान होता था, प्रजा को सताया जाता था, धर्म का ह्रास हो रहा था और अधर्म का अभ्युत्थान हो रहा था, ऐसे में भगवान ने नृसिंह का रूप धारण कर दैत्यराज हिरण्यकशिपु का वध करके पृथ्वी का भार हरण किया तथा धर्म की पुनः स्थापना की थी। हिरण्यकशिपु को ऐसा वरदान प्राप्त था जिसके कारण भगवान् को नर (मनुष्य) सिंह (पशु) का रूप धारण कर भक्तों की रक्षा करनी पड़ी ।[1]

पंचम अवतार वामन का है, इस अवतार का प्रयोजन है कि देवताओं के शत्रु दैत्यराज बलि को छल से पराजित करके सुतल लोक (पाताल से नीचे) में पहुँचाना । इस अवतार में भक्त प्रह्लाद के पुत्र विरोचन ने अपने पुत्र बलि को राज्य भार सौंप दिया । तब दैत्य राज बलि ने दान आदि गुणों से अपनी यश कीर्ति से तीनों लोकों को प्रकाशित किया । राजा बलि के राज्य में दिन-प्रतिदिन सुख-समृद्धि का विकास हो रहा था । दैत्यों ने देवताओं को पराजित कर उन्हें श्रीहीन कर दिया था । स्वर्ग में बलि के ऐश्वर्य से सभी देवता आतंकित हो गए थे । अब राजा बलि के कारण देवताओं को कहीं सम्मान प्राप्त न था । पृथ्वी पर चारों ओर शान्ति ही शान्ति थी तथा दैत्यगणों का अविचल राज्य था । देवताओं ने अपना पराभव जानकर राजा इन्द्र से प्रार्थना की । इन्द्र सहित सभी देव ब्रह्मा की

---

1. भागवत 7/8, अग्नि पुराण 4-5, 276/10/13,
   नरसिंह पुराण 7/8,

रक्षक होते हैं, परन्तु जब क्षत्रिय प्रजा का शोषण और पृथ्वी पर भीषण अत्याचार करने लगते हैं तब भगवान अवतार ग्रहण कर पृथ्वी के भार का हरण तथा प्रजा का कल्याण करते हैं । परशुराम के रूप में भी भगवान तभी अवतार ग्रहण करते हैं । परशुराम के रूप में भी भगवान तभी अवतार ग्रहण करते हैं, जब सहस्रबाहु कार्तवीर्य के अत्याचारों से पृथ्वी डगमगाने लगी । पृथ्वी पर क्षत्रियों के बढ़ते अत्याचार से प्रजा ब्राह्मण, साधु आतंकित हो गए । आश्रमों की शान्ति, अशान्ति में बदल गयी । सहस्रार्जुन के कामधेनु चुराने के पश्चात् क्रोधावेश में परशुराम माहिष्मती नगरी जाकर सहस्रार्जुन से युद्ध कर उसका वध करते हैं, तत्पश्चात् अन्य क्षत्रियों के द्वारा परशुराम के पिता महर्षि जमदग्नि का वध किए जाने पर क्रोध से भरकर भगवान शंकर द्वारा प्रदत्त परशु से 21 बार पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन कर देते हैं, तत्पश्चात पिता का श्राद्ध कर्म आदि करके तपस्या में लीन हो जाते हैं और रामावतार प्रसंग में अपने तेज को राम में विलीन कर देते हैं । इस प्रकार परशुराम में एक विशेष समय के लिए ईश्वर का आवेशावतार होता है ।[1]

तत्पश्चात् अवतार मर्यादापुरुषोत्तम भगवान राम का है, जिन्हें पूर्णावतार माना गया है । इस अवतार का प्रयोजन है कि पृथ्वी पर दैत्यों के बढ़ते हुए अत्याचार से साधु, प्रजा तथा स्त्रियों की रक्षा

---

1. महाभारत 2/49, 3·98/116-117
   मत्स्य पुराण 4·7 ; विष्णु पुराण 4·7, 4·11
   श्रीमद् भागवत 1·3·20 , 2·7·22

करना । एक समय ब्रह्मा जी के मानस पुत्र सनक सनन्दन आदि स्वर्ग में भगवान विष्णु के दर्शनार्थ गये उनके दिगम्बर रूप को देखकर विष्णु के द्वारपाल जय विजय हँस पड़े जिससे क्रोधित होकर ब्रह्मा के पुत्रों ने उन्हें अभिशाप दे दिया कि तुम तीन जन्मों तक राक्षस योनि में जन्म ग्रहण करो । इसी अभिशाप के कारण महर्षि पुलस्त्य के कुल में "रावण" का जन्म हुआ जो अत्यधिक शक्तिशाली था, उसने तपस्या करके ब्रह्मा जी एवं शिवजी से अनेक वरदान प्राप्त कर लिए और शक्ति के अभिमान से चूर होकर तीनों लोकों को पराजित कर त्रिलोकी-सम्राट् बन गया । ऋषि मुनियों का उत्पीड़न करना, स्त्रियों का अपमान करना तथा प्रजा पर अनेक प्रकार से अत्याचार करना ही उसने अपना धर्म बना लिया था । पृथ्वी अत्याचारों से भाराक्रान्त होकर क्षीरशायी भगवान् विष्णु के पास गयी और बोली, हे भगवन अब मुझसे अत्या-चारियों का भार सहन नहीं होता, अतः मेरा उद्धार करो, भगवान विष्णु ने पृथ्वी को आश्वस्त कर दिया तथा अयोध्यापति दशरथ कौशल्या के यहाँ पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया । कालान्तर में रावण का वध करके पृथ्वी पर धर्म की स्थापना की, प्रजा तथा साधुओं का कल्याण किया ।[1]

इसी अवतार परम्परा में अष्टम अवतार भगवान श्रीकृष्ण का है । इनके अवतार का प्रयोजन भी महत्वपूर्ण है, वह अपने भू पर

---

1. वाल्मीकि रामायण 1/7 काण्ड
   भागवत एवं नाना पुराणों में रामकथा प्राप्त

अवतीर्ण होने का प्रयोजन स्पष्ट रूप से बतलाते है-"कि जब जब पृथ्वी पर धर्म का ह्रास होगा अधर्म की उन्नति होगी, साधुओं, गौ ब्राह्मण तथा स्त्रियों का अपमान होगा, तब तब मै पृथ्वी पर अवश्य अवतार लूंगा ।[1]

कंस जब अपने पिता उग्रसेन को बन्दी बनाकर कारागृह में डाल देता है । आकाशवाणी को सुनकर अपनी प्यारी बहिन देवकी को वसुदेव के साथ कारागृह में बन्दी बनाकर रख देता है । साधुओं को अपमानित करता है तथा प्रजा उसके अत्याचारों से त्राहि-त्राहि करने लगती है । देवकी के छः पुत्रों का वध करने के पश्चात कंस का पाप बढ़ता ही जा रहा था । देवकी के सातवें पुत्र बलराम और आठवें पुत्र के रूप में श्रीकृष्ण ने जन्म लिया । वसुदेव द्वारा गुप्त रूप से नन्द अहीर के समीप श्रीकृष्ण को भेज दिया गया, वहीं उनका लालन-पालन हुआ । वे कालिय नाग को जल में कसना, शकट, पूतना, कुम्भासुर वध के पश्चात् कंस वध करके श्रीकृष्ण ही नाना उग्रसेन, पिता वसुदेव माता देवकी को कारागृह से मुक्त करते हैं । द्वारिकापुरी जाकर वहाँ सम्पूर्ण ऐश्वर्य एवं वैभव के साथ निवास करते हैं । कालान्तर में कौरव और पाण्डवों के मध्य हुए महाभारत के समय अर्जुन को "आत्मा" के गूढ़ रहस्य का ज्ञान देते हैं ।[2]

दशावतार परम्परा में नवम् स्थान भगवान बुद्ध का है

---

1. गीता 4·3·4
2. महाभारत -श्रीमद्भगवद् गीता 1/18.

जिनके अवतार का मुख्य प्रयोजन है-संसार में करुणा और अहिंसा का प्रचार-प्रसार करना । लोगों के हृदय में करुणा-दया का भाव उत्पन्न कर प्राणियों की हिंसा बन्द करना, पशु-बलि की निन्दा करके पशु-बलि रोकना तथा मनुष्यों को सांसारिक मोह माया त्यागकर मोक्ष की कामना करते हुए धर्म का आचरण करना ।

महाराजा शुद्धोदन और मायादेवी के पुत्र रूप में जन्मग्रहण करके बाल्यावस्था से ही दया का भाव प्राणी मात्र के लिए रखते थे । कालान्तर में वे पत्नी यशोधरा पुत्र राहुल को त्यागकर रात्रि में ज्ञान प्राप्ति हेतु वन को जाते हैं और ज्ञान प्राप्त कर विभिन्न स्थानों पर जा-जाकर बौद्ध धर्म का प्रचार करते हैं, अनेक राजाओं को हिंसा के जघन्य कार्य से विमुख करके अहिंसा और करुणा के भावों का से आप्लावित करते हैं ।[1]

दशावतार परम्परा के अन्तिम अवतार कल्कि के रूप में भगवान् अवतार ग्रहण करेंगे । इस अवतार का भी मुख्य प्रयोजन पृथ्वी पर अत्याचारों की अधिकता, ब्राह्मणों, स्त्रियों तथा सज्जनों का म्लेच्छों तथा दुष्टों से अपमान, हिंसा, शोषण तथा बर्बरता जब अपनी चरमसीमा का उल्लंघन करने लगेगी तब भगवान् पुनः कल्कि रूप में पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करेंगे । पृथ्वी का भार हरण कर धर्म की स्थापना तथा ब्राह्मण, स्त्रियों तथा सज्जनों का सम्मान यथापूर्व होगा

---

1. भागवत 1/3/24
   अग्नि पुराण 16/2.

उनकी सवारी घोड़े पर तथा हाथ में चमकती तलवार होगी, वे ब्राह्मण घर में जन्म लेंगे तथा ब्राह्मण सहयोगियों द्वारा ही यह भू-भार दूर करेंगे, दुष्टों, म्लेच्छों का समूल विनाश करेंगे ।[1]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि समय और आवश्यकता के अनुसार भगवान अपने विराट रूप को विभिन्न रूपों में बदल कर पृथ्वी पर कृपा करते हैं । अवतार ग्रहण करते हैं, सृष्टि का विकास करते हैं और कल्याण करते हैं । यथा जिस समय पृथ्वी पर जल ही जल था, उस समय मत्स्यावतार, जब पृथ्वी जल से कुछ ऊपर हुई तब कच्छपावतार, वराहावतार, लेकर पृथ्वी को जल से पूर्ण रूप से ऊपर उठाकर विस्तृत करना, फिर नृसिंहावतार, वामनावतार, परशु रामावतार और इसी प्रकार अन्य अवतार। समय और संस्कृति तथा सभ्यता के विकास के साथ-साथ अवतारों के रूप में भी परिवर्तन होता गया । इन अवतारों के रूप परिवर्तन में ही उनके अवतार प्रयोजन के रूप भी विभिन्न होते गये।

अतः अनेक अवतारों में प्रत्येक अवतार का अपना-अपना प्रयोजन विभिन्न होते हुए भी समयानुसार धर्मरक्षण, अधर्मोन्मूलन और साधुपरित्राण आदि प्रयोजन हैं ।

---

1. महाभारत 190/91 वन पर्व
   हरिवंश पुराण 1/41
   भागवत एवं मार्कण्डेय पुराणों में कल्कि अवतार वर्णन प्राप्त है ।

मत्स्यावतार और विष्णु :

भगवान् विष्णु के विभिन्न अवतारों में मत्स्यावतार प्रथम माना गया है । मत्स्यावतार का प्राचीनतम रूप ब्राह्मण साहित्य में मिलता है और इस कथा का सम्बन्ध जलप्लावन तथा वेदों के रक्षार्थ दैत्य वध भी माना जाता है ।

वाल्मीकि रामायण में मत्स्यावतार की कथा का कोई प्रसंग नहीं आया है, केवल श्रीराम की स्तुति के समय "एकशृंग" का वर्णन किया गया है । "एकशृंग" से स्पष्ट तात्पर्य प्रतीत नहीं होता है कि ये शब्द "मत्स्य" के लिए प्रयुक्त हुआ है या वराह के लिए, क्योंकि वराह भी एक शृंग हुआ करते हैं । युद्धकाण्ड में वराह को भी एकशृंग कहा गया है । महाभारत तक मत्स्यावतार का सम्बन्ध विष्णु से पूर्णतया सम्बिद्ध नहीं होता है । अतः महाकाव्यों के अंतिम काल तक मत्स्यावतार का सम्बन्ध विष्णु से माना जा सकता है ।[1]

विष्णु से सम्बन्धित मत्स्यावतार की कथा श्रीमद्भागवत की तीनों सूचियों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है । 'भागवतपुराण' के अनुसार चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त में जब सारी सृष्टि जल में विलीन हो गयी थी तब श्री विष्णु ने अवतार ग्रहण करके वैवस्वत मनु की रक्षा की ।

भागवत की दूसरी सूची में मत्स्यावतार की कथा का

---

1. वाल्मीकि रामायण 6/120/12
2. भागवत 1/3/15.

सम्बन्धी प्रलय कथा से जोड़ा गया है और इस कथा के नायक सत्यव्रत मनु हैं । भगवान् विष्णु सत्यव्रत मनु की प्रलय काल में रक्षा करते हैं तथा उनके साथ-साथ वेदों की रक्षा भी करते हैं ।

प्रथम एवं द्वितीय सूची के अतिरिक्त भागवत ' की [तीसरी सूची] तृतीय सूची में भी मनु की रक्षा, वेदों के रक्षक एवं तथ्यों का संहार करने के लिए भगवान् विष्णु मत्स्य रूप में अवतार ग्रहण करते हैं। भागवत में प्रलय कथा के प्रसंग में एक शृंग मत्स्य सप्त ऋषियों के साथ मनु की रक्षा करते हैं और हयग्रीव नामक दैत्य का वध करके वेदों की रक्षा करते हैं ।

'विष्णु पुराण ' में मत्स्यावतार की कथा का प्रसंग भगवान् विष्णु से सम्बन्धित नहीं है ।

मत्स्य पुराण में मत्स्य प्रलय काल से पूर्व ही मनु से कहते हैं कि प्रलय काल के पश्चात् सृष्टि का प्रारम्भ होने पर मैं वेदों का प्रवर्तन करूँगा ।[1]

अग्नि पुराण में मत्स्यावतार धारण कर भगवान् विष्णु मनु की रक्षा करते हैं और हयग्रीव नामक दैत्य को मारकर वेदों की रक्षा करते हैं ।[2] स्कन्द पुराण में मत्स्यावतार धारण कर भगवान् विष्णु शंखासुर का वध कर वेदों का उद्धार करते हैं ।[3] पद्म पुराण में

---

1. मत्स्य पुराण 2/3-16
2. अग्नि पुराण दूसरा अध्याय
3. स्कन्द पुराण उत्तरखण्ड 92.9

भगवान विष्णु मत्स्यावतार ग्रहण कर "मधु कैटभ" नामक दैत्य का वध करते हैं ।[1] मत्स्य पुराण में यही कथा प्राप्त होती है । प्रलय काल में जब पृथ्वी जलमग्न होने लगी थी,तब भगवान विष्णु मत्स्य के रूप में अवतार लेकर मनु की रक्षा करते हैं । सृष्टि का कल्याण करते हैं।[2]

इसके अतिरिक्त अन्य पुराणों में भी यह कथा विष्णु से सम्बन्धित मानी गई है । उपर्युक्त सभी पुराणों में मत्स्यावतार भगवान विष्णु ही धारण करते हैं । ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है । सभी पुराणों में जलप्लावन की कथा समान है और भगवान विष्णु का मत्स्यावतार - प्रयोजन भी समान है, केवल दैत्यों के नाम में ही परिवर्तन है ।

<u>मत्स्यावतार और प्रजापति :</u>

जलप्लावन से सम्बन्धित कथा वैदिक काल से ही प्रचलित है । वैदिक साहित्य में ही अनेक जलप्लावन की कथा का वर्णन होने लगता है,जिसमें प्रजापति मत्स्यावतार ग्रहण कर मनु की रक्षा करते हैं । मनु के साथ ही सभी प्रकार के जन्तुओं आदि की भी रक्षा करते हैं और पुनः सृष्टि का निर्माण करते हैं ।

शतपथ ब्राह्मण में जलप्लावन और मत्स्यावतार द्वारा मनु की रक्षा का विशद वर्णन किया गया है । अवेस्ता, अथर्ववेद और महाभारत में भी इस कथा का वर्णन किया गया है ।[3] शतपथ ब्राह्मण

---

1. पद्म पुराण सृष्टि खण्ड- 37
2. मत्स्य पुराण 1/142.
3. शतपथ ब्राह्मण 1/8/1'1

में छोटी मछली मनु को प्रातःकाल में जल से आचमन कर रहे थे- ने बोली कि मेरी रक्षा तथा पालन-पोषण करो तो मैं जल प्लावन के समय तुम्हारी रक्षा करूँगी। मनु के कमण्डलु, सरिता फिर समुद्र में मछली को रखने पर और महाविशाल रूप धारण कर लेने पर जब महाप्रलय हुआ तो उस महाविशाल मछली के एक शृंग में मनु ने अपनी नौका, जो बीज, एवं सृष्टि के सृजन हेतु अन्य पदार्थों से भरी थी, बाँध दिया। उस प्रजापति रूपी मछली ने उस महाप्रलय में मनु की रक्षा कर पुनः सृष्टि के सृजन में सहयोग प्रदान किया। "शतपथ ब्राह्मण" में इस मत्स्यावतार को प्रजापति का ही अवतार माना गया है।

"महाभारत" के वन पर्व में 187वें अध्याय में प्रलय कथा के वर्णन में मत्स्य स्वयं मनु से कहता है कि "मैं प्रजापति ब्रह्मा हूँ, मुझसे परे कोई वस्तु नहीं है, मैंने महामत्स्य का रूप धारण कर तुम्हें इस महाप्रलय से बचाया है। तत्पश्चात् वह महामत्स्य मनु को देवता, असुर, पुरुष, जंगम - स्थावर, चेतन - अचेतन आदि की सृष्टि का आदेश देता है।[1]

"विष्णु पुराण" में प्रजापति के अन्य अवतारों के साथ मत्स्य, कूर्मादि का अवतार धारण करने का उल्लेख मिलता है किन्तु सम्पूर्ण कथा नहीं मिलती।[2]

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि वैदिक साहित्य में मत्स्यावतार प्रजापति के द्वारा ही धारण किया गया था। वैदिक

---

1. महाभारत वन पर्व 3/187/52.
2. विष्णु पुराण 1/4/7-8

कालीन साहित्य से लेकर "महाभारत" तक जितने भी प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, उन सभी में जल प्लावन से सम्बन्धित कथाओं में प्रजापति ही भयंकर जलप्लावन से मनु की तथा सृष्टि के अनेक पदार्थों की रक्षा करने के लिए वह मत्स्यावतार ग्रहण करते हैं जिनमें उनके तीन रूप परिलक्षित होते हैं। प्रथम लघु मीन रूप जिसमें वह मनु से अपनी रक्षा की याचना करते हैं तथा भविष्य में होने वाले भयंकर जलौघ की सूचना देते हैं तथा मनु की रक्षा करने का आश्वासन भी देते हैं। द्वितीय है मध्य मीन रूप - जिसका विकास तेजी से होता है, मनु पहले अपने कमण्डल में मछली को रखते हैं, फिर घड़े में, घड़े से तालाब, तालाब से नदी और अन्ततः समुद्र में छोड़ देते हैं। तृतीय रूप विशाल या महामत्स्य का है जो अपने विशालकाय रूप के कारण ही मनु की रक्षा उस प्रलय से कर सकी।

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन साहित्य में प्रजापति ही मत्स्यावतार के रूप में अधिक वर्णित हैं।[1]

कूर्मावतार और विष्णु :

कूर्म (कछुआ) अवतार का विष्णु के अवतारों में अपना महत्वपूर्ण स्थान है। मत्स्यावतार के पश्चात् ही कूर्मावतार का स्थान आता है। लेकिन इस अवतार में प्रायः किसी दैत्य का वध या पृथ्वी

---

1. विष्णु पुराण 1/4/7-8,
   -अवतार चरित्र मत्स्यावतार
   -मत्स्य पुराण 2/3-16
   -पद्मपुराण - उत्तरखण्ड 12/1

पद से अत्याचार का विनाश करने हेतु कूर्म रूप धारण नहीं करते हैं,बल्कि समुद्र मंथन के प्रसंग में मन्दराचल पर्वत के आधार हेतु कूर्म रूप धारण करते हैं।

समुद्र मन्थन की कथा महाकाव्यों एवं पुराणों में मिलती है जिसके अनुसार दैत्यों और देवों में युद्ध होता है और दैत्यों ने देवों के समस्त ऐश्वर्य समृद्धि एवं शक्ति को छीन कर उन्हें श्रीहीन कर दिया । सभी देवता भगवान विष्णु के पास गए और उनसे प्रार्थना की कि हे भगवान दैत्यों से हमारी रक्षा करें तथा हमारी छीनी हुई सम्पदा को वापस दिला दें । भगवान विष्णु ने देवों से कहा कि - तुम लोग समुद्र मंथन के लिए दैत्यों को मनाओ और समुद्र मन्थन करो । समुद्र मंथन करने से "अमृत" निकलेगा जिसे पीकर तुम सभी अमर हो जाओगे,तब तुम्हें किसी प्रकार का दैत्यों से भय नहीं होगा ।[1] भगवान विष्णु की बात सुनकर देवतागण प्रसन्न होकर बोले - ऐसा ही होगा भगवन' और सब वे प्रसन्न मन से लौट गए । तत्पश्चात् देवताओं ने दैत्यों को समुद्र मंथन के लिए तैयार कर लिया, दैत्यों को "अमृतपान" का लोभ दिया । दैत्य अमृतपान के लोभ को संवरण नहीं कर सके और समुद्र मंथन के लिए तैयार हो गए । समुद्र मंथन के लिए रस्सी का कार्य वासुकि नाग ने किया, जिसके सिर की ओर दैत्यगण और पूंछ की ओर देवगण थे । मथानी का कार्य मन्दराचल ने किया परन्तु बिना आधार के मन्दराचल समुद्र में डूबने लगा, तभी समय देवताओं ने भगवान

---

1. कूर्म पुराण 4/10-20,

विष्णु की स्तुति की और भगवान विष्णु कूर्म रूप धारण कर मन्दराचल के आधार बन गए। यह कूर्म रूप बतलाता विस्तार का जैसे एक जम्बूद्वीप भगवान विष्णु कूर्म के रूप में मन्दराचल के आधार बने और एक अंश से सागर तथा एक अंश से देवताओं में प्रवेश किया।

भागवत की तीनों सूक्तियों में कूर्मावतार का सम्बन्ध विष्णु से ही माना गया है, इसके अतिरिक्त "विष्णु पुराण" में स्पष्ट कहा गया है कि भगवान क्षीरसागर में कूर्म रूप धारण कर घूमते हुए मन्दराचल के आधार हुए।[1] क्षीरसागर में शेषशायी भगवान विष्णु ही माने गए हैं।

पद्म पुराण, अग्नि पुराण, मत्स्य पुराण, ब्रह्म पुराण आदि अन्य पुराणों में कूर्मावतार को विष्णु से सम्बन्धित माना गया है। कूर्मपुराण के अनुसार भी समुद्र मन्थन के समय मन्दराचल के आधार हेतु विष्णु कूर्म रूप धारण करते हैं।[2]

इस प्रकार बहुत से पुराणों एवं महाकाव्यों में भगवान विष्णु को ही कूर्मावतार रूप धारण करने वाला कहा गया है जिसका वर्णन संस्कृत, साहित्य के कवि क्षेमेन्द्र और जयदेव ने भी अपने ग्रन्थों में किया है।

---

1. विष्णु पुराण 1/9/88
2. विष्णु पुराण 1/4/7-8.

कूर्मावतार और प्रजापति :

वैदिक साहित्य में कूर्म का सम्बन्ध प्रजापति से ही बतलाया गया है, जबकि कूर्म और समुद्र मंथन का प्रारम्भिक सम्बन्ध नहीं दिखलाई देता है । "वाजसनेयि संहिता" के कुछ भाष्यकारों ने "शुक्ल यजुर्वेद" की कुछ ऋचाओं के आधार पर कूर्म का सम्बन्ध कश्यप, प्रजापति या सूर्य से बतलाया गया है । "शतपथ ब्राह्मण" में प्रजापति के कूर्म - रूप धारण करने का वर्णन बहुत ही रोचक ढंग से किया गया है । इसी के आधार पर जे० म्योर ने कहा है कि "प्रजापति ने कूर्म रूप धारणकर प्रजाओं की सृष्टि की । इनके मतानुसार "कश्यप" शब्द का अर्थ कूर्म होता है, अतः कश्यप को समस्त सृष्टि का जनक माना गया है और इन्हें भी कूर्म-प्रजापति, कश्यप या आदित्य कहा गया है ।[1]

तैत्तिरीय ब्राह्मण [3/292] में कहा गया है कि प्रारम्भ में जल में से कूर्म रूप से उत्पन्न होकर प्रजापति ने प्रजा की सृष्टि की

तैत्तिरीय आरण्यक [1/23/3] में भी कूर्मावतार को प्रजापति से ही सम्बन्धित माना गया है । इसमें कथा का वर्णन इस प्रकार किया गया है, यथा - एक बार प्रजापति के शरीर से रस कम्पायमान हुआ । जल के अन्दर कूर्म रूप धारण कर विचरण करते हुए देखकर प्रजापति ने कहा - हे कूर्म, तुम मेरी त्वचा तथा मांस से उत्पन्न हुए थे । कूर्म ने कहा, "नहीं, मैं तो यहाँ तुमसे भी पहले से स्थित था। इसलिए मेरी "पुरुष" ऐसी संज्ञा हुई । जिसका तात्पर्य है -पूर्वमासम्-

1. शतपथ ब्राह्मण 7/5/1.5- स यत् कूर्मो नाम एतद् वै रूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत ।

शेते पुरुषः" इस व्युत्पत्ति के अनुसार पहले से (पुरः) रहने वाला व्यक्ति "पुरुष" पदवाच्य होता है । कूर्म का स्वरूप "पुरुष सूक्त" के मन्त्रानुसार इस प्रकार वर्णित है - "सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्" अर्थात् उस कूर्म के हजार सिर, हजार आँखें और हजार पैर थे । इस रूप में वह कूर्म रूप में वह कूर्म पुरुष उठा ।[1] इस आरण्यक में कूर्म पुरुष को परमात्मा या प्रजापति का अवतार कहा गया है ।

इसी प्रकार विष्णु पुराण में भी कूर्म, मत्स्य, वराह के अवतार का सम्बन्ध प्रजापति से ही बताया गया है ।[2] किन्तु कुछ स्थलों में विष्णु को कूर्मावतार धारण करने वाला कहा गया है ।

अतः वैदिक साहित्य में कूर्मादि अवतारों का वर्णन प्रजापति से ही सम्बन्धित है । इस साहित्य में समुद्र मंथन आदि का वर्णन नहीं मिलता है । महाकाव्यों एवं पुराणों में समुद्र मंथन का वर्णन मिलता है, और समुद्रमंथन के समय कूर्मावतार ग्रहण करने वाला भगवान् का सम्बन्ध विष्णु से जोड़ा गया है । इस प्रकार कूर्मावतार के भी दो रूप पूर्ववर्ती और परवर्ती माने गए हैं, इनमें पूर्ववर्ती रूप में प्रजापति और परवर्ती रूप में भगवान् विष्णु को कूर्मावतार से सम्बन्धित किया गया है ।[3]

---

1. तैत्तिरीय आरण्यक 123/3
2. अग्नि पुराण 3 अध्याय
3. स यत् कूर्मो नाम एतद् वै रूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत । शतपथ ब्राह्मण 7/5/1/5.

कूर्मावतार के कार्य :

कूर्म अवतार के सम्बन्ध में वैदिक साहित्य से महाकाव्य तथा पुराणों तक विभिन्न कथाओं का वर्णन होता है। इस अवतार के दो मुख्य कार्य ही दृष्टिगोचर होते हैं, प्रथम वैदिक साहित्य में "शुक्ल यजुर्वेद" में कहा गया है कि प्रजापति कूर्मका रूप धारण कर सृष्टि का विकास करते हैं। जिसका वर्णन "वाजसनेयि संहिता" में भी किया गया है। "शतपथ ब्राह्मण" में भी प्रजा की सृष्टि करने के लिए ही प्रजापति कूर्म रूप धारण करते हैं।[1] इसी प्रकार जल में कूर्म रूप में उत्पन्न होकर प्रजापति ने प्रजा की सृष्टि की। जैमिनि ब्राह्मण में भी प्रजा की सृष्टि हेतु प्रजापति कूर्म रूप धारण करते हैं। इस प्रकार वैदिक साहित्य में कूर्म का प्रथम और प्रमुख कार्य प्रजा की सृष्टि का विकास करना ही माना गया है जिसका वर्णन विभिन्न ब्राह्मणों में स्पष्ट देखा जा सकता है।

कूर्मावतार का दूसरा प्रमुख कार्य महाकाव्यों एवं पुराणों में वर्णित है। समुद्र मंथन के महनीय कार्य के सम्पादन हेतु मन्दराचल को अपनी कठोर पीठ पर धारण करने के लिए भगवान कूर्म रूप धारण करते हैं।

"महाभारत" में समुद्र मन्थन का वर्णन किया गया है जिसमें समुद्र मंथन के समय समुद्र से अनुमति लेने के पश्चात देवताओं ने

---

1. स यत् कूर्मो नाम एतद् वै रूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत।
   शतपथ ब्राह्मण 7/5/1/5.

कूर्म से आग्रह किया कि मन्दराचल को अपने विशाल और कठोर पृष्ठ पर धारण करें । कूर्म के स्वीकार करने पर समुद्र मंथन करके चौदह रत्नोंसहित अमृत कलश प्राप्ति के कार्य को सम्पन्न किया गया । यहाँ पर यह स्पष्ट रूप से देखा गया है कि चौदह रत्नों एवं अमृत की प्राप्ति के लिए भी कूर्मावतार अनिवार्य था ।

इसी प्रकार "वाल्मीकि रामायण" में भी समुद्र मंथन का वर्णन है, इसमें कूर्मावतार का प्रमुख कार्य समुद्र मंथन को सफल बनाने से सम्बन्धित है । समुद्र मन्थन के समय पर्वत के पाताललोक में प्रवेश कर जाने पर भगवान् कूर्मावतार लेकर वहीं समुद्र में सो गए ।[1] विष्णुपुराण, कूर्म पुराण, अग्नि पुराण, पद्म पुराण, मत्स्य पुराण और ब्रह्म पुराण आदि पुराणों के अनुसार समुद्र मन्थन के समय भगवान् विष्णु कूर्म रूप धारण कर मथानी रूपी मन्दराचल के आधार हेतु कूर्म रूप धारण कर मन्दराचल को अपनी अक्षुण्ण पीठ पर धारण करते हैं । कूर्म रूप धारण कर भगवान ने समुद्र मन्थन का कार्य सुचारु रूप से परिपूर्ण कराया ।[2]

तैत्तिरीय आरण्यक में कूर्मावतार का एक मात्र कार्य है, प्रजा की सृष्टि का विकास करना । यहाँ वर्णन है कि एक बार प्रजापति के शरीर से रस उत्पन्नमान हुआ और वह जल के अन्दर कूर्मरूप में

---

1. वाल्मीकि रामायण 1/45/29.
2. विष्णु पुराण 1/9/88
   श्रीमद्भागवत 1/3/16
   वही 2/7/13
   वही 1/4/18.

विचरण करने लगा । यही कूर्म पुरुष कहलाया जिसके हजार सिर, हजार आँखें और तीन हजार पैर हैं । इसी कूर्म को आदिपुरुष कहा गया और इसी से सृष्टि का विकास भी माना गया ।[1]

अतः कूर्मावतार, अन्य अवतारों के समान किसी राक्षस वध या भूभार हरण के कार्य के लिए न होकर प्रजा की सृष्टि और अमृतकलश की प्राप्ति समुद्र मन्थनादि दो प्रमुख कार्यों के लिए प्रतीत होती है ।

<u>वराहावतार कथा एवं वराहावतार के कार्य :</u>

दशावतार परम्परा में वराहावतार का तीसरा स्थान है । वराह रूप में भगवान् के अवतार की कथा वैदिक साहित्य से ही प्रारम्भ होती है । वैदिक साहित्य के ऋग्वेद में वराह कथा विशेषकर "एमुष" वराह की कथा का विशद रूप मिलता है, वराहावतार कथा वैदिक साहित्य में प्रजापति से और महाकाव्य तथा पुराण काल में विष्णु से सम्बन्धित मानी गई है । भगवान विष्णु के अवतारों में पशु अवतार वराह का विशेष रूप से महत्वपूर्ण स्थान है । ऋग्वेद [1/61/7] में इन्द्र द्वारा वराह के वध की कथा मिलती है, इसके अनुसार "एमुष" नामक वराह को इन्द्र ने मारा था और इसी "एमुष वराह" से वराहावतार के बीज का अनुमान कर लिया गया है ।[2]

---

1. तैत्तिरीय आरण्यक 1/23/3.
2. ऋग्वेद संहिता 1/61/7 : 8/71/10.
   वही 10/86/4

ऋग्वेद में वराह वध की कथा प्राप्त होतीहै लेकिन पुराणों में वराहावतार की कथा दूसरे प्रकार से मिलती है,इसमें वराह के रूप में भगवान पृथ्वी का उद्धार करते हैं । पृथ्वी सूक्त वैदिक मन्त्र में वर्णित है कि "वायु को, पाप और पुण्य करने वाले के वध को सहने वाली, बड़े-बड़े पदार्थों को धारण करने वाली पृथ्वी वराह को प्राप्त हुई थी ।

तैत्तिरीय संहिता, तैत्तिरीय आरण्यक, तथा शतपथ ब्राह्मण में इस कथा का वर्णन निम्न प्रकार से वर्णित किया गया है । "पहले इस विश्व में जल ही जल था । प्रजापति वायु रूप होकर उस में विचरण करने लगा । वहाँ उसने पृथ्वी को देखा, तब वह वराह के रूप में उस पृथ्वी को खींच कर ऊपर लाये । उसने विश्वकर्मा का रूप धारण कर पृथ्वी का मल पोंछा और उस पृथ्वी का विस्तार किया, तभी से वह पृथ्वी (फैली हुई) इस नाम से विख्यात हुई ।[1] तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी वराहावतार की कथा कुछ इसी प्रकार प्राप्त होती है, इसमें कहा गया है कि इस विश्व में पहले जल ही जल था,पृथ्वी जलमग्न थी । इसी जल के ऊपर भगवान प्रजापति तपस्या किया करते थे,और सोचते थे कि सृष्टि का विकास किस प्रकार होगा । एक बार उन्होंने जल में एक कमल पुष्प को देखा । पुष्प को देखकर उन्होंने सोचा कि यह पुष्प जरूर किसी वस्तु पर आधारित होगा,यह सोचकर वराह रूप धारण कर जल में कमलपुष्प के ठीक नीचे उतरे , जल के अन्दर उन्होंने

---

1. तैत्तिरीय संहिता 7/1/5.1.

पृथ्वी को देखा और उसके एक खण्ड को तोड़कर ऊपर लाये और उसे फैलाया । इसी फैली हुई पृथ्वी पर उन्होंने सृष्टि का विकास किया।[1]

शतपथ ब्राह्मण में भी वराहावतार कथा का वर्णन किया गया है, इसमें कहा गया है कि पहले पृथ्वी का आकार ठीक एक कटोरी के समान था । एक "एमूष" नामक वराह ने उसे ऊपर उठाया, वह भगवान प्रजापति की पृथिवी के नाम से प्रसिद्ध हुई ।[2]

महाभारत के वन पर्व में वराहावतार कथा प्राप्त होती है । यहाँ इस कथा का सार इस प्रकार दिया गया है कि प्राणियों की अत्यधिक वृद्धि के कारण पृथ्वी भार को सहने में असमर्थ हो गयी और सैकड़ों योजन नीचे चली गयी । अपने इस भार-हरण हेतु पृथ्वीने भगवान् की स्तुति की । भगवान् विष्णु ने एकदन्त वराह का रूप धारण कर पृथ्वी को सौ योजन ऊपर उठा दिया । यहाँ उनके स्वरूप का वर्णन किया गया, उससे प्रतीत होता है कि यह स्वरूप महा वराह का है, क्योंकि उनके रूप में वर्णित लाल-लाल नेत्रों से भय उत्पन्न हो रहा था और अंगों से धूम प्रकट हो रहा था ।[3]

महाभारत के ही "शान्तिपर्व" में कथा इस प्रकार है- पहले पृथ्वी पर जल ही जल था या यह पृथ्वी जलमग्न थी । इसको भगवान् विष्णु ने वराह का रूप धारण कर ऊपर उठाया । जल और

---

1. तैत्तिरीय ब्राह्मण 1/1/6.
2. शतपथ ब्राह्मण 14-2/11
3. महाभारत 3/142/39-40.
   वही 3/142/45.

रोमकूप में भगवान् का समस्त शरीर भरा हुआ देखा और भगवान जगत के कल्याण हेतु सदैव तत्पर रहते हैं, ऐसे विष्णु भगवान ने पृथ्वी को पुनः उसके स्थान पर स्थापित करके अपनी दाढ़ में लगे तीन पिण्डों को कुश पर रख दिया। इस प्रकार पितरों के पिण्डदान का प्रारम्भ भी इसी वराहावतार कथा से प्रारम्भ होता है। "वाल्मीकि रामायण" विष्णु पुराण आदि में भी वराहावतार कथा का वर्णन प्राप्त होता है।[1]

श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध के 13वें अध्याय में वराहावतार कथा का बड़ा ही रोचक एवं आकर्षक वर्णन उपलब्ध होता है। इस कथा में "यज्ञवराह" का वर्णन किया गया है, यह वराह के स्वरूप का चित्रण- यज्ञ में प्रयुक्त समस्त तत्त्वों को प्रतीक रूप में मान कर चित्रित किया गया है। इसकी कथा इस प्रकार है - जलमग्न पृथ्वी को प्रजापति ने वराह रूप में अवतार धारण कर पाताल लोक से ऊपर खींचकर उद्धार किया। इसी सम्बन्ध में एक स्थान पर कथा इस प्रकार है कि रसातल में डूबी हुई पृथ्वी को बाहर निकालने के लिए ब्रह्मा जी सोच रहे थे, तब तक उसी समय ब्रह्मा जी के नासाछिद्र से अचानक अंगूठे के बराबर एक वराह शिशु निकला जिसने हिरण्याक्ष का वध करके अपने दाँत की नोक पर पृथ्वी को बाहर निकाला।[2]

इस प्रकार वैदिक साहित्य और पुराणकाल में उपलब्ध दो प्रकार की कथाओं में भूमि से सम्बद्ध और यज्ञ वराह से सम्बद्ध कथा

---

1. महाभारत 3/142/46.
2. श्रीमद्भागवत 3/13.

का स्वतन्त्र विकास स्पष्ट प्रतीत होता है । इसके अतिरिक्त सृष्टि विकास और हिरण्याक्ष वध की कथाएं भी ग्रन्थों में पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं ।

उपर्युक्त कथाओं से वाराहावतार के प्रमुख कार्यों की जानकारी भी प्राप्त होती है । वाराहावतार का सबसे प्रथम कार्य तो जन कल्याण है क्योंकि भगवान का अवतार ही सृष्टि के प्राणियों के कल्याणार्थ होता है, अतः वराह रूप में अवतार लेकर भगवान सृष्टि का विकास और कल्याण करते हैं । जल में निमग्न पृथ्वी को बाहर निकालकर प्राणियों का पुनः विकास करते हैं, प्रजा की सृष्टि करते हैं। इसी लिए कहीं-कहीं वाराहावतार को मत्स्यावतार के स्थान पर प्रथम अवतार माना गया है क्योंकि समस्त सृष्टि का विकास जिस पृथ्वी पर होता है, उसी का उद्धार करने वाले अवतार को ही प्रथम स्थान माना जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी ।

इसके पश्चात् यज्ञवराह के रूप में असुरों से धन छीनने का तथा हिरण्याक्ष वध का कार्य भी इस अवतार के प्रयोजन है । श्रीमद्-भागवत तथा अन्य अनेक पुराणों में वाराहावतार कथा और प्रयोजन प्राप्त है ।[1]

---

1. श्रीमद्भागवत 1/3/7.
   वही 2/7/1
   वही 3/13.

प्रारंभिक अवतारों के स्वरूप :

पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने सृष्टि क्रम में मानव जाति के विकास के सम्बन्ध में जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, उसे विकासवाद का सिद्धान्त कहते हैं और इसके प्रवर्तक डार्विन महोदय हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार उनका कथन है कि सृष्टि का आरम्भ छोटे-छोटे जीव जन्तुओं से होता है और इसके बाद धीरे-धीरे स्थूल और दीर्घ शरीर वाले प्राणियों की सृष्टि होती है, प्रारम्भिक काल में जन्तु बुद्धिहीन थे, किन्तु विकास के इस क्रम में उनमें उत्तरोत्तर शनैः शनैः बुद्धि तत्व का विकास भी लक्षित होने लगा। इस प्रकार मानवशास्त्र की तरह अवतारवादी धारणा में भी विकासवादी प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं। यदि उसका क्रमबद्ध अनुशीलन परीक्षण किया जाय तो उससे एक स्वतन्त्र अवतारवादी क्रम से विकसित मानव सभ्यता के विकास क्रम का पता चलता है।[1] पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने जिस विकासवाद मानव सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, उसका स्थूल रूप पुराणों में वर्णित अवतारक्रम से बहुत कुछ मिलता जुलता है। यद्यपि पुराणों की प्रतिपादन शैली रूपकात्मक है, इसलिए इस बात पर सहसा विश्वास नहीं होता किन्तु यदि रूपकों का आवरण दूर कर दिया जाये तो सन्देह मिट जाता है। पाश्चात्य वैज्ञानिकों के मत से आजकल "नर" प्रागैतिहासिक युग के "वा - नर" का विकास है। इसी प्रकार वानर

---

1. पुराण विमर्श - बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ-177.

भी किसी अपेक्षाकृत कम विकास प्राणी का विकास रहा होगा । इसका सार यही यह है कि चौरासी लाख पशु पक्षी सर्प आदि योनिवार प्राणी के क्रमिक विकास के सोपान हैं । विकासवाद की यह वैज्ञानिक कल्पना भारतीय ज्ञान क्षेत्र के लिए नवीन नहीं है । पुराणों का उपर्युक्त अवतार निरूपण भी इसी विकास का आलंकारिक वर्णन है । पुराणों में वर्णित अवतारों के क्रम में सर्वप्रथम हमारे सम्मुख मत्स्यावतार उपस्थित होता है । इसका तात्पर्य यह है कि सृष्टि क्रम के लागू होने पर जिन प्राणियों की सृष्टि होती है, उनमें मत्स्य एक स्थूल मापदण्ड है । यद्यपि मत्स्य से भी छोटे अनेक जीव आदि हैं किन्तु मानव के विकास में प्राणियों की मुख्य धाराओं में मत्स्यावतार प्रतिनिधि रूप से प्रथम है । जल की सृष्टि में क्रमशः परिवर्तन हुआ और परिणामस्वरूप जैसे - जैसे जल भाग सूखता गया और स्थल भाग ऊपर आता गया, वैसे-वैसे मत्स्य का विकास कच्छप में हुआ, क्योंकि आधे जल और आधे स्थलीय प्रदेश में कच्छप अधिक सफलता से रह सकता है । इसलिए कच्छपावतार विकास की द्वितीय दशा है । इसके बाद जब स्थल भाग का अधिक विस्तार हो गया और जंगल हो गए तो जंगली पशुओं के प्रतिनिधि स्वरूप वराहावतार का विकास हुआ । जंगल का शक्ति सम्पन्न शरीर वाला यह वराह मानव के क्रमिक विकास में उस दशा का प्रतिनिधि है, जब केवल शारीरिक बल ही सब कुछ माना जाता था । यह वराहावतार मानव विकास की दशा का तीसरा सोपान है । इसके बाद धीरे-धीरे क्रमशः पशु का अर्द्ध-

मानव में विकास हुआ । शारीरिक अंगों में केवल बल के अलावा चंचलता कार्य करने की क्षमता आदि गुण प्रकट होने लगे । नृसिंहावतार में हमें ये गुण दिखाई देते हैं । नीचे को मुख करने वाला चतुष्पाद पशु अब द्विपाद होकर ऊर्ध्वमुख होता है । नृसिंह जो आधा पशु और आधा नर है । इसमें पशुता और मनुष्यता दोनों का मिश्रण पाया जाता है, इसके कार्य भी अब अधिक भयंकर हैं नरसिंह के द्वारा हिरण्यकशिपु के वध से दुष्ट दमन की बात सामने आती है. इसलिए सत्य और असत्य विवेक का उदय भी अर्धमानव नृसिंह में दिखाई देता है । इस प्रकार नृसिंहावतार मानव के विकासक्रम में चतुर्थ सोपान है । नृसिंह के बाद वामन का अवतार होता है, यह पूर्ण रूप से मानव का अवतार है, किन्तु यह शरीर से छोटा अर्थात् बौना होता है या बौना रूप मानव का प्रथम रूप है, जहाँ से वह आगे बढ़ता है. वामनावतार में मानव की चतुरता तथा दूरदर्शिता भी दिखाई देती है, इसी की पूर्ति के लिए नृसिंह वामन बन गया । चतुरता, चालाकी और दूरदर्शिता के बल पर लघु काय और दुर्बल मानव किस प्रकार विकराल दानवको नीचा दिखा सकता है, इसका सुन्दर उदाहरण बलि और वामन की कथा है । इस प्रकार वामनावतार मानव विकास का पंचम सोपान है, जिसमें बुद्धि बल का महत्व दिखाई देता है किन्तु केवल बुद्धि बल से ही काम नहीं चलता, उसके साथ पर्याप्त शारीरिक बल का होना भी आवश्यक है । इसकी पूर्ति के लिए परशुराम का अवतार होता है । परशुराम के अवतार में बुद्धि और शारीरिक बल का समन्वय पाया

जाता है। उन्होंने अपने बुद्धि बल तथा शारीरिक बल से सम्पूर्ण पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर ली थी, इस प्रकार परशुराम का अवतार मानव के विकास का षष्ठ सोपान है किन्तु परशुराम के अवतार में मानव के उदात्त गुणों की कमी थी। वे गुण राम के अवतार में विकसित होते हैं। रामावतार में मानव के जीवन की समग्र मर्यादाओं का विकास होता है। रामावतार में मानव बुद्धि और शारीरिक बल के साथ-साथ आज्ञापरायणता, त्यागभाव, सदाचरण, अनुकम्पा, मर्यादाओं का पालन, आदर्श पिता, आदर्श पुत्र और आदर्श राजा इत्यादि अनेक मानवोचित उदात्त गुणों से पूर्ण है। इसी से राम को मर्यादापुरुषोत्तम कहा जाता है। इस प्रकार रामावतार में हमें मानव के विकास का सप्तम सोपान दिखाई देता है किन्तु फिरभी राम का मानवत्व कुछ अंशों में अपूर्ण है। क्योंकि राम में ललितकलाओं, नृत्यकला और संगीत कला इत्यादि में रुचि का अभाव है। इन गुणों का विकास मानव विकास के अष्टम सोपान कृष्णावतार में दिखाई पड़ते हैं। ललित कलायें नृत्य संगीतादि श्रीकृष्ण को पाकर धन्य हो जाती हैं। मुरली-धर श्रीकृष्ण का ललितकला प्रेम और अर्जुन के सारथी श्रीकृष्ण की राज-नीतिक चतुराई सर्वविदित है, इतना ही नहीं योगेश्वर श्रीकृष्ण ने "गीता" में जिस उच्च जीवन दर्शन का उपदेश दिया है, शरीर की नश्वरता बताकर आत्मतत्व की अमरता और अमरता प्रदान की है, उसका महत्व विश्व विदित है, इसीलिए कृष्ण को अंशावतार न कहकर पूर्णावतार कहा जाता है।

राजनीति में छल और कपट का भी संयोग रहता है और उसमें कभी - कभी चालाकी और बल आदि का प्रयोग किया जाता है और कृपा का स्थान नहीं रहता । कृपा का यह गुण बुद्धावतार से विकसित होता है । बुद्धावतार विकासक्रम का महत्वपूर्ण सोपान है । बुद्धावतार कृपा से बतलाया गया है कि वह शत्रु पर बल का प्रयोग नहीं करता प्रत्युत कृपा, करुणा तथा मैत्री द्वारा उसे अपने वश में करने में सफल होता है किन्तु मात्र कृपा का प्रयोग प्राणियों की सम्पूर्ण समस्याओं का समाधान नहीं करता । दुर्जन और उद्दण्ड प्राणी कृपा और करुणा से परास्त नहीं होते । दुष्ट दमन के लिए हिंसाकी आवश्यकता होती है । उद्दण्ड लोग करुणा से शान्त नहीं होते जिस प्रकार शठ से विनय और कुटिल लोगों से प्रीति तथा कृपण लोगों के साथ सुन्दर उदार नीति के प्रयोग निष्फल होते हैं, उसी प्रकार दुर्जन, दुष्ट और उद्दण्ड प्रकृति के लोग कृपा और करुणा से शान्त नहीं होते । अतएव दुष्ट दमन हेतु कल्कि का अवतार हमारे सामने आता है जो हर प्रकार से दुष्टों का दमन कर सत्ययुग के आदर्शों को उपस्थित करता है ।[1]

इस प्रकार उक्त संक्षिप्त विश्लेषण से यह प्रतीत होता है कि अवतारवाद विकासवाद के वैज्ञानिक तथ्यों के अनुसार पूर्णरूप से

---

1. सारस्वत सर्वस्व, पृष्ठ 199-200, प्रो० पं० सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी, व्याख्यान माला, मानस की पत्रिका, सितम्बर 1945 में प्रकाशित.

खरा उतरता है । पाश्चात्य विद्वानों को बाद में विदित यह विकास वाद का सिद्धान्त हमारे देश भारत वर्ष में अति प्राचीन काल में ही विवेचित किया गया था ।

अवतारों में प्रतीक योजना :

प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मनुष्य का स्वभाव है । प्रारम्भ काल से ही वह विभिन्न क्रियाओं, ध्वनियों, उच्चारणों तथा अपने मानसिक भावों तथा कामनाओं को प्रतीकात्मक भाषा द्वारा व्यक्त करने की चेष्टा करता रहा है । प्रतीक में समस्त अर्थवत्ता ध्वनीभूत हो जाती है । मानव सभी मूर्त या अमूर्त विषयों का आविष्कार प्रतीकों के द्वारा करता रहा है । ये प्रतीक अनेक विध होते हैं, उदाहरणार्थ - शब्द प्रतीक, भाव प्रतीक स्वप्न प्रतीक, कला प्रतीक तथा पुराण प्रतीक इत्यादि ।[1]

पुराण प्रतीक एक प्रकार से मूल प्रतीक है, जो प्रारम्भ से ही मानव जाति की बुद्धि और चेतना में समाए हुए हैं । अवतार-वादी परम्परा के प्रतीक जीव, अभिव्यक्ति के प्रतिनिधि प्रतीत होते हैं। मत्स्य अपने लघु रूप से क्रमशः बढ़ते - बढ़ते जब वह विशाल रूप में विकसित हो जाता है तो उसमें मत्स्य, कूर्म और मत्स्य युग दोनों की विशेषताएं ध्वनित होती हैं । इसी प्रकार कूर्म भी मत्स्य युग और सरीसृप युग के बीच का प्रतिनिधि प्रतीक होता है क्योंकि उसमें दोनों युगों की विशे-

---

1. डी कोश, प्रतीकवाद,

जाते हैं । इसी प्रकार वराह में सरीसृप युग की अन्तिम अवस्था तथा वराह के गुणों का मिश्रण होने से दोनों अवस्थाओं का मिश्रित प्रतीक प्रतीत होता है । इसी प्रकार नृसिंह में अर्ध पशु और अर्ध मानव का प्रतीक प्रतीत होता है । वामन उस युग का प्रतीक होता है, जब प्राणियों का पशुता से मनुष्यता की ओर विकास हो रहा था, यह लघु मानव वामन बुद्धि बल और पराक्रम का प्रतीक प्रतीत होता है । इस प्रकार अवतारवाद को प्रतीक योजनाओं के माध्यम से भी समझा जा सकता है । हमारे देश में सुदूर प्राचीन काल में विषयवस्तु को समझाने या उसका कथन करने के लिए प्रतीकों की भी सहायता ली जाती थी । ये प्रतीक अनेक विध होते थे और इनमें अनेक अर्थ और शक्ति समाए रहते थे ।
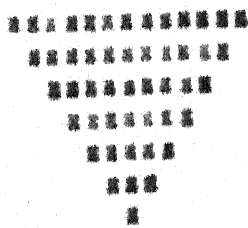
xxxxxxxxxxxxx
xxxxxxxxxxx
xxxxxxxxx
xxxxxxx
xxxxx
xxx
x

पंचम अध्याय

कहानीकार और उपन्यासकार कथावस्तु

पंचम - अध्याय

नृसिंहावतार कथावस्तु

"वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि तन्नो नरसिंहः प्रचोदयात्" तैत्तिरीय आरण्यक के प्रपाठक 10 के प्रथम अनुवाक की इस गायत्री में नरसिंह अवतार का वर्णन किया गया है जिसमें नृसिंह के भयंकर रूप को दिखाया गया है, उनके "वज्रनख" और तीक्ष्ण दंष्ट्र" उनकी शक्ति एवं भयंकरता का बोध कराती है। श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कन्ध के अष्टम अध्याय में नृसिंह के भयंकर बड़ा मण्डित रूप का वर्णन किया गया है।[1] जिसमें उनके तीक्ष्ण दंष्ट्र और वज्रनखों का वर्णन भी हमें प्राप्त होता है, जिस समय हिरण्यकशिपु सोचने में व्यस्त था, उसी समय उसके बिल्कुल सामने ही नृसिंह भगवान खड़े हो गए। उनका रूप अत्यन्त भयानक था। तपाये गए स्वर्ण के समान पीली भयानक आँखें और जम्हाई लेने से गरदन के बाल बिखरे हुए थे। दाढ़ें बड़ी विकराल थीं। तलवार

---

1. मीमांसमानस्य समुत्थितोऽग्रतो, नृसिंहरूपस्तदलं भयानकम् ।
   प्रतप्त चामीकर चण्डलोचनं,
   स्फुरत् सटाकेशर जृम्भिताननम् ॥ 20
   करालदंष्ट्रं करवाल चंचल -
   क्षुरान्तजिह्वं भ्रुकुटीमुखोल्बणम् ।
   स्तब्धोर्ध्वकर्णं गिरि कन्दराद्भुत -
   व्यात्तास्यनासं हनुभेदभीषणम् ॥ 21 ॥
   श्रीमद्भागवत पुराण सप्तम स्कन्ध, अष्टम अध्याय ,श्लोक 7/8/20,21

की तरह लपलपाती छुरी की धार के समान पैनी जीभ थी। टेढ़ी भौंहें से उनका मुख और भी भयानक हो रहा था। उनके निश्चल खड़े कान, फूली नासिका और खुला हुआ मुख पहाड़ की गुफा के समान अत्यन्त अद्भुत जान पड़ता था। फटे हुए जबड़ों से उनकी भयंकरता बहुत बढ़ गयी थी।

वैदिक साहित्य में तो नृसिंह शब्द पुरुषसिंह अर्थात् किसी पुरुष विशेष की शक्ति एवं पराक्रम या बल का द्योतक माना गया है। इसमें साधारणतः देवताओं के बल एवं शौर्य की अभिव्यक्ति हेतु सिंह, व्याघ्र आदि पशुओं की शक्ति की तुलना की गई है। भगवान विष्णु के विशेषण के रूप में "नरव्याघ्र" शब्द का प्रयोग ऋग्वेद संहिता, नृसिंह-तापनीय, शतपथ ब्राह्मण एवं महाभारत में भी वर्णित है।[1] विष्णु पुराण में भगवान् विष्णु भक्त प्रह्लाद की रक्षार्थ अवतार धारण करते हैं।[2]

---

1 (अ) ऋग्वेद संहिता 1·154,2 एवं 4

(ब) नृसिंह तापनीय उप० 2.4

(स) स एष पुरुष व्याघ्र पीतवासा जनार्दनः ।
महाभारत 3/188/18

(द) शतपथ ब्राह्मण 13/2/4.2.

2. विष्णु पुराण 1/16-20.

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक साहित्य में नृसिंहावतार के सम्बन्ध में विशेष कुछ नहीं प्राप्त होता है, परन्तु पुराणों एवं महाभारत में "नारायणीयोपाख्यान" के पश्चात् नृसिंहावतार की कथा - विस्तार से दी गयी है । कुछ अन्तर के साथ सभी पुराणों की कथा इसी प्रकार है, यथा "दैत्य राज हिरण्याक्ष के वध के पश्चात् उसका पुत्र हिरण्यकशिपु राज सिंहासन पर बैठा । हिरण्यकशिपु अपने पिता से भी अधिक शक्तिशाली पराक्रमी और क्रूर था । उसके अत्याचारों से प्रजा पीड़ित थी, वह देवताओं का महान शत्रु था । भगवान् विष्णु को वह अपना सबसे बड़ा शत्रु मानता था, इसी लिए भगवान विष्णु की प्रसिद्धि उसे असहनीय थी । हिरण्यकशिपु ने कठोर तपस्या करके भगवान ब्रह्मा से वरदान प्राप्त किया था कि मैं ब्रह्मा द्वारा निर्मित मनुष्य, पशु, प्राणधारी, अप्राणी देवता, दैत्य, नाग तथा गन्धर्वादि से अवध्य होऊँ, और भीतर, बाहर, दिन या रात, अस्त्र या शस्त्र, पृथ्वी या आकाश आदि में मेरी मृत्यु न हो ।" इसी वरदान के कारण अभिमान से चूर होकर वह देवताओं को तुच्छ समझकर अपमानित करता था । प्रजा पर अनेक प्रकार के अत्याचार होते थे, उसके अत्याचारों से पृथ्वी विकल हो गयी थी । अधर्म की प्रगति और धर्म का नाश हो रहा था । साधु सज्जनों की तपस्या में विघ्न डाला जाता था । इस प्रकार से उस अत्याचारी दैत्य के राज्य में प्रजा त्राहि-त्राहि करती थी । दैत्य-राज हिरण्यकशिपु जितना ही विष्णु विरोधी था, उसका पुत्र प्रह्लाद भगवान विष्णु का उतना ही अनन्य भक्त था । वह समस्त सृष्टि का

निरन्तर भगवान् विष्णु को ही मानता था । एक बार उनकी प्रशंसा सुनने की कामना से दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र प्रह्लाद को अपने पास बुलाकर उससे कुछ सुनाने को कहा । भक्त प्रह्लाद भगवान् विष्णु की स्तुति गाने लगा ।[1] इस स्तुति को सुनकर क्रोध से विह्वल होकर हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को अपमानित किया और उससे बोला जिस विष्णु को तुम सर्वव्यापी कहते हो, वह विष्णु सामने स्थित इस स्तम्भ में भी है ? भक्त प्रह्लाद ने कहा - अवश्य, वह भगवान् विष्णु तो कण-कण में सर्वत्र विराजमान है । ऐसा सुनते ही क्रोध से विक्षुब्ध होते हुए हिरण्यकशिपु ने सामने स्थित स्तम्भ पर पादाघात किया । हिरण्यकशिपु के पादाघात करते ही भग्न स्तम्भ से नरसिंह रूपधारी भगवान् विष्णु प्रकट हुए और अपने भक्त की रक्षा तथा अत्याचारों के भार से दबी दुःखी पृथ्वी के उद्धार के लिए हिरण्यकशिपु को अपनी जाँघों पर रखकर अपने तीक्ष्ण नाखूनों से उसका पेट फाड़कर वध कर दिया । अचानक स्तम्भ से प्रकट हुए नृसिंहावतारी भगवान् को देखकर तथा दैत्यराज हिरण्यकशिपु के वध को देखकर सभी भयभीत दैत्यों ने भगवान् की शरण

---

1. प्रह्लादानूच्यतां तात स्वधीतं किञ्चिदुत्तमम् ।
कालेनैतावतायुष्मन् यदशिक्षद् गुरोर्भवान् ॥
श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्य
मात्मनिवेदनम्,
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा,
क्रियेत भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥
श्रीमद्भागवत, पुराण, सप्तम स्कन्ध, श्लोक 22-27.

में जाना ही कल्याणकारी होगा । भगवान् नृसिंह ने भक्त प्रह्लाद का राज्याभिषेक किया, तत्पश्चात् वर माँगने के लिए भक्त प्रह्लाद से कहा ।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान् अपने भक्त की रक्षा के लिए अपने दिए हुए वरदान के अनुरूप ही नृसिंहावतार धारण करते हैं ।

नृसिंहावतार के कार्य प्रयोजन :

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् अपने भक्तों की रक्षा के लिए विभिन्न रूपों में अवतरित होते हैं । नृसिंहावतार में भगवान् विष्णु का प्रमुख कार्य यही है कि वह पृथ्वी से दुष्ट, अत्याचारी अभिमानी दैत्यों का वध करके जन कल्याण करें, प्रजा की रक्षा करें एवं धर्म की स्थापना करें ।

नृसिंह रूप में भगवान् हिरण्यकशिपु का वध करते हैं, परन्तु उनको दिए हुए वरदान की रक्षा भी करते हैं, इसीलिए उन्हें आधा नर एवं आधा पशु का रूप धारण करना पड़ता है । हिरण्यकशिपु, क्योंकि शस्त्र या अस्त्र से नहीं मारा जा सकता था, इसलिए भी सिंह

---

1. प्रह्लाद भद्र भद्रं ते प्रीतोऽहं तेऽसुरोत्तम ।
   वरं वृणीष्वाभिमतं कामपूरोऽस्म्यहं नृणाम् ॥
   मामप्रीणत आयुष्मन्दर्शनं दुर्लभं हि मे ।
   दृष्ट्वा मां न पुनर्जन्तुरात्मानं तप्तुमर्हति ॥
   प्रीणन्ति ह्यथ मां धीराः सर्वभावेन साधवः ।
   श्रेयस्कामा महाभागाः सर्वासामाशिषां पतिम् ॥

का रूप धारण करना अति आवश्यक था अन्यथा भगवान् अपने कार्य में सफल नहीं हो पाते । सिंह के तीक्ष्ण एवं नाखूनों के कारण ही हिरण्य-कशिपु का वध करते हैं । पृथ्वी या आकाश में मृत्यु न हो इस कारण वह आधा नर रूप धारण करते हैं ताकि दैत्यराज को न ही पृथ्वी, न ही आकाश में मारकर बल्कि अपनी शक्तिशाली जंघाओं पर रखकर मारते हैं । सन्ध्यासमय उपयुक्त है, इसीलिए सन्ध्या समय ही अवतार ग्रहण करते हैं, इसके अतिरिक्त वह खम्भे में निवास करते हैं और पदाघात जैसे अपराध की चरम स्थिति पर प्रकट होकर उसका वध कर देते हैं । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भगवान अपने कार्य को सफल बनाने के लिए कोई भी रूप धारण कर लेते हैं । भगवान् तो सदैव ही धर्म की स्थापना हेतु, अधर्म के विनाश के लिए तथा साधुओं, स्त्रियों एवं गौ की रक्षा के लिए ही अवतार ग्रहण करते हैं । नृसिंहावतार में भी भगवान् का पशु - मानव रूप धारण करने का प्रमुख प्रयोजन यही था । जब वरदान प्राप्ति के अभिमान से चूर होकर शक्तिशाली दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने पृथ्वी को अत्याचारों और पापों से इतना भारी बना दिया कि पृथ्वी उसका बोझ सहन करने में असमर्थ हो गयी, धर्म का पराभव होने लगा, प्रजा में भगवान की भक्ति या स्तुति करना भी दण्डनीय हो गया, भक्त प्रह्लाद के जीवन पर संकटों के घने काले बादल मँडराने लगे तब भगवान ने नृसिंह रूप धारण कर पृथ्वी को अत्याचारों और पापों से मुक्त किया, धर्म की स्थापना और अधर्म का नाश करके भक्त प्रह्लाद की रक्षा की और उन्हें राजसिंहासन पर आसीन कराया।

इस अवतार का प्रयोजन भी गीता में कथित प्रयोजन के अनुसार ही है ।[1]

दशावतार में मत्स्य का समावेश :

सृष्टि का प्रारम्भ जलीय जीवों से होता है क्योंकि ऐसा माना जाता है कि पहले पृथ्वी पर सर्वत्र जल ही जल था, इसलिए जलीय जीवों में भगवान् सर्वप्रथम मत्स्य रूप में अवतार ग्रहण करते हैं । जलीय जीव के रूप में मत्स्य का सर्वप्रथम विकास होता है । तत्पश्चात् पृथ्वी के एक भाग से जल सूखने लगा और पृथ्वी पर जलीय जीवों के अतिरिक्त जल और थल में विचरण करने वाले जीवों का विकास प्रारम्भ हुआ जिनमें कच्छप को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है जो जल और थल दोनों में एक समान रूप से निवास कर सकता है, इसीलिए भगवान् के द्वितीय अवतार के रूप में कच्छपावतार स्वीकारा जाता है । इसके बाद पृथ्वी का अधिक भाग जल विहीन होने पर स्थलीय जीव के रूप में स्थलीय जीवों या पशुओं का विकास होता है जिनमें जलीय - जल - थल जीवों से अधिक शक्ति होती है और जो अपने भोजन या अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अपने मुख एवं दांतों का प्रयोग करते हैं तथा आक्रमण करके अपने दांतों से [illegible] जीत जाते हैं, इस प्रकार के पशुओं में वराह का विशिष्ट

---

1. परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
   धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥
   श्रीमद्भगवद् गीता 4/7-8.

स्थान है और यही तीसरा अवतार वराहावतार भी माना जाता है ।
+अभी तक के विकसित स्थान है और यही तीसरा अवतार वराहावतार भी माना जाता है । अभी तक के विकसित पशुओं में केवल दाँतों के द्वारा ही आक्रमण आदि कार्य दिखलाये गए हैं परन्तु जैसे-जैसे जीव का विकास होता गया । वैसे ही वैसे उसमें शक्ति का विकास भी अधिक होता गया । अब पशु रूप से मनुष्य रूप में विकसित होता हुआ जीव आधा मनुष्य और आधा पशु रूप में दृष्टिगोचर होने लगता है, उसमें केवल मुख और दाँतों की सहायता से कार्य करने की क्षमता ही नहीं रहती, प्रत्युत वह अपने चार पैरों में दो पैरों से चलने तथा दो पैरों से किसी वस्तु को पकड़ने, आक्रमण करने आदि के कार्य भी करने लगता है । अभी तक वह चारों पैरों की सहायता के बिना चल नहीं सकता था परन्तु पशुता से मनुष्यता की ओर विकास होने पर वह दो पैरों से चल सकता है और दो पैरों से अन्य कार्य कर सकता है, इसी अवस्था को नरसिंहावतार के रूप में ग्रहण किया गया है । इस अवतार में मानव विकास की गति की ओर संकेत किया गया है कि किस प्रकार जीव विकसित होते हुए मनुष्य रूप में परिवर्तित होता गया । नृसिंह के रूप में अभी जीव पूर्ण मानव नहीं बन पाया है, उसमें अभी तक पशु प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई देती है परन्तु मनुष्य का भी उसमें समावेश होने लगता है, वह पहले की अपेक्षा अधिक कौशल से अपना कार्य करता है, आक्रमण करता है तो वह पूरे शरीर - चारों पैर दो पैरों से चलकर, दो पैरों से पकड़कर पंजों, नाखूनों तथा दाँतों से अपना कार्य सफल

करता है । नरसिंह रूप में पशु और मानव की सभ्यता के मध्य भाग का वर्णन किया गया है, इस रूप को देखकर पता चल जाता है कि किस प्रकार शनैः शनैः जीव का विकास होते-होते मनुष्य रूप में परिवर्तित होता है ।[1]

इस प्रकार नृसिंहावतार कथा में यह स्पष्ट हो जाता है कि पशु और मानव के सन्धि युग की यह कथा है, जब पशुता मनुष्यता में तेजी से विकसित हो रही थी । पशु में नरत्व का शनैः शनैः समावेश हो रहा था, इसका उदाहरण कथा के उस समय से भी कितना साम्य रखता है जब हिरण्यकशिपु का वध नृसिंह भगवान् दिन और रात के मध्य संध्या में, भीतर-बाहर के मध्य चौखट पर करते हैं ।[2] इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि पशुता से विकसित होता हुआ जीव मनुष्यता की ओर बढ़ता है विकास के इस मध्यकाल का इस कथा में सटीक वर्णन किया गया है ।

वामनावतार कथावस्तु :

"इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य पांसुरे"

---

1. जीवन-विकास पृ० 198,199.
2. सन्ध्याकाले महातेजाः प्रभवे च स्वराऽन्वितः ।
   ऊरौ निधाय दैत्येन्द्रं निर्बिभेद नखैस्तथा ॥
   महाभारत, सभापर्व, अ० 38.20,
- दशावतार चरित्र, नृसिंहावतार 5
- गीत गोविन्दम् 1.4,

ऋग्वेद के इस मन्त्र से भगवान् वामन के अलौकिक स्वरूप का दर्शन हमें होता है जिन्होंने अपने तीन पगों से समस्त जगत् को आक्रान्त कर दिया और उनके धूलि - धूसर (पांसुरे) पद में यह भूमि आदि समस्त लोक अन्तर्हित हो गए।[1]

भगवान् विष्णु के (वामनावतार में) तीन पदविक्षेप का वर्णन "ऋग्वेद संहिता" में कई स्थानों पर मिलता है। इन ऋचाओं के अनुसार तीनों उन्हीं द्वारा वह विविध प्रकार के "पराक्रम" करते हैं, इसलिए उन्हें "त्रिविक्रम" या "उरुक्रम" आदि नामों से विभूषित किया गया है। भगवान् विष्णु इस समस्त सृष्टि की रक्षा करने वाले हैं।[2] वे ही समस्त धर्मों को धारण करते हैं और तीन ही पगों से समस्त जगत् की परिक्रमा करने वाले हैं।[3] और वे ही गोपवेशधारी भगवान् हैं। भगवान् विष्णु ने अकेले ही तीनों लोकों को धारण किया है और उन्हीं के द्वारा तीन लोकों को तीन पगों में मापा गया है।[4]

---

1. ऋग्वेद, प्रथममण्डल, सूक्त 22/17.
2. अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्तधामभिः
   ऋग्वेद 1/22/16.
3. त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः अतो धर्माणि धारयन्।
   ऋग्वेद 1/22/18.
4. विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
   यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः॥
   प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
   यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा,
   प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे।
   य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित् पदेभिः,
   यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।
   ऋग्वेद मण्डल प्रथम, सूक्त 154, मन्त्र 1.2.3.

भगवान विष्णु के सर्वोच्च पद को "गोलोक" नाम से जाना जाता है । ऋग्वेद के एक मन्त्र में इस सम्बन्ध में कहा गया है कि विष्णु के लोक में जाने की सदा कामना हम करते हैं, जहाँ बहुत सी सींगों वाली तथा चंचल गायें निवास करती हैं । गायों के संचार के कारण ही इसे "गोलोक" कहा जाता है । वैदिक मन्त्रों में विष्णु को सौर देवता तथा गो को किरणें कहा जाता है ।[1]

ऋग्वेद में वर्णित पदक्रम का भाव भाष्यकार सायण ने विष्णु के (वामनावतार) के तीन पग माने हैं, परन्तु निरुक्तकार ने इन्हें पृथ्वी, आकाश, अग्नि, सूर्य तथा स्वर्ग से माना है । "तैत्तिरीय संहिता में विष्णु वामनावतार लेकर असुरों से तीनों लोकों को जीत लेते हैं । शतपथ ब्राह्मण में भी इस कथा का वर्णन होता है कि देवताओं और दैत्यों में युद्ध हुआ । दैत्यों ने समस्त जगत् में एकाधिकार कर लिया । देवों ने उनसे अपना भाग माँगा तो दैत्यों ने कहा कि विष्णु (वामन रूप में) तीन पगों से जितनी भूमि नाप लेंगे, उतनी ले लो । देवता विष्णु के वामन रूप के कारण असंतुष्ट हुए परन्तु मन्त्रों से उन्हें प्रसन्न किया । मन्त्रों से प्रसन्न होकर भगवान विष्णु ने (विराट् रूप में) समस्त लोकों को जीत लिया ।[2]

---

1. ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिश्रृंगा अयासः ।
   अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि ॥
   ऋग्वेद, 1/154/6
2. शतपथ ब्राह्मण 1/2/5.5

"विष्णु पुराण" में "वामन" का वर्णन तो हुआ है, परन्तु इसका सम्बन्ध दैत्यराज बलि से नहीं है[1] यह वामनावतार विष्णु बड़े अद्भुत ढंग से अपने विराट स्वरूप से समस्त जगत् को आच्छादित कर लेता है । ब्राह्मणों में भी इसी तथ्य को बतलाया गया है । यहाँ वामन को अदिति एवं कश्यप पुत्र के रूप में वर्णित किया गया है । अतः इस वामन रूप विष्णु को वैदिक वामन के रूप में माना गया है ।[2] श्रीमद्भागवत में भी विष्णु के "वामन" रूप का वर्णन किया गया है, परन्तु यहाँ इनके अदिति-कश्यप पुत्र रूप और दैत्यराज बलि को छलने वाले वामन रूप दोनों का ही वर्णन मिलता है । भागवत की कथा इस प्रकार है - प्रह्लाद का प्रपौत्र और दैत्यराज विरोचन का पुत्र बलि जब सिंहासन पर आरूढ़ हुआ तब एक बार इन्द्र ने उसे पराजित कर मार डाला, तब भृगुनन्दन शुक्राचार्य ने संजीवनी विद्या से उसे जीवित कर दिया । इस पर बलि ने अपना सर्वस्व गुरु और भृगुवंशी ब्राह्मणों पर अर्पित कर दिया ।[3] गुरु, ब्राह्मण एवं अपने पितामह प्रह्लाद की कृपा से प्राप्त विभिन्न अस्त्र-शस्त्र एवं इन्द्र से छीनी हुई माला को बलि ने आदरपूर्वक धारण किया । गुरु की कृपा से विश्वजित् यज्ञ के फलस्वरूप

---

1. शतपथ ब्राह्मण 1/2/5.5
2. विष्णु पुराण 3/1/42-43
3. पराजितश्रीरसुभिश्च हापितो,हीन्द्रेण राजन्भृगुभिः स जीवितः ।
सर्वात्मना तानभजद् भृगून्बलिः,शिष्यो महात्मार्थनिवेदनेन ॥
श्रीमद्भागवत 8/15/3.

सुन्दर रथ की प्राप्ति हुई । इस प्रकार अलौकिक रथ, अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर उसने दैत्यों सहित इन्द्रपुरी पर आक्रमण हेतु प्रस्थान किया । देवराज इन्द्र उसकी विपुल सेना को देखकर देव गुरु बृहस्पति के पास गए और अपनी समस्त व्यथा उन्हें सुनायी । गुरु ने देवताओं को स्वर्ग छोड़कर अन्यत्र छिप जाने की सलाह दी, देवताओं के छिप जाने पर विरोचन पुत्र बलि विश्व विजयी हुआ, तब शिष्य प्रेमी भृगुवंशियों ने अपने अनुगत शिष्य से सौ अश्वमेध यज्ञ कराये, इन यज्ञों के प्रभाव से बलि की कीर्ति- कौमुदी तीनों लोकों, दसों दिशाओं में फैल गयी।[1]

देवताओं के स्वर्ग से निष्कासित एवं श्रीहीन होने पर कश्यप ऋषि के कथनानुसार देवमाता अदिति "पयोव्रत" नामक व्रत का अनुष्ठान करती है जिसके फलस्वरूप भगवान् कश्यप अदिति पुत्र के रूप में जन्म लेते हैं ।[2] श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के 17वें अध्याय में भगवान् विष्णु के द्वारा अदिति को वर प्राप्ति का वर्णन है, देवमाता अदिति के समक्ष ही भगवान् विष्णु अपने विराट् रूप को त्यागकर वामन

---

1. तस्मान्निलयमुत्सृज्य यूयं सर्वे त्रिविष्टपम् ।
   यात कालं प्रतीक्षन्तो यतः शत्रोर्विपर्ययः ॥ 30
   तं विश्वजयिनं शिष्यं भृगवः शिष्यवत्सलाः ।
   शतेन हयमेधानामनुव्रतमयाजयन् ॥ 34
   ततस्तदनुभावेन भुवनत्रयविश्रुताम् ।
   कीर्तिं दिक्षु वितन्वानः स रेज उडुराडिव ॥ 35
   श्रीमद्भागवत 8/15/30,34,35
2. वही, 8/16.

रूप धारण करते हैं। तत्पश्चात् छत्र,दण्ड, जल से भरा कमण्डलु,कमर में मुंज की मेखला गले में यज्ञोपवीत, कृष्णचर्म बगल में और सिर पर जटायें सुशोभित,ऐसा वामन ब्रह्मचारी का रूप धारण कर बलि की यज्ञशाला की ओर प्रस्थान करते हैं। जब वह बलि की यज्ञशाला में पहुँचे तो भृगुवंशी ब्राह्मणों ने उन्हें देखकर अपने शिष्यों के साथ उनके स्वागतार्थ उठ खड़े होते हैं। दैत्यराज बलि उन्हें उत्तम आसन देते हैं। भगवान् के पैर धोकर चरणामृत को मस्तक से लगाते हैं और परम प्रसन्न मन से भगवान् वामन से दैत्यराज बलि कहते हैं, ब्राह्मण कुमार ! ऐसा जान पड़ता है कि आप कुछ चाहते हैं। हे परम पूज्य ब्रह्मचारी जी ! आप जो चाहते हों - गाय, सोना, घर (अन्न पेयपदार्थयुक्त) जल, विवाह हेतु ब्राह्मण कन्या, सम्पत्तिपूर्ण ग्राम, घोड़े हाथी रथ आदि वह सब मुझसे ले लीजिए।[1] दैत्यराज बलि के मधुर और धर्मपूर्ण वचनों से प्रसन्न होकर भगवान् ने कहा - आपकी कुल परम्परा धर्म यश से परिपूर्ण है जिसमें किसी ने भी दान देने का वचन देकर मुकर जाना नहीं सीखा, अतः दैत्येन्द्र ! आप मुंह माँगी वस्तु देने वालों में श्रेष्ठ हैं। इसी से मैं आपसे थोड़ी सी पृथ्वी, केवल अपने पैरों से तीन पग माँगता हूँ, यद्यपि

---

1. यद् यद् वटो, वाञ्छसि तत्प्रतीच्छ मे
   त्वार्थिनं विप्रसुतानुतर्कये ।
   गां कांचनं गुणवद् धाममृष्टं,
   तथान्नपेयं वा विप्रकन्याम् ।
   ग्रामान् समृद्धांस्तुरगान् गजान् वा
   रथांस्तथार्हत्तम / सम्प्रतीच्छ ॥ 32 ॥
   श्रीमद्भागवत 8/18/32.

आप सारे जगत् के स्वामी हैं, बड़े उदार हैं, फिरभी मैं आपसे इससे अधिक नहीं चाहता । विद्वान् पुरुष को केवल जितनी आवश्यकता हो, उतना ही दान लेना चाहिए ताकि वह प्रतिग्रह जन्य पाप से बचा रहे।[1] बलि के अनेक प्रकार से कहने पर भी वामन ने तीन पग भूमि से अधिक लेना स्वीकार नहीं किया । तब जैसे ही बलि ने तीन पग भूमि देने का संकल्प करना चाहा, वैसे ही दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने राजा बलि को समझाना चाहा, परन्तु दान के लिए वचनबद्ध बलि ने गुरु आज्ञा पर ध्यान नहीं दिया । दैत्यराज बलि ने वामन भगवान की विधिपूर्वक पूजा करके हाथ में जल लेकर तीन पग भूमि देने का संकल्प किया । उनकी पत्नी विन्ध्यावली, सोने के कलश के जल से स्वयं वामन भगवान् के चरण धोने लगी । जैसे ही संकल्प पूरा हुआ, भगवान ने विराट् रूप धारण कर समस्त जगत्, लोकों को आच्छादित कर लिया । एक पग से बलि की समस्त पृथ्वी, दूसरे पग से स्वर्ग को नाप लिया और तीसरे पग के लिए बलि के पास कुछ भी नहीं बचा ।[2] भगवान ने बलि को पाश में

---

1. तस्माद् त्वत्तो महीमीषद् वृणेऽहं वरदर्षभात् ।
   पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र सम्मितानि पदा मम ॥
   नान्यद् ते कामये राजन्वदान्याज्जगदीश्वरात् ।
   नैनः प्राप्नोति वै विद्वान्यावदर्थप्रतिग्रहः ॥
   श्रीमद्भागवत 8/19/16-17.

2. क्षितिं पदैकेन बलेर्विचक्रमे, नभः शरीरेण दिशश्च बाहुभिः
   पदं द्वितीयं क्रमतस्त्रिविष्टपं,न वै तृतीयाय तदीयमण्वपि.
   उरुक्रमस्याङ्घ्रिरुपर्युपर्यथो,महर्जनाभ्यां तपसः परं गतः ॥
   श्रीमद्भागवत 8/21/2.

बाँध लिया, तत्पश्चात् बलि ने विनयपूर्वक कहा – हे भगवन् ! आपकी कीर्ति बड़ी पवित्र है, क्या आप मेरी बात को असत्य समझते हैं?, ऐसा नहीं है । आप मेरे सिर पर कृपा करके अपना तीसरा पग रखदीजिए।[1] इस प्रकार भगवान् वामन राजा बलि की विनय एवं श्रद्धा से भरी हुई प्रार्थना से प्रसन्न होकर उसे अनेक वरदानों सहित सुतललोक का राजा बनने की आज्ञा एवं होने वाले इन्द्र का वचन भी देते हैं । इस प्रकार वामनावतार लेकर भगवान् (विष्णु) पुनः देवताओं को उनका उचित स्थान दिलाते हैं ।

महाभारत में भी वामन अवतार का वर्णन है । "सभापर्व" में वामनावतार की कथा इस प्रकार है, यथा – त्रेतायुग में विरोचन पुत्र दैत्यराज बलि महान् शक्तिशाली और महान् वीर थे, उन्होंने स्वर्ग पर आक्रमण कर देवेन्द्र को स्वर्ग से निष्कासित कर देते हैं । भागवत के अनुसार ही इस कथा में भी इन्द्रादि देवगण ब्रह्मा जी के पास प्रार्थना करने जाते हैं । ब्रह्मा जी के साथ क्षीरसागर में जाकर भगवान् नारायण की स्तुति करने लगते हैं । देवताओं की प्रार्थना से प्रसन्न होकर भगवान् अदिति पुत्र के रूप में अवतार धारण कर देवों के कष्ट हरण का आश्वासन देते हैं।[2]

---

1. श्रीमद्भागवत 8/21/2.
2. पुरा त्रेता युगे राजन् बलिर्वैरोचनोऽभवत् ।
   दैत्यानां पार्थिवो वीरो बलेनाप्रतिमो बली ॥
   तदा बलिर्महाराज दैत्यसंघैः समावृतः ।
   विजित्य तरसा शक्रमिन्द्रस्थानमवाप सः ॥
   ततः तेन वर्जिते चैव त्रिदशानां हरिः प्रभुः ।
   प्रसादं ह्यस्य विभोरदित्यां जज्ञे योगतो ॥
   महाभारत, सभापर्व 38, 1.2.4.

इसी प्रकार कथा आगे बढ़ती है और वे तीन चरणों से पृथ्वी को नाप कर बलि का दम्भ चूर-चूर कर देते हैं ।

दैत्यराज बलि ने भृगुनन्दन शुक्राचार्य आदि के सहयोग से अनुष्ठित अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया था । उसी समय भगवान् विष्णु ब्राह्मण वेषधारी वामन ब्रह्मचारी के रूप में अद्भुत शोभा को धारण किए यज्ञ में प्रवेश किया । दैत्यराज के आतिथ्य को स्वीकार कर उन्होंने बलि से तीन पग भूमि दक्षिणा रूप में माँगी ।[1] दैत्यराज बलि के

---

1. (अ) वर्तमाने तदा यज्ञे दैत्येन्द्रस्य युधिष्ठिर ।
स विष्णुर्वामनो भूत्वा प्रच्छन्नो ब्रह्मवेषधृक् ॥
मुण्डी यज्ञोपवीती च कृष्णाजिनधरः शिखी ।
पलाशदण्डं संगृह्य वामनोऽद्भुतदर्शनः ॥
प्रविश्य स बलेर्यज्ञे वर्तमाने तु दक्षिणाम् ।
देहीत्युवाच दैत्येन्द्रं विक्रमांस्त्रीन् ममैव तु ॥
(ब) दीयतां त्रिपदीमात्रमित्ययाचन्महासुरम् ।
स तथेति प्रतिश्रुत्य प्रददौ विष्णवे तदा
(स) तेनलब्ध्वा हरिर्भूमिं जृम्भयामास वै प्रभुः ।
स शिशुः सदिवं खं च पृथिवीं च विशाम्पते ॥
त्रिभिर्विक्रमणैरेतत् सर्वमाक्रमत प्रभुः ।
बलेर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा ॥
विक्रान्तैस्त्रिभिरक्षोभ्याः क्षोभितास्ते महासुराः ।
विप्रचित्तिमुखाः क्रुद्धा दैत्यसंघा महाबलाः ॥
नानावक्त्रा महाकाया नानावेषधरा भृशम् ।
नानाप्रहरणा रौद्रा नानामाल्यानुलेपनाः ॥

महाभारत, सभापर्व, अध्याय 38.

"तथास्तु" कहते ही उनका शरीर विशाल होने लगा और क्षणभर में ही उन्होंने पृथ्वी से स्वर्ग तक दो ही पग में माप लिया । तत्पश्चात दानवों के आक्रमण करने पर उनका संहार करके सभी दैत्यों को उनके कुल सहित पाताल लोक में भेज दिया । बलि को वरुणपाश में बांध लिया और इन्द्र आदि देवताओं को पुनः स्वर्ग में यथास्थान दिलवाया।[1]

वामनावतार का वर्णन अग्निपुराण के चतुर्थ अध्याय के 5-11, श्लोक 4/10 में संक्षिप्त रूप में मिलता है ।[2]

इस प्रकार प्रसिद्ध बलि वामन कथा वेदों में आख्यान कथा वेदों और नाना पुराणों में प्राप्त होती है । ऋग्वेद संहिता 1/22/16,17,18 यजुर्वेद 3/19,34,43, अथर्ववेद 7/26 , विष्णु पुराण 3/1/42-43, भागवत 8/13/6, 12/3/39,81,83, पद्म पुराण सृष्टि खण्ड अध्याय 25 एवं उत्तरखण्ड 266/267 इत्यादि इस सम्बन्ध में उल्लेख हैं ।

---

1. बलिर्बद्धोऽभिमानी च यज्ञवाटे महात्मना ।
   विरोचन-कुलं सर्वं पाताले विनिपातितम् ॥
   महाभारत, सभा पर्व, अ० 38.
   स सर्वममरैश्वर्यं सम्प्रदाय शचीपतेः ।
   त्रैलोक्यं च ददौ शक्रे विष्णुर्दानवसूदनः ॥
   महाभारत, सभा पर्व, अध्याय 38.
2. तोये तु पतिते हस्ते वामनोऽभूदवामनः ।
   भूर्लोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं च पदत्रयम् ॥
   अग्नि-पुराण 4/10, अध्याय-4.

वामनावतार में बुद्धि का उत्कर्ष देखने योग्य है । दो चरणों वाला व्यक्ति तीन चरण पृथ्वी दान करने का दम्भ करता है । बलि का यह दम्भ अन्ततः विगलित हो जाता है ।

अवतार द्वारा पशु शरीर का परित्याग और मानव शरीर का पूर्णरूपेण ग्रहण :

वामनावतार से पशु शरीर का परित्याग हो जाता है। भगवान विष्णु इस अवतार में एक ब्राह्मण बटु का शरीर धारण करते हैं जिसमें बौद्धिक शक्ति का उत्कर्ष प्रथम बार प्रकट होता है । यद्यपि विभिन्न पुराणों में बलि - वामन कथा के प्रतिपादन की अपनी-अपनी शैली है किन्तु सभी में वामन के बौद्धिक - शक्ति उत्कर्ष प्रकट हुआ है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि वामनावतार तक आते-आते भगवान पशु रूप का बिल्कुल परित्याग कर देते हैं और पूर्ण रूपेण मानव रूप धारण करते हैं । यह बात अलग है कि इस अवतार में मानव शरीर अत्यन्त छोटा है परन्तु यह वामन रूप भी प्रयोजन की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है । भगवान का प्रत्येक अवतार समय और प्रयोजन के अनुकूल ही प्रतीत होता है । अतः वामनावतार में उन्होंने पूर्ण रूप से मनुष्य का रूप धारण किया है । इस समय तक दृष्टि से विकास क्रम के अनुसार भी वामनावतार उचित प्रतीत होता है क्योंकि जिस प्रकार वैज्ञानिक दृष्टि से जलीय जीव से विकसित होते-होते प्राणी को मनुष्य रूप मिला है, वैसे ही अवतारों का क्रम भी जलीय जीव मत्स्य से प्रारम्भ होकर वामन तक पूर्णरूप से मनुष्य रूप विकसित होता

है । अवतार की यह कल्पना वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने पर सत्य प्रतीत होती है क्योंकि सृष्टि विकासक्रम के अनुसार ही भगवान् के अवतारों का क्रम मिलता है ।

अतः यह कहा जा सकता है कि विकासवाद के सिद्धान्त के बीज हमारे वेदों और पुराणों में सन्निहित हैं । दशावतार-परम्परा इसका सुन्दर निदर्शन है ।

<u>वामन का त्रिविक्रमत्व :</u>

" त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् अर्थात् भगवान् विष्णु धर्म को धारण करने के लिए अपने तीन पगों से समस्त जगत् को आक्रान्त कर लेते हैं, वे ही गोपवेशधारी भी हैं । भगवान् विष्णु के विशिष्ट कार्यों में तीन पगों में ही समस्त पृथ्वी को माप लेना अपनी विशिष्टता रखता है "विक्रमाणस्त्रेधोरुगायः के अनुसार भगवान् विष्णु ने अकेले ही तीन पगों से माप लिया, इस सुदूर सधस्थ [अन्तरिक्ष] को, जहाँ पितरों का एकमात्र निवास स्थान है। "यइदम् दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित् पदेभिः [1/154/3] ऋग्वेद के इस मन्त्र के अनुसार भगवान् विष्णु को तीन पगों में ही समस्त पृथ्वी एवं आकाश माप लेने के कारण उन्हें "उरुगाय" तथा "उरुक्रम" आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है ।

भगवान् विष्णु ने इस समस्त जगत् को तीन पगों से आक्रान्त कर पैर रखा और उनके धूलि धूसर [पांसुरे] पद में यह भूमि

वामन में बौद्धिक शक्ति का उत्कर्ष :

भगवान के सभी अवतारों में वामनावतार का अपना महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि वामनावतार से पूर्व के अवतारों में बुद्धि से अधिक शारीरिक बल का महत्व दिखाई पड़ता है, इसीलिए भगवान मत्स्यावतार से लेकर नृसिंहावतार तक शक्तिशाली एवं पराक्रमी रूप ही धारण करते हैं, परन्तु वामनावतार में शक्ति से अधिक बुद्धि की आवश्यकता थी क्योंकि बलि से छलपूर्वक ही तीन पग भूमि माँग कर तीनों लोकों पर अधिकार करने का प्रयोजन था, अतः इसके लिए शक्ति से अधिक बुद्धि की आवश्यकता थी । नृसिंहावतार में बल,शक्ति, पराक्रम तथा तीक्ष्णदंष्ट्र की आवश्यकता थी । यदि सृष्टि के विकास की दृष्टि से भी देखा जाये तो प्राणी का जिस प्रकार शनैः शनैः विकास हुआ है, उससे यह सिद्ध हो जाता है कि जब प्राणी पशुरूप पूर्णरूप से त्यागकर, मनुष्य रूप धारण करता है तो उस प्रारम्भिक काल में आदिम मानव निश्चय ही शारीरिक एवं मानसिक रूप से सम्पूर्णतः विकास की अवस्था तक नहीं पहुँच सकता है, अपितु उस काल के विशाल पशुओं और दैत्याकार भयंकर प्राणियों के बीच लघुकाय मानव बुद्धि और मानसिक शक्ति में पशुओं से अधिक शक्तिशाली और पराक्रमी हो सकता है ।

इस प्रकार लघुकाय मानव बुद्धि से विराट् अपने युग में 'मेधावी मानव' के विशेषण से विभूषित किया जा सकता है क्योंकि मनुष्य में पशुओं से शारीरिक बल भले ही कम होता है, परन्तु अपने बुद्धि बल से वह विशालकाय और अत्यन्त हिंसक जानवरों को भी अपने वश में कर लेता है।

विभिन्न वैदिक ग्रन्थों एवं पुराणों में भगवान् के वामनावतार का वर्णन किया गया है, उनमें भी यही भाव प्रकट होता है कि भयंकर से भयंकर और विशालकाय दैत्यों को तथा दैत्यराज बलि को भगवान् ने वामन रूप में ही अपने वश में कर लिया । इसमें उनकी बुद्धि चातुरी का ही कौशल था । शारीरिक बल से बुद्धि बल का महत्त्व अधिक होता है, पूर्ववर्ती अन्य अवतारों की अपेक्षा वामनावतार में शारीरिक वृद्धि- उत्कर्ष तथा बल अति न्यून किन्तु बौद्धिक उत्कर्ष अपनी पराकाष्ठा में पहुँचा हुआ दिखाई देता है । इसी वामनावतार ने शुक्राचार्य जैसे असुर गुरु के सामने अपने बुद्धि बल से राजा बलि को पराजित कर दिया था । इसलिए यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि शारीरिक बल से बुद्धि बल श्रेष्ठ होता है ।[1]

कवि-कुलगुरु-कालिदास ने भी अपने रघुवंश महाकाव्य का शुभारम्भ करते हुए अपना परिचय वामन के रूप में दिया जो उनके बौद्धिक उत्कर्ष की सूचना देता है । उन्होंने कहा है कि मैं मन्द हूँ और कवियशः का प्रार्थी हूँ, मेरा उसी प्रकार उपहास होगा जैसे कोई वामन [बौना पुरुष] लम्बे पुरुष के द्वारा प्राप्त करने योग्य फल को पाने के लिए ऊपर हाथ उठा रहा हो । यहाँ पर कविवर कालिदास के द्वारा प्रयुक्त वामन शब्द के प्रयोग से वामनावतार की ध्वनि निकलती है जिसका तात्पर्य यह है कि जैसे वामनावतार के लिए कोई कार्य कठिन

---

1. बुद्धिर्यस्य बलं तस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ।
   वने सिंहो मदोन्मत्तः, शशकेन पराजितः ॥
   पंचतन्त्र "सिंह-शशक-कथा" - 1

नहीं था, और उन्होंने शीघ्र ही अपने तीन पदक्रम से लोकों को माप लिया था। इसी प्रकार मैं कवियों में वामनावतार हूँ और मेरे लिए काव्यरूपी संसार में कदम बढ़ाना, वैसा ही सरल कार्य है, जैसे कि वामनावतार के द्वारा लोकों को मापने का कार्य। अतः कालिदास के उक्त वामन शब्द के प्रयोग से यह सिद्ध होता है कि साहित्य में "वामन" शब्द बौद्धिक उत्कर्ष का पर्याय बन गया है।[1]

* * * * * * * * * * *
* * * * * * * * *
* * * * * * *
* * * * *
* * *
*

---
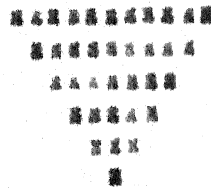
1. मन्दः कवि-यशः-प्रार्थी, गमिष्याम्युपहास्यताम्। प्रांशुलभ्ये फले लोभाद् उद्बाहुरिव वामनः॥ रघुवंश-महाकाव्य प्रथम सर्ग, श्लोक-2.

षष्ठ अध्याय

अवतारवाद का इतिहास की दृष्टि से विवेचन

षष्ठ अध्याय

इतिहास की दृष्टि से अवतारवाद

इतिहास शब्द का निर्वचन है,"इति-इदमेव वा निश्चितार्थेन आस" जिसका तात्पर्य है इस प्रकार यह निश्चय रूप से था । इस दृष्टि से यदि पुराणों में ऐतिहासिक सामग्री का अन्वेषण किया जाय तो निश्चित रूप से इनमें वह सामग्री प्राप्त होती है । "महाभारत" के आदिपर्व में कहा गया है कि वेदों में जो ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है, पुराणों में उसका समुपबृंहण अर्थात् वास्तविक रूप व्यक्त किया गया है ।[1] इतिहास के साथ पुराणों का प्रयोग यह ध्वनित करता है कि पुराणों में इतिहास तत्व है, अधिकांश ग्रन्थों में पुराणेतिहास शब्द का एक साथ प्रयोग मिलता है जिस प्रकार पुराणों में भारतवर्ष का भौगोलिक वर्णन प्राप्त होता है, उसी प्रकार उनमें राजवंशावली के वर्णन के प्रसंग में अनेक ऐतिहासिक तथ्य उद्घाटित किए गए हैं । पुराणों में वर्णित मन्वन्तर तथा राजवंश के प्रकरण के पढ़ने से प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में सप्तसिन्धु निवासी आर्य किस प्रकार पूर्व-पश्चिम, दक्षिण और उत्तर की ओर जाकर अपने राज्य की स्थापना तथा अपनी संस्कृति का प्रचार प्रसार एवं अपने विचारों का संकेत अपने नाम से स्थापित नगरों के

---

1. इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
   महाभारत आदि पर्व 1/69.

नामकरण से किया था । इसी प्रकार पुराणों में अनेक राजवंशों का वर्णन प्राप्त होता है, इस प्रकार ऐतिहासिक सर्वेक्षण और समीक्षण की दृष्टि से पौराणिक परम्परा का मुख्य विवरण स्वीकार करते हैं । पौराणिक परम्परा अपनी पूर्ववर्ती वैदिक परम्परा का अनुवर्तन करती है और वैदिक स्वरों तथा घटनाओं का सामंजस्य स्थापित करती है । इसलिए महा-भारत में कहा गया है![1] 'पुराणम् पुरावृत्तम्' अर्थात प्राचीन वृत्त को पुराण कहते हैं । इस प्रकार आधुनिक विद्वानों की यह धारणा निर्मूल हो जाती है कि प्राचीन भारतीयों में इतिहास बोध की कमी थी , क्योंकि इनमें इतिहास लेखन जैसी परम्परा नितान्त गौण थी ।

पुराणों में ऐतिहासिक विषयवस्तु है, भले ही उनका वर्णन आज के इतिहास लेखन परम्परा से भिन्न है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हमारी भारतीय प्रतिभा के अमन्द उन्मेषण का वृत्तान्त आर्यों तथा हमारे देश की प्राचीन वैदिक संस्कृति का हिरण्यगर्भमय स्वरूप वैदिक वाङ्मय है । उसका अनुवृंहण पुराणों में किया गया है । पुराण संहिताओं ने आख्यानों, उपाख्यानों, गाथाओं और कल्पोक्तियों के द्वारा पुराण संहिता का निर्माण किया है ।

'अथर्ववेद' में कहा गया है कि व्रात्यों के पदचिन्हों का अनुगमन सारस्वत प्रदेश के जिन लोगों ने किया वे इतिहास पुराण, गाथा नाराशंसी थे ।[2] और इसी वेद के अनुसार पुराण पुरातन वृत्तों का

---

1. महाभारत 5·1 नीलकण्ठी टीका
2. तम् इतिहासश्च पुराणम् च गाथाश्च, नाराशंसीश्च अनुव्यचलन् । अथर्ववेद 15/1/6.10.11.12.

द्योतक है तथा इतिहास घटनाओं का तथ्यानुसार वर्णन है । प्राचीनकाल में इतिहास एवं पुराणों को समान कोटि में रखा जाता था और दोनों के लिए 'ऐतिह्य' शब्द का प्रयोग होता था ।[1]

वेदों के प्रसिद्ध भाष्यकार आचार्य सायण का कथन है कि "ऐतिह्य" का अर्थ इतिहास है और उसके अन्दर पुराण, महाभारत और ब्राह्मणादि ग्रन्थ आते हैं ।[2]

अमरकोश 1/5/1 के अनुसार "इतिहासः पुरावृत्तम्" इतिहास को पुरावृत्त कहा जाता है । इसी प्रकार महाभारत में भी 1/5/1 पर नीलकण्ठी टीका में पुराण को पुरावृत्त कहा गया है । इसलिए यह सिद्ध हो जाता है कि पुराणों में ऐतिहासिक सामग्री प्रचुर मात्रा में विद्यमान है ।

दशावतार - परम्परा में विष्णु के कुछ अवतार इतिहास के परिवेश में आ जाते हैं । परशुराम अवतार की ऐतिहासिकता पर कोई सन्देह नहीं किया जा सकता है क्योंकि दशावतारों में पाँच पौराणिक अवतारों के अतिरिक्त परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध कल्क्यादि जिन महापुरुषों को ग्रहण किया गया है, वे इतिहास वेत्ताओं के अनुसार

---

1. इतिहासस्य भावः ऐतिह्यम् - ष्यञ् प्रत्यय.
2. ऐतिह्यम् इतिहास-पुराण-महाभारत-ब्राह्मणादिकम् ।
तैत्तिरीय आरण्यक - कृष्ण यजुर्वेदीय शाखा 1·3
- पुराणम् इतिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणम् धर्मशास्त्रं अर्थशास्त्रं चेति इतिहासः कौटिल्य अर्थशास्त्र 1·5.

ऐतिहासिक महापुरुष हैं।

परशुराम अपने युग के सर्वाधिक प्रभावशाली अवतारी व्यक्तित्व है। राम जमदग्नि का उल्लेख ऋग्वेद संहिता में मिलता है।[1] इन्होंने दुष्ट क्षत्रियों को परास्त कर ब्राह्मणों का कल्याण किया था। अतः इन्हें ऐतिहासिक महापुरुष माना जाता है।[2]

<u>परशुराम और विष्णु :</u>

भगवान् विष्णु के अनेक अवतारों में परशुराम काअवतार महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि इस अवतार में भगवान् उन क्षत्रियों का वध करते हैं, जो प्रजा, धर्म तथा साधुओं की रक्षा न करके उन्हें पीड़ित करते हैं। क्षत्रियों को पृथ्वी तथा धर्म का रक्षक माना जाता था परन्तु जब क्षत्रिय ही प्रजा एवं धर्म के विनाशक हो गए, पापों और अत्याचार होने लगे साधु, ब्राह्मण, गौ आदि का तिरस्कार करने लगे, अभिमान से मदोन्मत्त होकर प्रजा के अधिकारों के भक्षक हो गए, तब भगवान परशुराम के रूप में पृथ्वी पर भगवान् विष्णु[3] अवतरित होते हैं। भगवान परशुराम राम, कृष्ण की भाँति विष्णु के अवतार भी कहे गए हैं और ऐतिहासिक

---

1. ऋग्वेद संहिता 10/110.10.93/14.
2. न्यू इण्डिया कटोवेरी अंक 6, पृष्ठ-220.
3. यमाहुर्वासुदेवांशं हैहयानां कुलान्तकम्।
   त्रिः सप्त कृत्वो य इमां चक्रे निः क्षत्रियां महीम् ॥
   श्रीमद्भागवत महापुराण, द्वितीय खण्ड, नवमं स्कन्ध, श्लोक-14.

महापुरुष भी । बहुत से विद्वान् इन्हें विष्णु का अंशावतार तो बहुत से विद्वान् इन्हें विष्णु का आवेशावतार मानते हैं ।[1] वाल्मीकि रामायण में भगवान् परशुराम को विष्णु का ही अवतार माना जाता है । यहाँ वर्णन है कि जब जनक की पुत्री सीता के विवाह के पश्चात् जब अयोध्या नरेश दशरथ अपने पुत्रों-पुत्र वधुओं समेत विदाई के पश्चात् स्वनगर लौट रहे थे तो मार्ग में परशुराम का मिलन राम से होता है । भगवान परशु-राम -श्रीराम की परीक्षा के लिए (कि वह विष्णु अवतार है या नहीं) अपना धनुष देते हैं ।[2] और श्रीराम को धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाने को कहते हैं, परशुराम यह ज्ञात करना चाहते थे कि उनके अवतार का प्रयोजन अब समाप्त हो गया है । अतः भगवान् विष्णु ने पुनः अवतार धारण कर लिया है अथवा नहीं । जब श्रीराम उनके धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा देते हैं,[3] तब उन्हें यह विश्वास हो जाता है कि यह श्रीराम भी भगवान् विष्णु के ही अवतार हैं और इस ज्ञान के पश्चात् वह अपना समस्त तेज श्रीराम को

---

1. ब्रह्मादयः स्वरूपांश, अंशांशस्तु मरीच्यः ।
   कलाः कपिल कूर्माद्या आवेशा भार्गवादयः ॥
   गर्गसंहिता,गोलोकखण्डे 1/17-18.

2. राम दाशरथे वीर वीर्यं ते श्रूयतेऽद्भुतम् ।
   धनुषो भेदनं चैव निखिलेन मया श्रुतम् ॥
   तदद्भुतमचिन्त्यं च भेदनं धनुषस्तथा ।
   तच्छ्रुत्वा अहमनुप्राप्तो धनुर्गृह्यापरं शुभम् ।
   वाल्मीकि रामायण, 75/1-2.

3. आरोप्य स धनू रामः शरं सज्यं चकार ह ।
   जामदग्न्यं ततो रामं रामः क्रुद्धोऽब्रवीदिदम् ॥
   वाल्मीकि रामायण,बालकाण्ड 45/9.

को समर्पित करके महेन्द्र पर्वत पर चले जाते हैं। इस विषय में वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड की टीका में भी गोविन्द राम जी कहते हैं कि "तब भगवान परशुराम के शरीर से (वैष्णव तत्व) विष्णु भगवान की अंश रूप ज्योति, तेज और वीर्य सभी देवताओं के देखते- देखते ही श्रीराम में विलीन हो गए।[1]

श्रीमद्भागवत पुराण में भी परशुराम को विष्णु का ही अवतार माना गया है। जब क्षत्रिय राजागण ब्राह्मणों के द्रोही हो गए तब भगवान ने परशुराम के रूप में अवतार लेकर पृथ्वी को 21 बार क्षत्रियों से विहीन कर दिया।[2] इसी प्रकार का भाव इसी ग्रन्थ के द्वितीय स्कन्ध में भी प्राप्त होता है कि भगवान ने देखा कि संसार में ब्राह्मणद्रोही आर्य मर्यादाओं का उल्लंघन करने वाले नारकीय क्षत्रिय अपने नाश के लिए दैववश बढ़ गए हैं और पृथ्वी परकोटों की भाँति पैठे हुए हैं, तब भगवान पराक्रमी परशुराम के रूप में अवतीर्ण होकर तीखी धार वाले फरसे से इक्कीस बार उनका संहार करते हैं।[3] श्रीमद्भागवत

---

1. ततः परशुरामस्य देहान्निर्गत्य वैष्णवम् ।
   पश्यतां सर्वदेवानां तेजो राममुपागमत् ॥
   गोविन्दराजस्य टीका – वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड 1/76/11
2. त्रिः सप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्राम् करोन्महीम् ॥
   श्रीमद्भागवत, प्रथम खण्ड 1/3/20.
3. श्रीमद्भागवत द्वितीय स्कन्ध 7·22.

पुराण के द्वितीय खण्ड के नवम स्कन्ध में भी इसी प्रकार का वर्णन देखिये यह परिलक्षित होता है कि भगवान् विष्णु ने ही परशुराम के रूप में अव-तार धारण किया था और यह अवतार भी पृथ्वी पर धर्म के संस्थाप-नार्थ और अधर्म के विनाश हेतु किया गया था ।[1]

भगवान् परशुराम को महाभारत में भी भगवान् विष्णु का ही अवतार माना गया है, सभापर्व में भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को भगवान् के विभिन्न अवतारों के वर्णन के प्रसंग में परशुरामावतार का वर्णन भी करते हुए कहते हैं कि भगवान् का अवतार जामदग्न्य (परशुराम) के ही प्रयोजन वाला था, हैहयवंश का संहार, कार्त्तवीर्य अर्जुन यद्यपि महावीर था, परन्तु अपने अत्याचारों के कारण वह भगवान् के द्वारा मारा जाता है ।[2]

परशुराम के अवतार के उद्देश्य :

जगत् में ईश्वर का अवतार बहुत ही उद्देश्यपूर्ण महत्व-पूर्ण एवं आश्चर्यजनक माना जाता है । पुराणों के प्रधान - विषयों में अवतार के तत्व को अन्यतम माना गया है क्योंकि अवतार का तत्व

---

1. श्रीमद्भागवत द्वितीय खण्ड, नवम स्कन्ध, 15/14,
2. जमदग्निसुतो राजन् रामो नाम स वीर्यवान् ।
   हैहयान्तकरो राजन् स रामो बलिनां वरः ॥
   कार्तवीर्यो महावीर्यो योऽनाप्रतिमस्तथा ।
   रामेण,जामदग्न्येन हतो विनिमरदव ॥
   महाभारत सभापर्व ,प्रथम खण्ड,अध्याय-38,पृष्ठ 792,

भगवान् के धर्म नियामकत्व रूप पर ही आधारित है । ईश्वर स्वनिर्मित सृष्टि का स्वयं नियमन करता है, एक ही सूत्र में समस्त जगत् को धारण करता है और इसी नियमित जगत् को धारण करता है और इसी नियमित रखने वाले तत्व को धर्म कहा जाता है । ईश्वर विनिर्मित इस धर्म की जब-जब हानि होती है अथवा ईश्वर द्वारा निर्मित नियमों का जब जब उल्लंघन होता है, अधर्म की प्रगति होती है, तभी भगवान् इस लोक में पुनः धर्म की स्थापना, अधर्म का विनाश तथा साधुओं की रक्षा एवं दुष्टों का नाश करने हेतु अवतार धारण करते हैं । जब से इस सृष्टि का निर्माण भगवान् ने किया है, तब से जब-जब पृथ्वी दुष्टों के अत्याचारों से भाराक्रान्त हुई है, पृथ्वी पर पुकार त्राहि-त्राहि करने लगी है, धर्म की अवनति होने लगी तथा अधर्म का अभ्युत्थान होने लगा, तब तब प्रभु को सृष्टि के नियमन हेतु ऊर्ध्वलोक से इस अधोलोक में अवतीर्ण होना पड़ा है । दुष्टों के विनाश के बाद ही धर्म की स्थापना हो सकी है । जब समस्त पृथ्वी जलमग्न थी । जलीय जीवों में परस्पर बहुत वैमनस्य था और अत्यधिक पापों के बढ़ जाने पर जलौघ में वेदों (धर्म) की सुरक्षा कठिन हो गयी तो भगवान् ने मत्स्य रूप में अवतार ग्रहण किया था । श्रीमद्भगवद् गीता में कृष्ण भगवान् स्वयं ही अर्जुन से अपने अवतारों का प्रयोजन बताते हुए कहते हैं कि "जब जब धर्म का ह्रास होगा और अधर्म का अभ्युत्थान होगा, साधुओं के परित्राण (रक्षा के लिए) के लिए और दुष्टों के विनाश के लिए तथा धर्म की स्थापना के लिए तब तब

हर युग में मैं अवतार ग्रहण करूँगा ।[1] इसी प्रकार वायु पुराण और मत्स्य पुराण में भी अवतार के उद्देश्य सम्बन्धी वर्णन मिलते हैं ।[2] इनके अलावा ब्रह्मपुराण (180/26-27 तथा 181/2-4) में भी गीता के समान ही अवतार के उद्देश्य बतलाये गए हैं ।

श्रीमद्भागवत महापुराण में भी भगवान के अवतारों के उद्देश्यों का विस्तृत वर्णन किया गया है जिन्हें उदाहरणस्वरूप स्पष्ट किया गया हुआ है । अव्यय, अप्रमेय, गुणात्मक भगवान की अभिव्यक्ति (या अवतार) मनुष्य के कल्याणार्थ हुई है क्योंकि भगवद्-दर्शन से ही मनुष्य को मोक्ष प्राप्ति संभव है, यदि वह पृथ्वी पर अवतीर्ण नहीं होते तो उनका भौतिक सौन्दर्य, चारित्रिक माधुर्य, अप्रमेय आकर्षण एवं असीम गुण समुदाय का ज्ञान अल्पज्ञ मानव को कैसे होता ।[3] अतः अवतार ईश्वर के अन्य

---

1. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
   अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
   परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
   धर्म-संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे - युगे ॥
   श्रीमद्भगवद् गीता 4/7-8.
2. जज्ञे पुनः पुनर्विष्णुर्यज्ञे च शिथिलः प्रभुः ।
   कर्तुं धर्मव्यवस्थानम् असुराणां च नाशनम् ॥ वायुपुराण 98/69.
   धर्मे प्रशिथिले तथा असुराणां प्रणाशनम् । मत्स्यपुराण 47/235.
3. नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ।
   अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥
   श्रीमद्भागवत द्वितीय खण्ड 10/29/14.

उद्देश्यों में गुह्यतम उद्देश्य यही माना जाता है । श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं कि मेरी दर्शनीय और मधुर वाणी से युक्त मेरे उन रूपों में मनुष्यों की इन्द्रियाँ आसक्त हो जाती हैं और उनका मन मुझमें अनुरक्त हो जाता है फिर न चाहकर भी (किसी भक्ति के बिना भी) उन्हें मोक्ष (परम पद) की प्राप्ति हो जाती है ।[1]

विष्णु पुराण में स्पष्ट रूप से कहा गया है भगवान विष्णु गौ, ब्राह्मण, साधुओं एवं वेदादि धर्मों की रक्षा के लिए विभिन्न अवतार धारण करते हैं ।[2]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान विष्णु विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करते हैं । भगवान परशुराम के रूप में भी इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति की झलक के दर्शन होते हैं । भगवान दत्तात्रेय की निष्काम भाव से बहुत वर्षों तक कार्तवीर्य अर्जुन ने तपस्या की थी जिसके फलस्वरूप भगवान ने उन्हें चार वरदान दिए थे ।[3] वरदानों के प्रभाव से हैहयवंशी कार्तवीर्य अर्जुन या सहस्रार्जुन (हजार भुजाओं के कारण) अत्यधिक अभिमानी हो गया था । वह अत्यधिक

---

1. हृतात्मनो हृत-प्राणांश्च भक्तिरनिच्छतो मे गतिमण्वीं ।
   श्रीमद्भागवत प्रथम खण्ड, तृतीय स्कन्ध, अध्याय-25, श्लोक-36

2. गो-विप्र-मित्र, साधूनां छन्दतामपि केशवः ।
   कारमिच्छत् तनुशेते धर्मस्यार्थेऽवतारति ॥
   विष्णु पुराण 4/27

3. महाभारत, प्रथम खण्ड, अर्जुनाभिगमन पर्व, वनपर्व अ0 30.

अभिमानी हो गया था । यह अत्यधिक शक्तिशाली था । उसने माहिष्मती नगरी में दस हजार वर्ष तक निरन्तर अभ्युदयशील होकर राज्य किया था । यह महान् वीर भी था, परन्तु कालान्तर में उसे शक्ति का अभिमान होने लगा और विशेषकर ब्राह्मणों पर उसका अत्याचार अधिक होने लगा । एक दिन महर्षि जमदग्नि के आश्रम में "कामधेनु" को देखा और उसे बिना महर्षि की अनुमति लिए अभिमानवश अपने राज्य में ले आया ।[1]

सहस्त्रार्जुन जहाँ से जाता, वहीं ब्राह्मणों को अपमानित करता । प्रजा उसके अत्याचारों से आर्त्तनाद करती । ब्राह्मण भयभीत होकर आर्त्त से पुकार करते । पृथ्वी पर क्षत्रियों के अत्याचार अत्यधिक बढ़ गए थे, जिन क्षत्रियों को पृथ्वी का रक्षक कहा जाता था, "क्षतात् किल त्रायते इति क्षत्रियः" इस व्युत्पत्ति के विपरीत अब क्षत्रिय शासक, प्रजा का और उसमें भी विशेषतः अध्यात्मपरायण ब्राह्मण वर्ग का पोषक होने के स्थान पर शोषक या रक्षक के स्थान पर भक्षक बन गया था । पृथ्वी क्षत्रियों के अत्याचार से कराहने लगी थी क्योंकि नगरों की प्रजा तो उनके अत्याचार से पीड़ित थी ही, सुदूर जंगल में रहने वाले ऋषि मुनि भी सहस्त्रार्जुन एवं उनके अन्य क्षत्रिय शासकों से त्रस्त हो चुके थे । तब भगवान् परशुराम का अवतार हुआ । दुर्दान्त तथा अभिमानी शासकों का दमन तथा ब्राह्मणों के सम्मान की रक्षा ही इस अवतार का मुख्य उद्देश्य है ।

---

1. श्रीमद्भागवत द्वितीय खण्ड 9/26.

महाभारत 'वन पर्व' के एक प्रसंगानुसार कार्तवीर्य सहस्रार्जुन के अत्याचारों से तथा उसके स्वर्ग पर आक्रमण से पीड़ित होकर इन्द्रादि देवताओं ने भगवान् विष्णु से उसके वध के लिए प्रार्थना की। एक अन्य स्थान पर भगवान् के परशुराम रूप में अवतार ग्रहण करने का उद्देश्य पुनः वर्णित है कि हैहयराज कार्तवीर्य अर्जुन ने इन्द्र पर आक्रमण किया, जिसके कारण भगवान् विष्णु ने उसके समूल विनाश के लिए इन्द्र से परामर्श किया।[1] इसके अतिरिक्त परशुरामावतार का एक उद्देश्य महाभारत में ही अन्य स्थान पर परिलक्षित होता है कि "समस्त प्राणियों के कल्याणार्थ अवतार लेने के लिए ही उन्होंने बदरिकाश्रम की यात्रा की।[2] महाभारत में ही "नारायणीयोपाख्यान" में कहा गया है कि विष्णु भगवान् कहते हैं कि-मैं त्रेतायुग में भृगु-कुल का उद्धार करने वाला परशुराम रूप से अवतरित होकर सेना तथा वाहनों की विशाल संपदा वाले क्षत्रियों का संहार करूँगा।[3]

विष्णु पुराण में कार्तवीर्य अर्जुन तथा समस्त क्षत्रियों के विनाश हेतु परशुराम कथा में अवतार ग्रहण करते हैं, इन्हें नारायण का अंशावतार कहा गया है।[4]

---

1. महाभारत, वन पर्व, 3/115/13-16-17
2. महाभारत, वन पर्व, 3/115/18.
3. महाभारत, नारायणीयोपाख्यान 12/339/84.
4. विष्णु पुराण 3/11/20 एवं 4/7/36.

इसी प्रकार भगवान् के परशुराम रूप में अवतार ग्रहण करने का स्पष्ट उद्देश्य श्रीमद्भागवत में वर्णित है कि "क्षत्रिय बड़े दुष्ट, ब्राह्मणों के अभक्त रजोगुणी और विशेष करके तमोगुणी हो रहे थे। यही कारण था कि वे पृथ्वी के भार हो गए थे और इसी के फलस्वरूप भगवान् परशुराम ने उनका समूल नाश करके पृथ्वी पर भार उतार दिया।[1]

परशुराम अवतार ग्रहण करके उन्होंने ही पृथ्वी को 21 बार क्षत्रिय विहीन किया। परशुराम जी तो हैहयवंशों का प्रलय करने के लिए मानो भृगुओं में अग्नि रूप से ही अवतीर्ण हुए थे।[2]

भागवत के ही अन्य स्थान पर उनके उद्देश्य को पुनः वर्णित किया गया है।[3] श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कन्ध में परशुराम अवतार का उद्देश्य पुनः वर्णित किया गया है, यथा - जब संसार में ब्राह्मण द्रोही आर्य मर्यादा का उल्लंघन करने वाले नारकीय क्षत्रिय अपने नाश के लिए ही दैववश बढ़ जाते हैं और पृथ्वी के काँटे बन जाते हैं, तब भगवान् पराक्रमी परशुराम के रूप में अवतीर्ण होकर अपनी तीखी धार

---

1. श्रीमद्भागवत नवम स्कन्ध, अ0 15, श्लोक-15.
2. निः क्षत्रियामकृत गां च त्रिः सप्तकृत्वो, रामस्तु हैहयकुलाप्ययभार्गवाग्नि॥ श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध अ0-4, श्लोक-21, द्वितीय खण्ड
3. त्रिः सप्त कृत्वः कुपितो निः क्षत्राम करोन्महीम्॥ श्रीमद्भागवत, प्रथम स्कन्ध, 3/20.

धारों फरसे से इक्कीस बार उनका संहार करते हैं ।[1]

<u>परशुराम के कार्य :</u>

भगवान् के अवतारों में भगवान् परशुराम का छठा अवतार माना जाता है । भगवान् परशुराम का अवतरण ही पृथ्वी पर दुष्टों के विनाश के लिए हुआ था । अतः विभिन्न ग्रन्थों में उनके कार्यों का वर्णन लगभग एक ही समान वर्णित है । परशुराम का सबसे प्रमुख कार्य यही था कि पृथ्वी को अत्याचारियों, पापियों, दुष्टशासकों एवं ब्राह्मण विरोधी क्षत्रियों का समूल विनाश हो ।

हैहयवंश में सहस्त्रार्जुन या कार्तवीर्य अर्जुन नामक प्रख्यात अभिमानी दुराचारी एवं महाशक्तिशाली था, पराक्रम में उसकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती थी । वह एक श्रेष्ठ क्षत्रिय था, उसने विभिन्न प्रकार से सेवा कर भगवान् के अंशावतार दत्तात्रेय को प्रसन्न कर उनसे एक सहस्त्र भुजायें तथा कोई भी शत्रु युद्ध में पराजित न कर सकेआदि । इस प्रकार के चार वरदान प्राप्त कर लिए। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म, स्थूल से स्थूल रूप धारण कर लेता था, उसे सभी सिद्धियां प्राप्त थीं और वह संसार में बेरोकटोक सभी जगह विचरा करता था । उसने छः मास तक रावण को अपने यहाँ बन्दी बनाकर रखा था । एक बार महर्षि जमदग्नि के आश्रम में उसने "कामधेनु" गाय को देखा और उसे बिना ऋषि की अनुमति के अपनी राजधानी माहिष्मती ले गया । उसकी उद्दण्डता

---

1. श्रीमद्भागवत,द्वितीय खण्ड,नवमस्कन्ध,अध्याय-7,श्लोक-22,

और अहंकार को परशुराम जी ने आश्रम लौटने पर जाना और वह अत्यन्त क्रोधित होकर सहस्त्रबाहु अर्जुन की नगरी माहिष्मती की ओर चले । नगरी पहुँचकर दोनों में भयंकर युद्ध हुआ । भगवान् परशुराम ने एक बार में ही उसकी सहस्त्र भुजायें काट दीं । फरसे से उसका सिर धड़ से अलग कर दिया, यद्यपि सहस्त्रबाहु रथ पर था और परशुराम पृथ्वी पर खड़े थे । तत्पश्चात् अनेक दुष्ट क्षत्रिय राजाओं का उन्होंने संहार किया । संहार के पश्चात् आश्रम लौटने पर पुनः वह पिताजी की आज्ञा से सार्वभौम राजा के वध के प्रायश्चित्त हेतु तीर्थाटन करने गए ।

किसी समय किसी कारणवश उन्होंने अपने पिता की आज्ञा से अपनी माता एवं भाइयों का वध कर दिया था और पिता के प्रसन्न होकर वर माँगने के लिए कहने पर उन्होंने अपनी माता तथा भाइयों को पुनः जीवित होने एवं मेरे द्वारा इनकी हत्या हुई थी, ऐसा भूल जाने का वर माँगा । वरदान के प्रभाव से उनकी माँ एवं सभी भाई नींद से सोए हुए के समान उठ बैठे ।

कालान्तर में एक दिन जब भगवान् परशुराम अपने सभी भाइयों सहित आश्रम से बाहर गए हुए थे, उसी समय मौका देखकर सहस्त्रबाहु के पुत्रों ने अपने पिता के वध का बदला लेने हेतु महर्षि जमदग्नि का सिरोच्छेदन कर दिया । महर्षिपत्नी रेणुका की आर्त्त पुकार पर उन दुष्ट क्षत्रियों ने जरा भी दया नहीं दिखायी । अपनी माँ के करुण क्रन्दन को सुनकर परशुराम जी आश्रम में लौटे तो देखा, उनके पिता का दुष्ट क्षत्रियों द्वारा वध कर दिया गया है । अपने पिता के मृत शरीर को

[illegible] भाइयों को लेकर वह वेग से माहिष्मती नगरी की ओर जाते हैं। माहिष्मती नगरी जाकर उन्होंने सहस्रबाहु के पुत्रों का वध कर दिया। दुष्ट क्षत्रियों शासकों को समाप्त कर दिया, जिनके रक्त से एक बड़ी भयंकर नदी बह निकली, जिसे देखकर ब्राह्मण द्रोहियों का हृदय भय से काँप उठा। भगवान ने देखा कि वर्तमान क्षत्रिय दुष्ट और अत्याचारी हो गए हैं। इसलिए उन्होंने अपने पिता के वध को निमित्त बनाकर 21 बार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन कर दिया और कुरुक्षेत्र में पाँच तालाब क्षत्रियों के रक्त से भर गए। क्षत्रियों से पीड़ित होकर ब्राह्मणों ने "राम-राम" कहकर आर्तनाद किया था। उन्होंने काश्मीर, दरद, कुन्तिभोज, क्षुद्रक, मालव, शक, चेदि, काशि, करूष, ऋषिक, कैकेय, अंग, बंग, कलिंग, मागध, काशी, कोशल, रात्रायण, वीतिहोत्र, किरात तथा मार्तिकावत को तथा अन्य सहस्रों राजेश्वरों को प्रत्येक देश में तीखे बाणों से मारकर यमराज को भेंट कर दिया था।[1]

परशुराम की ऐतिहासिकता :

इतिहासकारों ने भगवान राम, कृष्ण, बुद्ध एवं कल्कि के समान ही परशुराम को भी ऐतिहासिक महापुरुष माना है।

किसी भी साहित्य में महापुरुषों के व्यक्तिगत वैशिष्ट्य के मूल्यांकन में उनके युग और चरित्र का विशेष योग रहता है। वैदिक काल के साहित्य में यह देखा गया है कि मानव में दो प्रवृत्तियाँ दैवी और आसुरी स्थित होती हैं जिनमें यदि साधुओं, गौओं, ब्राह्मणों एवं

---

1. अवतार चरित - परशुरामावतार .
   गीतगोविन्द 1/6 : भागवत 9/15/15;1/3/20;2/7/22
   भागवत 11/4/21.

धर्म की रक्षा हेतु बल एवं पराक्रम का प्रभाव अधिकतम रहता है, उन्हें दैवी प्रवृत्ति कहा जाता है और जिस मानव में दैवी प्रवृत्ति हों, उन्हें महा-पुरुष या अवतारी पुरुष कहा जाता है । इसके विपरीत आसुरी प्रवृत्ति वाले मानव को अधम, दुष्ट या निशाचर कहते हैं । गीता में मानव के दैवी एवं आसुरी गुणों का वर्णन किया गया है ।[1]

वैदिक साहित्य के अनुसार वैदिक देवता विष्णु एवं इन्द्र में पर्याप्त दैवी प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है । इसीलिए वीर पुरुषों या महापुरुषों को "विष्णु" के समान पराक्रमी या बलशाली कहा जाता है । ऋग्वेद में "विष्णु" को "उरुक्रम त्रिविक्रम, पराक्रमी, बलशाली एवं वीर्यवान् आदि अनेकों विशेषणों से विभूषित किया गया है, इसीलिए वाल्मीकि रामायण में भगवान् राम को विष्णु के समान वीर्यवान् एवं पराक्रमी कहा है ।[2]

शनैः शनैः "अवतार" शब्द रूपकात्मक अभिव्यक्ति के लिए रूढ़ प्रयोग हो गया था । अतः समान प्रवृत्तियों के कारण राम, कृष्ण, परशुरामादि महापुरुषों को विष्णु का अवतार माना जाने लगा ।

परशुराम की ऐतिहासिकता उनके प्राचीन भार्गव वंश से सम्बद्ध होने से सिद्ध होती है और परशुराम अपने समय के सर्वाधिक

---

1. श्रीमद्भगवद् गीता 16/3.
2. वाल्मीकि रामायण 1/1/18.

प्रभावशाली एवं पराक्रमी व्यक्ति माने गए हैं, इसीलिए अनेक इतिहास-कारों ने उनके समय को "परशुरामकाल" कहा है ।[1]

वैदिक साहित्य में भी इनका वर्णन "जामदग्न्यराम" के नाम से हुआ है, इस साहित्य में इनकी अनेक पौराणिक एवं दन्त कथाएं भी मिलती हैं, इसी से इनके पौराणिक होने की सम्भावना की जाती है । ऋग्वेद में "राम जामदग्न्य" का उल्लेख हुआ है । अथर्ववेद में परशुराम का वर्णन मिलता है । जिसमें उनके अवतार तत्व के प्रमुख प्रयोजनों में भृगु और वैहयवंशी लोगों के संघर्ष और गौ सम्बन्धी कथाओं का वर्णन किया गया है ।

भार्गव परशुराम को ऐतिहासिक व्यक्ति मानने में "अथर्ववेद" पर दृष्टिपात करना भी आवश्यक है । "अथर्ववेद" में परशु-राम का प्रमुख कार्य है, भृगुवंशी और वैहयवंशी लोगों के मध्य संघर्ष । इस संघर्ष में शोषित ब्राह्मणों की रक्षा करने के लिए परशुराम अत्याचारी क्षत्रियों का 21 बार विनाश करते हैं और ब्राह्मणों को मानवाधार पाट पर बसाते हैं । यह ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के संघर्ष में ब्राह्मणों की रक्षा करने की घटना उनकी ऐतिहासिक होने की पुष्टि करती है, इसीलिए मिस्टर इलियट ने भी परशुराम को वैदिक काल का एक महापुरुष या पराक्रमी व्यक्ति माना है ।[2]

प्रारम्भिक महाभारत में इन्हें एक वीर पुरुष के रूप

---

1. दी वैदिक एज वॉ० 1/ सं० 1951, पृ० 270 में ई०पूर्व 2550-2650 परशुराम काल माना गया है ।
2. हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म वॉ-2, पृष्ठ 148.

में भी वर्णित किया गया है, इन्हें "अवतारी पुरुष" न मानकर केवल वीर या "पराक्रमी पुरुष" के रूप में चित्रित किया गया है ।[1]

श्रीमद्भगवद् गीता में उनकी विभिन्न विभूतियों का यद्यपि वर्णन किया गया है तथापि इन्हें भगवान् विष्णु का पूर्णावतार कहीं नहीं माना गया और अन्य किसी पुराण में भी इन्हें पूर्णावतारी नहीं माना गया बल्कि भगवान् विष्णु का अंशावतार या कहीं-कहीं "आवेशावतार" माना गया है ।[1] परशुराम को अंशावतारी इसलिए भी कहा जाता है क्योंकि अंशावतार का महत्व केवल एक समय, एकदेश एक परिस्थिति तथा किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए होता है, उसका महत्व सर्वदा नहीं रहता, जैसा कि वाल्मीकि रामायण में भी स्पष्ट है कि परशुराम सीता के स्वयंवर में जब राम की परीक्षा हेतु धनुष चढ़ाने को कहते हैं, तत्पश्चात् परशुराम के शरीर से श्रीविष्णु की ज्योति निकलकर राम में विलीन हो जाती है । उस समय परशुराम एक मुनि रूप में ही वर्णित किए जाते हैं ।[2]

'वराहपुराण' में भी परशुराम का वर्णन एक पराक्रमी

---

1. ब्रह्मादय: स्मृता अंशा अंशांशास्तु मरीचय: ।
   कला: कपिल कूर्माद्या आवेशा भार्गवादय: ॥
   गर्गसंहिता-गोलोक खण्ड-5.
2. तत: परशुरामस्य देहान्निर्गत्य वैष्णवम् ।
   पश्यतां सर्वदेवानां तेजो राममुपागमत् ॥
   वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 1/76/11-12.

और प्रचण्ड शक्तिमान् व्यक्ति के रूप में किया गया है । यहाँ कहा गया है कि प्रचण्ड रूप वाले परशुराम ने इस जगत् को जीतकर उस भूमि को कश्यप ऋषि को दान कर दिया था । इन प्रचण्ड रूप वाले परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित कर दिया था । वह जमदग्नि ऋषि के पुत्र जीवभिपन्न की रक्षा करने वाले थे । वे हिरण्यगर्भ असुरों के हनन करने वाले हमारी रक्षा करें ।[1]

भगवान् श्रीराम के पर्याय ही नहीं बल्कि श्रीकृष्ण के परमांशावतार तथा कलियुग के भगवान् कल्कि के धनुर्वेद के शिक्षक के रूप में भी इनका वर्णन विभिन्न ग्रन्थों में प्राप्त होता है ।[2]

श्रीराम :

यद्यपि सुस्पष्ट रूप से वैदिक साहित्य में रामकथा का उल्लेख प्राप्त नहीं होता, फिरभी रामकथा के कतिपय पात्रों के नाम उसमें प्राप्त हो जाते हैं ।[3] यह भी सत्य है कि चूंकि वैदिक साहित्य का बहुत सा अंश अप्राप्त है और शाखायें पूर्णलुप्त हो चुकी हैं, इसलिए लुप्त वैदिक साहित्य में सम्पूर्ण रामकथा का उल्लेख सम्भवतः किया गया

---

1. त्रिःसप्तकृत्वो जगतीं विजित्य कृत्वा ददौ कश्यपाय प्रचण्डः ।
   स जामदग्न्योऽभिपन्नस्य गोप्ता हिरण्यगर्भांकुशहारा प्रपातु ॥
   वामनपुराण प्रथम खण्ड, 90-15.
2. हि० वैदिक धर्म., पृ० 281.
3. ऋग्वेद संहिता 10/93/14; अथर्ववेद 1/13/1.

रहा हो ।

निश्चय ही आज श्रीराम की ऐतिहासिकता के प्रकाशक भारतीय मनीषा के अनेक ग्रन्थ रत्न हैं जिनमें वाल्मीकि रामायण और महाभारत प्रमुख हैं । महाभारत में उल्लिखित नारायणीयोपाख्यान में अवतारों की 6 और दस सूचियों में श्रीराम का उल्लेख किया गया है ।[1] वाल्मीकि रामायण में श्रीराम को विष्णु के समान वीर्यवान् कहा गया है ।[2] इसी के अनुसार श्रीराम विष्णु के अंशावतार हैं ।[3] आगे वाल्मीकि रामायण के छठें काण्ड में श्रीराम को विष्णु का पूर्णावतारी पुरुष कहा गया है ।[4] इधर कविकुल गुरु कालिदास ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य रघुवंश में श्रीराम को क्षीरशायी विष्णु का अवतार माना है ।[5] बौद्ध और जैन साहित्य में भी श्रीराम कथा वर्णित है ।[6] अनेक पुराणों में भी श्री रामावतार का वर्णन प्रचुर मात्रा में विद्यमान है । विष्णु पुराण के अनुसार श्रीरामविष्णु के अंशावतारी हैं ।[7] नरसिंह पुराण के अनुसार श्रीराम विष्णु के वास्तव अवतारी हैं ।[8] इसी प्रकार सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में श्री रामकथा का प्रभाव परिलक्षित होता है और विष्णु के अवतारी श्रीराम की ध्वनि सुनाई देती है ।

---

1. महाभारत 12/339/77-90 एवं 103/104
2. विष्णुना सदृशो वीर्ये वाल्मीकि रामायण 1/1/18.
3. वाल्मीकि रामायण 1/15/31
4. वही 6/120.
5. रघुवंश दशम सर्ग,
6. रामकथा बुल्के – पृष्ठ 146.
7. विष्णु पुराण 4/4/27.
8. नरसिंह पुराण 47, पृष्ठ 157-203.

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि श्रीराम विष्णु के अवतार थे। जब उनका इस धरातल पर अवतार हुआ, उस समय धर्म की हानि हो रही थी और अधर्म की वृद्धि हो रही थी, सज्जनों का अपमान हो रहा था और पृथ्वी में पापाचार और अनाचार बढ़ रहा था। देवताओं महर्षियों, सिद्धों, विद्याधरों, गन्धर्वों, किन्नरों आदि का पुरुषार्थ प्रतिहत हो गया था। ऐसे विकट अवसर पर विष्णु श्रीराम के रूप में धरा पर अवतार लेते हैं। प्रत्येक युग में धर्म संस्थापनार्थ ही वे अवतार ग्रहण करते हैं।[1]

एक समय की बात है कि महातपस्वी विश्वामित्र महाराज दशरथ की राजसभा में पधारते हैं। वे अपने यज्ञ की रक्षा हेतु और दुष्ट राक्षसों के संहारार्थ राम-लक्ष्मण को ले जाने की बात कहते हैं और इसी तारतम्य में वे कहते हैं कि राम विष्णु के अवतार हैं और लक्ष्मण शेषावतार हैं।[2] श्रीराम के विष्णु के अवतारी होने का दूसरा प्रामाणिक कथन उस समय प्राप्त होता है, जब परशुराम श्रीराम से मिलते हैं। परशुराम श्रीराम को युद्ध के लिए ललकारते हैं और कहते हैं कि तुम मुझसे युद्ध करो, अथवा राम यह नाम छोड़ दो। यह सुनने के पश्चात

---

1. धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।
   श्रीमद्भगवद्गीता 4.8
2. शेष नारायणावेतौ तव पुत्रौ न संशयः ।
   दुष्टानां निग्रहार्थाय शिष्टानां पालनाय च
   अवतीर्णौ न सन्देहो गृहे तव नराधिप ॥
   नरसिंह पुराण 47/54.59.60.

श्रीराम अपने धनुष की प्रत्यंचा की टंकार का उद्घोष करते हैं। उसी समय तत्काल परशुराम जी के शरीर से वैष्णव तेज निकलता है और सबके सामने श्रीराम के मुख में समा जाता है। तब परशुराम श्रीराम से कहते हैं कि आप साक्षात् विष्णु हैं और राम के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। इसमें सन्देह नहीं है। आप देवताओं का कार्य कीजिए और दुष्टों का संहार करके सज्जनों की रक्षा कीजिए।[1]

इसके पश्चात् जिन प्रयोजनों के लिए श्रीराम का अवतार होता है, वे सभी प्रयोजन सम्यक् रूप से सिद्ध होते हैं। श्रीराम रावणादि का वध करके धर्म की स्थापना करते हैं और सज्जनों का परित्राण करते हैं।

श्री रामावतार में सर्वोपरि विशेषता यह रही है कि उनमें मानवता, बुद्धि और शारीरिक बल के साथ-साथ कर्तव्य-परायणता, त्यागभाव, सदाचरण, अनुकम्पा और मर्यादापालन आदि मानवोचित उदात्त गुणों की पराकाष्ठा दिखाई देती है। इसीलिए श्रीराम "मर्यादापुरुषोत्तम" की उपाधि से विभूषित किए गए हैं।[2]

श्री रामकथा के लिए आदिकवि वाल्मीकि का यह कथन इस कथा की व्यापकता, प्राचीनता और अमरता की ओर संकेत

---

1. नरसिंह पुराण 46/149, पृ० 164.
2. सारस्वत - [illegible] ,प्रो० पं० सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी, पृ० 200.

करता है -

"यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ।
तावद् रामायण कथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥[1]

वाल्मीकि रामायण से लेकर प्रायः सभी पुराणों में रामकथा पल्लवित और पुष्पित हुई है । आज भी भारतीय जीवन में रामकथा अत्यन्त गहराई से प्रविष्ट है । फलतः विष्णु के अवतारी राम आज भी भारतीय संस्कृति के उन्नायक और राष्ट्रीय जनमानस के आराध्य बने हुए हैं।

संक्षेप में, पुराणों में श्रीरामकथा निम्नवत प्राप्त होती है -

श्रीराम विष्णु के अवतार थे । जब उनका इस धरातल पर अवतार हुआ, उस समय धर्म की हानि हो रही थी और अधर्म की वृद्धि हो रही थी । सज्जनों का अपमान हो रहा था और पृथ्वी में अनाचार और पापाचार बढ़ रहा था । देवताओं, महर्षियों, सिद्धों, विद्याधरों, गन्धर्वों, किन्नरों आदि का पुरुषार्थ प्रतिहत हो गया था । यह सभी संगठित होकर ब्रह्मा जी और शंकर जी के नेतृत्व में विष्णुजी से प्रार्थना करते हैं और उनकी स्तुति करते हैं । वे उनसे कहते हैं कि हे प्रभो । दुरात्मा रावण ने समस्त जगत् में भीषण संहार मचा रखा है । उस राक्षस ने इन्द्र सहित देवताओं को कई बार पराजित कर दिया है, ऋषियों के यज्ञों को दूषित कर दिया है, सैकड़ों-हजारों देवकन्याओं का अपहरण कर लिया है । आपको छोड़कर कोई दूसरा देवता रावण का

---

1. [illegible] : प्रो० [illegible]-पृष्ठ-200.
वाल्मीकि-रामायण , पृष्ठ 40.

वध करने में समर्थ नहीं है । अतः आप अवतार लेकर उनका वध करें ।

देवताओं की स्तुति और प्रार्थना सुनकर विष्णु ने उनसे कहा कि मैं धर्म की रक्षा के लिए और अधर्म का विनाश करने के लिए, दुष्टों के संहार के और सज्जनों की रक्षा के लिए शीघ्र ही अपने अंशों के सहित अयोध्यापुरी के नरेश दशरथ के यहाँ अवतार ग्रहण करूँगा । सभी देवतागण वानर के रूप में अवतीर्ण हों जिससे परस्पर सहयोग के द्वारा रावण का वध हो सकेगा ।

इधर पुत्रेष्टि यज्ञ कराने वाले राजा दशरथ की तीनों रानियों कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी के चार पुत्र श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के रूप में जन्म लेते हैं । सभी के जातकर्म संस्कार उनके पिता राजा दशरथ सम्पादित करते हैं । गुरुकुल में उनकी शिक्षा-दीक्षा वशिष्ठ जी के नेतृत्व में सम्पन्न होती है ।[1]

कुछ दिनों के पश्चात् राजा दशरथ की राजसभा में महा तपस्वी विश्वामित्र पधारते हैं । वे राजा दशरथ से कहते हैं कि राक्षस लोग मुझे यज्ञ-यागादि नहीं करने देते, इसलिए आप मुझे उनका वध करने और यज्ञ की रक्षा हेतु अपने दोनों पुत्र राम और लक्ष्मण को दे दीजिए। क्योंकि राम के द्वारा ही वे राक्षस मारे जा सकते हैं, तुम्हारे द्वारा नहीं।

---

1. जातकर्मादिकं प्राप्य संस्कारं मुनि-संस्कृतम् ।
   वेदशास्त्राणि बुबुधे [illegible] ॥
   नरसिंह पुराण 47/44, पृष्ठ 157.

राम विष्णु के अवतार हैं, वे दुष्ट राक्षसों का वध करने के लिए और सज्जनों की रक्षा तथा धर्म की स्थापना के लिए पृथ्वी में अवतीर्ण हुए हैं।[1]

मुनि की इच्छानुसार महाराज दशरथ अपना पुत्रमोह छोड़कर राम और लक्ष्मण दोनों को विश्वामित्र जी के साथ उनकी यज्ञ की रक्षा हेतु भेज देते हैं। राम और लक्ष्मण विश्वामित्र जी से क्षुधा और पिपासा को दूर करने वाली 'बला' और 'अतिबला' नाम की दो विद्याएँ प्राप्त करते हैं। विश्वामित्र उन्हें शस्त्र और शास्त्र की भी शिक्षा देते हैं। इस प्रकार श्रीराम गंगा जी को पार कर शोणभद्र नदी के पश्चिम तट पर पहुँच जाते हैं। वहाँ तपस्वी विश्वामित्र श्रीराम से कहते हैं कि हे महाबाहो राम ! इस महान वन में रावण की आज्ञा से ताड़का नाम की राक्षसी रहती है। उसने बहुत से मनुष्यों, मुनि पुत्रों और मृगों को मारकर अपना आहार बना लिया है। इसलिए तुम उसका संहार करो। इस पर श्रीराम कहते हैं कि हे मुने ! विद्वान, नारी के वध में महान पाप बतलाते हैं। ताड़का नारी है मैं उसका वध कैसे कर सकता हूँ। तब विश्वामित्र जी उन्हें समझाते हैं हे राम ! उस ताड़का के वध से सभी प्राणीमात्र निर्भय हो जायेंगे। वह पापिनी और दुष्टा है, इसलिए उसका

---

1. रामोऽपि हि ते तस्या न स्थास्यति राक्षसा पुरः ।
हन्तो मे देहि रामं च न विघ्नाय ब्रुवन्नर्हसि ॥
ऐश्वर्य राक्षसापेक्षो तव पुत्रो न संशयः ।
दुष्टानां निग्रहार्थाय शिष्टानां पालनाय च ॥
अवतीर्णो न सन्देहो भुवि तव नराधिप ।
नरसिंह पुराण 47/24.59.60 पृष्ठ 198.

उसे मारना तुम्हारे लिए पुण्यदायक है। तुम निःशंक होकर उसका वध करो। मुनि की आज्ञा पाकर राम ने शर का सन्धान करके बड़े वेग से उस दुष्टा ताड़का नाम की राक्षसी को मार दिया जिससे उसके वक्षस्थल के दो टुकड़े हो गए और वह मर गयी।[1]

ताड़का वध के पश्चात् श्रीराम विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करते हैं किन्तु वहाँ रावण से प्रेरित मारीच, सुबाहु और अन्य बहुत से राक्षस महर्षि विश्वामित्र के यज्ञ के विनाश के लिए अकस्मात् आते हैं, किन्तु श्रीराम उन सभी राक्षसों को मार भगाते हैं और इस प्रकार विश्वा-मित्र जी का यज्ञ सम्पन्न होता है। महामुनि विश्वामित्र, शिला बनी हुई गौतम पत्नी अहिल्या के पास, श्रीराम को ले जाते हैं। श्रीराम का दर्शन पाकर पाषाणभूता अहिल्या शाप से मुक्त हो जाती है औरश्रीराम के दर्शन पाकर वह अपने पति गौतम के पास चली जाती है। तदनन्तर महामुनि विश्वामित्र के पास विदेहराज जनक का सीता स्वयंवर हेतु निमन्त्रण आता है। तदनुसार वे श्रीराम और लक्ष्मण को लेकर सीता स्वयंवर में सम्मिलित होनेहेतु जनकपुरी जाते हैं। वहाँ राजाओं का समूह एकत्रित है जो राजा शिव-धनुष को तोड़ेगा, उसी के साथ सीता का विवाह होगा। जनक की इस प्रतिज्ञा के अनुसार सभी उपस्थित

---

1. शरं संधाय वेगेन तेन तस्या उरः स्थलम् ।
   विदारितम् द्विधा राजन् सा पपात ममार च ॥
   नरसिंह पुराण 47/84, पृष्ठ 160.

राजा अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हैं किन्तु वे सभी असफल हो जाते हैं। इसके बाद विश्वामित्र जी से प्रेरित श्रीराम शंकर जी के धनुष्य को तोड़ देते हैं जिससे जनक और सीता के मन में प्रसन्नता का उदय हो जाता है। इसके बाद श्रीराम का सीता के साथ विवाह होता है। मिथिलापुरी में श्रीराम-सीता का विवाहोत्सव मनाया जाता है और फिर दशरथ सीता जी के लिए बहुत सा धन, दिव्यद्रव्य, श्रीराम के लिए सुन्दर वस्त्र, हाथी, घोड़े, दास और दासियाँ आदि देकर उनकी विदाई करते हैं। राम को मार्ग में श्री परशुराम से भेंट होती है और वे उन्हें युद्ध के लिए ललकारते हैं और कहते हैं कि तुम मुझसे युद्ध करो अथवा राम यह नाम छोड़ दो। श्रीराम यह सुनने के बाद परशुराम के सामने अपने धनुष की प्रत्यंचा की टंकार का उद्घोष करते हैं। उसी समय तत्काल परशुराम जी के शरीर से वैष्णव तेज निकलकर सबके सामने श्रीराम के मुख में समा जाता है।[1] यह देखकर परशुराम श्रीराम से कहते हैं कि हे महाबाहो श्रीराम! आप ही वस्तुतः राम हैं, अब मुझे इसमें सन्देह नहीं है। हे प्रभो! आज ही मैंने आपको पहचाना है। आप साक्षात् विष्णु ही हैं और इस रूप में अवतीर्ण हुए हैं। आप देवताओं का कार्य कीजिए और दुष्टों का संहार करके सज्जनों की रक्षा कीजिए. मैं अब तपस्या हेतु तपोवन के लिए प्रस्थान

---

1. ज्याघोषमकरोद्रामो वीरस्याहंकृतं तदा ।
ततः परशुरामस्य देहान्निष्क्रम्य वैष्णवम् ॥
पश्यतां सर्वभूतानां तेजो राममुखेऽविशत् ।
नरसिंह पुराण 48/149, पृष्ठ-164.

करता हूँ ।[1]

श्रीराम सीता जी के साथ अन्य सभी वर यात्रियों के साथ अयोध्यापुरी लौट आते हैं । महामुनि विश्वामित्र दशरथ से विदा लेकर अपने आश्रम लौट जाते हैं । कुछ समय के पश्चात् अयोध्या में अत्यन्त मार्मिक और कारुणिक परिस्थितियों का उदय होता है । महाराज दशरथ श्रीराम के राज्याभिषेक का प्रस्ताव करते हैं तो दूसरी ओर महारानी कैकेयी इसका विरोध करती हैं और राजा से दो वरदान प्राप्त करने में समर्थ होती हैं जिसके अनुसार श्रीराम को चौदह वर्षों का वनवास और भरत के राज्याभिषेक का निर्णय हो जाता है । राम, माता कैकेयी की आज्ञा से वनवास के लिए निकल पड़ते हैं, उनके साथ सीता और लक्ष्मण जी भी जाते हैं । इधर राम के वियोग से दशरथ अपने प्राण छोड़ देते हैं । अयोध्या के नर-नारी श्रीराम के वनगमन और महाराज दशरथ के मरण से अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं। इधर श्रीराम गंगातट में आकर निषाद से मिलते हैं और गंगाजी को पार करते हैं। वे अब चित्रकूट में रहने लगे हैं और भरतजी चित्रकूट में राम से मिलते हैं। कालान्तर में राम अपराधी जयन्त को दण्ड देते हैं और वहाँ से दण्डकारण्य के लिए प्रस्थान करते हैं। मार्ग में शरभंग, सुतीक्ष्ण और

---

1. राम राम महाबाहो रामस्त्वं नाथ लोकप: ।
   चित्रकूटे महाबाहो प्रतीक्षस्व महाविभो ॥
   दुष्टानां निधनं कृत्वा शिष्टांश्च परिपालय ।
   नरसिंह पुराण 48/151-52, पृष्ठ-164.

अगस्त्य मुनि के दर्शनों से श्रीराम कृतार्थ होते हैं । पंचवटी में रहते हुए श्रीराम को शूर्पणखा का सामना करना पड़ता है । लक्ष्मण जी उसकी नाक और कान काट देते हैं । शूर्पणखा से प्रेरित रावण सीता का हरण करता है जिससे श्रीराम अत्यन्त दुखी होते हैं ।

श्रीराम भक्तवत्सल हैं । वे शबरी को दर्शन देते हैं तथा जटायु से भी मिलते हैं । सीता की खोज में उनकी सुग्रीव से मैत्री होती है और हनुमान् जी से मिलन होता है, वे मित्र सुग्रीव की प्रसन्नता के लिए बालि का वध करते हैं । हनुमान् जी सीता की खोज का समाचार श्रीराम को सुनाते हैं । श्रीराम वानर सेना के साथ लंका के लिए प्रस्थान करते हैं । समुद्रतट पर रावण का भाई विभीषण उनकी शरण में आता है। श्रीराम समुद्र के जल से विभीषण का राज्याभिषेक करते हैं और उसे लंका का राजा घोषित करते हैं ।[1]

अन्त में श्रीराम का रावण के साथ युद्ध होता है और श्रीराम की विजय होती है । देवता लोग राम की स्तुति करने लगते हैं, और उन्हें बधाई देते हैं । श्रीराम सीता के साथ अयोध्यापुरी लौट आते हैं जहाँ उनका राज्याभिषेक होता है। वे चिरकाल तक धर्मपूर्वक राज्य करते

---

1. राम राम महाबाहो देव देव जनार्दन ।
विभीषणोऽस्मि वीर त्वां अहं ते शरणागतः ॥
समुद्रतोयैस्तं वीरमभिषिच्य विभीषणम् ।
लंकाराज्यं तदैवेति प्रोक्तः सम्यग्य तस्थिवान् ॥
नृसिंह पुराण 52/6-8, पृ० 203.

है और अन्त में स्वर्गारोहण कर जाते हैं ।

श्रीराम की उपर्युक्त लीलाओं का संक्षिप्त रेखांकन जो नरसिंह पुराण में प्राप्त होता है, वह सब वाल्मीकि रामायण से संगृहीत प्रतीत होता है । राम के सम्पूर्ण जीवन में चरित्र की उज्ज्वलता और महानता झलकती है । महर्षि वाल्मीकि ने कहा है कि व्यक्ति कुलीन हो या अकुलीन हो, वीर हो अथवा मानी हो - उसकी पवित्रता और अपवित्रता के विषय में उसका चरित्र ही प्रमाण होता है ।[1] इस दृष्टि से श्रीराम का चरित्र निकषोपल में कसने पर खरा उतरता है । भारतीय साहित्य के इतिहास में जितने भी नायक हुए हैं। उनमेंश्रीराम के नायकत्व से किसी की तुलना नहीं हो सकती । श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तमहैं। वेआदर्श पुत्र हैं,आदर्श भाई हैं, आदर्श राजा हैं और आदर्श प्रजापति हैं । वे माता-पिता की आज्ञा का पालन करते हैं,उनकी रुचि धर्म की संस्थापना में है। वे काम, क्रोध, लोभ और मोह से बहुत दूर हैं । सम्पत्तियाँ उन्हें आकर्षित नहीं कर सकतीं । वे जितेन्द्रिय हैं, वे हमारे मानव समाज के आदर्श हैं । आज भी राम का चरित लोगों को प्रेरणा दे रहा है । श्रीराम के चरित्र से प्रकट होता है कि वे गुणवान, वीर्यवान, धर्मज्ञ,

---

1. कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम् ।
   चरित्रमेव व्याख्याति शुचिं वा यदि वाऽशुचिम् ॥
   वाल्मीकि रामायण 1/9-10,

कृतज्ञ, सत्यवादी और दृढ़व्रती हैं। वे चरित्र से युक्त हैं और सभी प्राणियों के हित में तत्पर हैं। वे विद्वान्, समर्थ और एकमात्र प्रियदर्शन वाले हैं। वे आत्मवान्, क्रोध को जीतने वाले, ईर्ष्या-द्वेष से रहित हैं। संग्राम में क्रुद्ध होने पर उनसे देवतागण भी भयभीत होते हैं। वे धर्म के रक्षक तथा सम्पूर्ण जीवलोक के रक्षक हैं। वेद, वेदांग के ज्ञाता और धनुर्वेदविशारद हैं। जिस प्रकार समुद्र नदियों से घिरा रहता है, उसी प्रकार वे सज्जनों से घिरे रहते हैं। वे समुद्र के समान गम्भीर और नगाधिराज हिमालय के समान धैर्यवान् हैं और अधिक क्या कहा जाय। श्रीराम पराक्रम में विष्णु के सदृश हैं और चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन हैं। क्रोध में कालाग्नि के समान और क्षमा में पृथ्वी के समान हैं। वे त्याग में कुबेर के समान और सत्य के पालन में दूसरे धर्मावतार की तरह हैं।[1]

विष्णु के सम्पूर्ण अवतारों में श्री रामावतार की कथा झोपड़ी से लेकर राजमहलों तक व्याप्त है। भारतीय इतिहास में श्रीराम की कथा ने जितना जनमानस को आन्दोलित किया है, उतनी और कोई भारतीय कथा प्राप्त नहीं होती। श्रीराम के पावन चरित्रों में श्रीराम का चरित्र, चरित्रवती माला का सुमेरु है। भारतीय परम्परा में श्रीराम ने जो आदर्श प्रस्तुत किया है, मानव चरित्र की जो अनुपम सृष्टि की है, उसका स्पर्श करना, मानव के लिये अतिदुर्लभ वस्तु है। आज श्रीराम

---

1. वाल्मीकि रामायण 1/100, पृष्ठ 17-18.

का पावन चरित्र ही जनता के सन्ताप को दूर कर रहा है । अपनी दैनिक समस्याओं का समाधान लोग श्रीराम के चरित्र में प्राप्त करते हैं। इसलिए यह दृढ़ता के साथ कहा जा सकता है कि जब तक इस देश भारत में नदियाँ प्रवाहित होती रहेंगी और इस भूतल में पर्वत, स्थित रहेंगे तब तक रामायण-कथा के माध्यम से श्रीराम का उज्ज्वल चरित्र घर-घर में जन-जन तक व्याप्त रहेगा ।[1]

इसलिए हमारे साहित्यकारों, चिन्तकों, मनीषियों और विद्वानों का मानव समाज के लिए यह सन्देश है कि हमें अपनाजीवन राम की तरह बनाना चाहिए,रावण की तरह नहीं ।[2] श्रीराम के पावन चरित्र में भारतीय संस्कृति और सभ्यता तथा सर्वोपरि मानवता की पराकाष्ठा प्रतिबिम्बित है । आज के इस भौतिक युग में भी सुख,शान्ति,धर्म नीति इत्यादि गुणों के लिए श्रीराम सदैव स्मरणीय,वन्दनीय और पूजनीय बने रहेंगे । भारतीय जीवन के सन्दर्भ में श्रीराम का पावन चरित्र जीवन्त है और कालजयी है । नरसिंह पुराण में श्रीराम के चरित्र की उद्भावना और वर्णन, वैष्णव पुराण होने के कारण बड़ी सुन्दरता के साथ प्रस्तुत की

---

1. यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ।
   तावद् रामायण-कथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥
   वाल्मीकि रामायण 1/10.
2. रामादिवत् प्रवर्तितव्यम् न रावणादिवत् ।
   काव्य-प्रकाश – प्रथम उल्लास, पृष्ठ- 06.

गयी है जो सरल, सरस, प्रांजल और सर्वजनग्राह्य है । कोई भी श्रीराम के चरित्र का वर्णन सांगोपांग नहीं कर सकता । शास्त्र अन्त में "नेति-नेति" कहकर ही विराम ले लेता है ।

श्रीकृष्ण :

प्राचीन भारतीय-साहित्य श्रीकृष्ण के विपुल व्यक्तित्व से व्याप्त है । श्रीकृष्ण की ऐतिहासिकता सन्देहातीत प्रतीत होती है । यद्यपि वैदिक साहित्य से लेकर पुराण काल तक अनेक स्थलों में श्रीकृष्ण का उल्लेख मिलता है । यहाँ यह अनुसन्धेय प्रतीत होता है कि अनेक स्थलों में उल्लिखित श्रीकृष्ण एक ही अवतारी व्यक्तित्व है, या भिन्न-भिन्न है ।

वैदिक साहित्य के अन्तर्गत ऋग्वेद संहिता 8·74 सूक्त के द्रष्टा के रूप में कृष्ण आंगिरस का नाम मिलता है । इसी प्रकार छान्दोग्योपनिषद् - 3/10/6 और कौषीतकि ब्राह्मण आदि में भी कृष्ण का उल्लेख प्राप्त होता है । ऋग्वेद संहिता के एक स्थल में कृष्ण के साथ अर्जुन का सहपाठ भी मिलता है ।[1] अथर्ववेद में भी एक स्थान पर राम और कृष्ण का सहपाठ मिलता है ।[2] ऋग्वेद संहिता 2/20/7 एवम् 8/25/13 में एक कृष्णासुर का उल्लेख मिलता है । भागवत पुराण 10/25 और विष्णु पुराण के 5/30 में श्रीकृष्ण-इन्द्र के विरोध की चर्चा है । इन सभी

---

1. ऋग्वेद संहिता 6/9/1.
2. अथर्ववेद संहिता 1/23/1.

उद्धरणों से यह प्रतीत होता है कि कृष्ण नाम के अनेक व्यक्तित्व थे ।

किन्तु प्रस्तुत अवसर पर महाभारत और पुराणों में वर्णित वासुदेव कृष्ण का अवतारी रूप ही हमारे शोध - विषय का प्रतिपाद्य है । छान्दोग्योपनिषद् में देवकी पुत्र कृष्ण की चर्चा की गई है।[1] पाणिनि ने अष्टाध्यायी में अर्जुन और वासुदेव का एक साथ उल्लेख किया है जिससे वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण के प्रति अर्जुन की भक्ति का स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है ।[2] वासुदेव श्रीकृष्ण - महाभारत के महानायक हैं । महाभारत में श्रीकृष्ण को विष्णु का साक्षात् अवतार माना गया है ।[3]

श्रीमद्भगवद् गीता में वे अपने अवतार का प्रयोजन भी स्वयं बतलाते हैं । वे धर्म की ग्लानि और अधर्म का अभ्युदय होने पर सज्जनों की रक्षा हेतु और धर्म संस्थापनार्थ समय - समय पर अवतार लेते हैं ।[4] वे अपने को वृष्णियों में वासुदेव और पाण्डवों में अर्जुन कहते हैं।[5] वे पुराणों में और महाभारत में विष्णु के साक्षात् अवतार माने गए हैं । तैत्तिरीय आरण्यक 1/1/6 एवं महाभारतीय नारायणोपनिषद् 4/16 में वासुदेव, नारायण और विष्णु का एक साथ पाठ किया गया है। इससे यह प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण, नारायण, वासुदेव और विष्णु एक ही

---

1. छान्दोग्योपनिषद् - 3/17/6.
2. वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन् पा0 4/3/98.
3. महाभारत 1/67/151.
4. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत,
   अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।
   गीता 4/7-8.
5. गीता 10/37.

तत्त्व के नाम हैं एवं पर्यायवाची हैं । इस प्रतिपादन से श्रीकृष्ण के पूर्णावतारी होने की पुष्टि होती है । डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी 4/3/98 में वासुदेव और अर्जुन का जो एक साथ प्रयोग किया है, उससे श्रीकृष्ण भक्ति के सूत्र मिल जाते हैं ।[1] श्रीकृष्ण वासुदेव देवता के रूप में प्रतिष्ठित होने लगे थे । पतंजलि के अनुसार - वासुदेव केवल क्षत्रिय का ही नाम नहीं है । प्रत्युत श्रीकृष्ण का एक व्यक्तिगत नाम है । महाभाष्य में पतंजलि बलिबंध और कंसवध इत्यादि नाटकों का उल्लेख करते हैं । इससे यह विदित हो जाता है कि ई०पू० दूसरी शताब्दी में श्री कृष्णावतार की कथाओं का प्रचार और प्रसार समाज में हो गया था ।

डॉ० अग्रवाल का प्रतिपादन है कि पतंजलि (ई०पू० दूसरी शताब्दी) ने अपने महाभाष्य में उपलब्ध सूत्रों के आधार पर कृष्ण के "व्यूहरूप" तथा केशव और राम के मन्दिर का उल्लेख किया है ।[2] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कृष्णावतार कंस-वध का उल्लेख मिलता है ।[3] इधर ग्रीक राजदूत मेगस्थनीज (ई०पू० चतुर्थ शताब्दी) ने श्रीकृष्ण की पूजा और उनसे सम्बद्ध मथुरा और कृष्ण नगर का उल्लेख किया है ।[4] बौद्ध जातकों के अन्तर्गत "घटजातक" में बलदेव और वासुदेव का नामोल्लेख

---

1. इण्डिया ऐज़ नोन टू पाणिनि पृष्ठ 358.
   -वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन् पा० 4/3/98
2. वही, पृष्ठ 359-360.
3. कौटिल्य-अर्थशास्त्र 14/3
4. बर्जेस, भण्डारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट, पृ० 4.

प्राप्त होता है । इसी प्रकार जैन सम्प्रदाय के "उत्तराध्ययन सूत्र" में कृष्ण वासुदेव के नामोल्लेख प्राप्त होते हैं । इसके अतिरिक्त ई०पू०दूसरी शताब्दी के वेसनगर के शिलालेखों में श्रीकृष्ण सम्बन्धी भागवत धर्म का स्पष्ट उल्लेख मिलता है ।

उपर्युक्त प्रतिपादन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि लगभग 7वीं शताब्दी ई०पू० से लेकर प्रथम शताब्दी ई०पू० तक जिन कृष्ण और उनके धर्म का प्रचार और प्रसार हो चुका था, वे महाभारत के नेता वासुदेव श्रीकृष्ण ही थे । कालान्तर में कृष्ण सम्प्रदाय के अत्यधिक प्रचार और प्रसार होने पर विष्णु के एक अवतार नाम उन्हीं के नाम माने जाने लगे थे । डॉ० पुसालकर ने श्रीकृष्ण- कथा से सम्बन्धित पौराणिक कथाओं का पर्याप्त अनुशीलन और परिशीलन किया है । उनके द्वारा प्रस्तुत कृष्ण की ऐतिहासिक कथा का सार संक्षेप कुछ इस प्रकार है । श्रीकृष्ण की जन्म भूमि मथुरा है और इनका लालन-पोषण गोकुल में नन्द यशोदा के यहाँ हुआ था । उनकी प्रायः सभी लीलायें, कौतुकता से भरे सभी कार्य ग्यारह वर्ष की अवस्था में होते हैं ।

हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण और श्रीमद्भागवतपुराण में कृष्ण-कथाओं का अत्यधिक वैष्णवीकरण हुआ है और इनमें वैष्णवभक्ति अपनी पराकाष्ठा में पहुँच गई है । इसके अतिरिक्त ब्रह्म वैवर्त, विष्णु धर्मोत्तर और गर्गसंहिता आदि ग्रन्थों में श्रीकृष्ण कथा अत्यधिक पल्लवित और पुष्पित हुई है ।

कविकुल गुरु कालिदास ने तो अपनी प्रसिद्ध कृति मेघदूत

में सतरंगी इन्द्रधनुष की छवि से सुशोभित मेघ की तुलना गोपवेषधारी श्रीकृष्ण से की है।[1]

अतः कालिदास के समय ई० की चतुर्थ शताब्दी तक श्रीकृष्ण "गोपाल-कृष्ण" के रूप में प्रतिष्ठित हो गए थे। इसमें कोई सन्देह का आधार प्रतीत नहीं होता है।

हरिवंश पुराण, विष्णु और भागवत पुराण में यद्यपि गोपी कृष्ण की कथाओं का प्रचुर वर्णन प्राप्त होता है लेकिन उनमें राधा नाम की गोपी का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। इसलिए "राधा-कृष्ण" इस युग व रूप का अनुशीलन अस्वाभाविक प्रतीत होता है। राधा कृष्ण का सम्भवतः प्रथमोल्लेख [illegible], गाथा सप्तशती और पंचतन्त्र में हुआ है।[2] इन दोनों ग्रन्थों का रचनाकाल प्रथम शताब्दी ई० के लगभग माना जाता है। श्रीमद्भागवत पुराण के एक स्थल पर गोपीकृष्ण की कथा में -

"अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः ॥"

श्लोक प्राप्त होता है जिससे "राधा" की झलक मिलती है। किन्तु

---

1. रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ताद्,
   वल्मीकाग्रात् प्रभवति धनुः खण्डमाखण्डलस्य ।
   येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते,
   बर्हेणेव स्फुरित-रुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ॥
   मेघदूतम् पूर्वभाग-1,15.
2. त्वं कृष्ण गोरजो राधिकाया अपनयन । (संस्कृतछाया)
   गाथा-सप्तशती : [illegible], पृ० 44.

में सप्तरंगी इन्द्र-धनुष की छवि से सुशोभित मेघ की तुलना गोपवेशधारी श्रीकृष्ण से की है ।[1]

अतः कालिदास के समय ई०की चतुर्थ शताब्दी तक श्रीकृष्ण "गोपाल-कृष्ण" के रूप में प्रतिष्ठित हो गए थे । इसमें कोई सन्देह का आधार प्रतीत नहीं होता है ।

हरिवंश पुराण, विष्णु और भागवत पुराण में यद्यपि गोपी कृष्ण की कथाओं का प्रचुर वर्णन प्राप्त होता है लेकिन उनमें राधा नाम की गोपी का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है । इसलिए "राधा-कृष्ण" इस युग व रूप का अनुसंधान अस्वाभाविक प्रतीत होता है । राधा कृष्ण का सम्भवतः प्रथमोल्लेख गाथासप्तशती, गाथा सप्तशती और पंचतन्त्र में हुआ है ।[2] इन दोनों ग्रन्थों का रचनाकाल प्रथम शताब्दी ई० के लगभग माना जाता है । श्रीमद्भागवत पुराण के एक स्थल पर गोपीकृष्ण की कथा में -

"अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः ॥"

श्लोक प्राप्त होता है जिससे "राधा" की झलक मिलती है । किन्तु

---

1. रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ताद्,
वल्मीकाग्रात् प्रभवति धनुः खण्डमाखण्डलस्य ।
येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते,
बर्हेणेव स्फुरित-रुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ॥
मेघदूतम् पूर्वभाग-5,15.

2. त्वं कृष्ण गोरजो राधिकायाः अपनयन । [संस्कृतछाया]
गाथा-सप्तशती : काव्यमाला, पृ० 44.

महाभारत तथा अन्य पुराणों में गोपीजनवल्लभ और रुक्मिणी के पर्याप्त उल्लेख हुए है ।[1] भागवत, ब्रह्म, विष्णु, पद्म, हरिवंश - ब्रह्मवैवर्त, वायु, देवी भागवत, अग्नि और लिंग पुराण आदि के अनुसार यह कहा जा सकता है कि इस समय तक श्रीकृष्ण का अवतारवादी रूप व्यापक प्रसार प्राप्त कर चुका था । कहीं उन्हें विष्णु का अंशावतार कहा गया है, और कहीं उन्हें साक्षात् भगवान् और ब्रह्म कहा गया है ।[2]

यह अवलोकनीय है कि प्रारम्भ में भारतीय वाङ्मय में श्रीकृष्ण को अंशावतार की मान्यता प्राप्त थी । महाभारत 1/67/91 में इन्हें नारायण का अंशावतार कहा गया है । विष्णु पुराण में कहा गया है कि परमेश्वर के श्याम और श्वेत दो केश कृष्ण और बलराम के रूप में अवतीर्ण होते है ।[3] शंकराचार्य गीता भाष्य में श्रीकृष्ण को हरि का अंशावतार बतलाते है ।[4] श्री रामानुजाचार्य श्रीकृष्ण का विशेष रूप से उल्लेख करते हैं, जबकि मध्वाचार्य "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" इस कथन का समर्थन करते है ।[5]

इस प्रकार पुराण - पर्यालोचन से यह स्पष्ट है कि

---

1. राधा कृष्ण का विकास : डॉ० द्विवेदी ,पृ० 12.
2. कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् । भागवत
3. विष्णुपुराण 5/7/78,47/24/110
4. श्रीम कृष्ण: विश सम्प्रदाय - शंकर गीताभाष्य- पृ० 14.
5. भागवततात्पर्यनिर्णय, पृ० 122.

श्री कृष्ण भगवान् विष्णु के पूर्णावतार हैं । पुराणों में श्रीकृष्ण के अवतार-वादी स्वरूप का व्यापक प्रचार और प्रसार हुआ है ।[1] ब्रह्म, विष्णु, पद्म, हरिवंश, ब्रह्म - वैवर्त, भागवत, वायु, देवीभागवत, अग्नि और लिंग पुराणों में अवतार-वाद का पल्लवित रूप दर्शनीय है । अवतार वाद का परम प्रयोजन धर्म संस्थापन ही है ।

भगवान श्रीकृष्ण के अवतारी व्यक्तित्व और उनके अलौकिक कृतित्व के कारण उनके अनेक उपास्य साम्प्रदायिक रूपों का विकास परवर्ती काल में देखने को मिलता है ; यह उनके साक्षात् विष्णु के अवतारी होने का उत्कट प्रमाण है । तदनुसार निम्बार्क, श्री वल्लभ, श्री चैतन्य आदि सम्प्रदायों का विकास हुआ जिनसे श्रीकृष्ण की उपासना-पद्धति के अनेक आयाम प्रस्फुटित हुए । एक समय वह उपस्थित हुआ कि केवल कीर्तन से यह धरा गूंज उठी और श्रीकृष्ण के भक्ति से कृष्ण-मय हो गई ।

<u>राम और श्रीकृष्ण :</u>

मानव विकास की सप्तमावस्था रामावतार में मानव, बुद्धि और शारीरिक बल के साथ-साथ कर्तव्य-परायणता, त्यागभाव, सदाचरण, अनुकम्पा, मर्यादापालन आदि मानवोचित उदात्त गुण यदि प्राप्त होते हैं और इसीलिए उन्हें "मर्यादापुरुषोत्तम" यदि कहा जाता है तो भी श्रीराम का "मानवत्व" कुछ अंशों में अपूर्ण प्रतीत होता है । उनमें

---

1. श्रीमद्भगवद् गीता 4·8

ललित कला रुचि तथा माधुर्य का अभाव है, किन्तु मानव-विकास की अष्टम दशा कृष्णावतार में ये गुण पर्याप्त रूप में विद्यमान हैं । मुरलीधर श्रीकृष्ण का ललित कला प्रेम और पार्थसारथी श्रीकृष्ण की राजनीतिक चतुरता सर्वविदित है । योगेश्वर श्रीकृष्ण ने गीता में जिस उच्च जीवन दर्शन का उपदेश दिया है, उसका महत्व चिरस्थायी है ।

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण मानवता के विकास की चरमावस्था के प्रतीक हैं । इसी से इन्हें विष्णु का अंश-अवतार नहीं प्रत्युत पूर्णावतार कहा जाता है । उनमें "मानव धर्म" पूर्णता को प्राप्त है । इसी पूर्णता के कारण "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" कहा गया है ।[1]

प्रायः सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में श्रीकृष्ण के लौकिक और अलौकिक चरित्रों का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है । पुराणों में विशेष रूप से श्रीमद्भागवत में वे परमैश्वर्य मण्डित, निखिल ब्रह्माण्ड नायक अघटित घटना पटीयान् जगदीश्वर के रूप में चित्रित किए गए हैं । जो वाणी श्रीकृष्ण के चरित्र का कीर्तन नहीं करती, वह वायस तीर्थ के समान उपेक्षणीय तथा गर्हणीय है ।[2]

0000000
000
0

---

1. मानव धर्म : प्रो० पं० सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी, सितम्बर 1945.
2. श्रीमद्भागवत 12/12/50.

स प्त म - अ ध्या य

लेव्योतार - अवतारवाद

स प्त म - अ ध्या य

वैष्णवेतर अवतारवाद

वैष्णवेतर अवतारवाद के अन्तर्गत नवम अवतार के रूप में महात्मा बुद्ध का नाम पुराणों में अत्यन्त श्रद्धा के साथ लिया जाता है। यद्यपि महात्मा बुद्ध वेद विरोधी और कर्मकाण्ड विरोधी थे, किन्तु हमारी भारतीय संस्कृति की प्रवृत्ति उदारता-प्रवण होने के कारण विरोधी धर्म को भी पचाने और आत्मसात् करने वाली रही है। इसीलिए वेदनिन्दक और सनातन वैदिक धर्म के विरुद्ध होते हुए भी महात्मा बुद्ध, अवतार के रूप में पुराण ग्रन्थों में प्रतिष्ठित हुए हैं।[1]

श्रीकृष्ण आदि ऐतिहासिक अवतारों के समान महात्मा बुद्ध भी ऐतिहासिक महापुरुष हैं। सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति और पुराणों में महात्मा बुद्ध को अवतारों में जो स्थान मिला है, उसका अवतारवाद की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है क्योंकि पुराणों में वर्णित भी - बुद्ध वैष्णवेतर बौद्ध धर्म के जनक हैं। और बौद्ध अवतारवाद से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। वह धार्मिक आन्दोलन के प्रवर्तक के रूप में विश्वविख्यात हैं। इतिहासकार ई०पू० पंचम शताब्दी उनका जन्म समय मानते हैं।

बौद्ध साहित्य में बुद्ध के अवतार की कथा प्रचुर रूप में प्राप्त होती है, तदनुसार महायानी ग्रं० "सद्धर्मपुण्डरीक" में अवतारिता:

---

1. भारतीय संस्कृति पृ० 268
मुनिया

अवतीर्ण', आत, उत्पन्न और प्रादुर्भाव आदि शब्दों के प्रयोग पर्याप्त रूप में प्राप्त होते हैं।[1]

इसके अतिरिक्त बौद्ध-साहित्य के अन्य ग्रन्थों यथा - 'तथागत गुह्यक', 'मंजु श्रीमूलकल्प' आदि में भी अवतरण, कायवतरण, अवतारचैत्य समागत, आविष्ट आदि बुद्ध के अवतार युक्त शब्द मिलते हैं।[2] राहुल सांकृत्यायन और बागची द्वारा सम्पादित दोहाकोशों में "त्रिविशिष्ट निर्माण-काया अवतरे" और "बोधिसत्व अवकम्पित अवतरे" इत्यादि वाक्य-प्रयोगों से यह सिद्ध हो जाता है कि बौद्ध साहित्य में भी महात्मा बुद्ध को ईश्वर का अवतार माना जाने लगा था। इससे इस धारणा को पुष्टि मिलती है कि पुराणों में दशावतारों के मध्य बुद्धावतार के परिगणित होने के पूर्व महात्मा बुद्ध, बौद्ध धर्म में अवतार, अवतारी और उपास्य तीनों रूपों में प्रतिष्ठि प्राप्त कर चुके थे। अनेक बौद्ध-स्तूपों में महात्मा बुद्ध की मूर्ति की पूजा उपर्युक्त अवधारणा में प्रमाण है।

जैसे विष्णु के अन्य अवतारों में अलौकिक कथाओं की प्राप्ति होती है, या अन्य लोकोत्तर-व्यक्तियों के जन्म में अलौकिकता विद्यमान है, उसी प्रकार महात्मा बुद्ध के जन्म में अलौकिता का वर्णन उपलब्ध होता है - जिस प्रकार प्राचीनकाल में बोधि' का जन्म माता की

---

1. सद्धर्मपुण्डरीक, 136, 301, 128, 125.
2. तथागत गुह्यक, पृष्ठ-2, 99, 128.

जंघा से, महाराज पृथु का हाथ से, इन्द्र के समान प्रतापी मान्धाता का मस्तक से, महर्षि कक्षीवान् का काँख से उसी प्रकार गौतम बुद्ध का जन्म माता के पार्श्व से हुआ था ।[1]

जन्म के समय वह बालक बाल-सूर्य के समान दीप्तिमान था, पूर्ण चन्द्र के समान मनोहर था, वह नवजात शिशु तुरन्त उठकर सात पग चलता है और चारों ओर देखकर भविष्यवाणी करता है - मैंने जगत् के हित के लिए और बोध प्राप्ति के लिए जन्म धारण किया है, संसार में मेरी यह अन्तिम उत्पत्ति है ।[2]

महामहिम व्यक्तित्व के पृथ्वी पर अवतीर्ण होने पर कविवर अश्वघोष प्रकृति के उल्लास का वर्णन करते हैं । तदनुसार बुद्ध के जन्मकाल में चन्द्रमा की किरणों के समान श्वेत जल धारायें, एक शीतल और दूसरी गर्म, आकाश से नवजात शिशु के सौम्य मस्तक पर गिरती हैं। हर्षोल्लास के इस अवसर पर पशु पक्षी मधुर स्वर से बोल उठते हैं, नदियाँ और झरने नीरव होकर बहने लगते हैं । चारों ओर का वातावरण स्वच्छ हो जाता है, आकाश में अदाहित हो चमकने लगता है और गगन में दुन्दुभियाँ बज उठता है ।[3] इन अलौकिक घटनाओं और विचित्र वाता-

---

1. अश्वघोष विरचितम् - बुद्धचरितम् 1/10
2. बोधाय जातोऽस्मि जगद्धितार्थं,
   अन्त्या भवोत्पत्तिरियं ममेति ।
   चतुर्दिशं सिंहगतिर्विलोक्य,
   वाणीं च भव्यार्थकरीमुवाच ॥ -बुद्धचरितम् 1/15.
3. जगुः प्रणेदुः मृगपक्षिणश्च शान्ताम्बुवाहाः सरितो बभूवुः ।
   दिशः प्रसेदुः विमलेनिरभ्रेविहायसे दुन्दुभयो निनेदुः ॥
   बुद्धचरितम् - 1/16/26.

जन्म को, शिशु की माता पर होने वाली प्रतिक्रिया का भी चित्रण कवि मनोरम शब्दों में करता है ।

शिशु की माता आनन्द और भय से भर जाती है । ऐसा प्रतीत होता है कि वे मानो शीतल और गर्म धारा से मिली जल की धारा हों । एक ओर वे शिशु की अमानुषिक और अलौकिक शक्ति देखकर आनन्दित होती हैं, दूसरी ओर मातृ सुलभ दुर्बलता से भयभीत भी होती है ।[1]

बुद्ध के अभिनिष्क्रमण पर यशोधरा का विलाप और पुत्र मोह उन्हें मोहित नहीं कर पाता । यशोधरा का कथन है कि मुझे सहधर्म चारिणी को अनाथ कर वे धर्म करना चाहते हैं । किन्तु उन्हें यह नहीं मालूम है कि बिना सहधर्म चारिणी के धर्म और तपस्या अधूरी रहती है । मेरी इच्छा स्वर्ग सुख पाने की नहीं है, क्योंकि किसी भी जितात्मा के लिए स्वर्ग सुख सुलभ है । मेरा तो केवल यह मनोरथ है कि मुझे वे इस लोक में या परलोक में कभी न छोड़ें । यशोधरा नवजात शिशु की ओर निर्देश करती हुई कहती है कि मैं अभागिन हो सकती हूँ किन्तु लम्बी-लम्बी आँख और पवित्र मुस्कान वाले मेरे प्रियतम मुझे सदैव के लिए त्याग दें; किन्तु इस अबोध शिशु का क्या अपराध है कि उसे अपने पिता की [illegible] गोद में खेलने का अवसर न मिले । वे कहती हैं कि आश्चर्य है कि मेरे प्रियतम का बाह्य रूप तो बड़ा सुकुमार है, किन्तु उनका मन अत्यन्त

---

1. बुद्धचरित 1/29

कठोर और दारुण है ; क्योंकि शत्रुओं को भी द्रवित करने वाले एवं तुतलाते हुए इस अबोध बालक को वे छोड़ रहे हैं ।[1]

बुद्ध के वनगमन पर माता- गौतमी शोक करती हुई कहती है कि बुद्ध के चरण मृदु हैं, उनके चरणों के तलुओं पर सुन्दर रेखा जाल खिंचा हुआ है, अंगुलियां लम्बी हैं, पादांगुलियां छिपी हुई हैं, मध्य भाग चक्रांकित है, कमल तन्तु के समान कोमल, ये मृदु चरण वनगमन के योग्य नहीं हैं । राजप्रासाद की छत पर शयन और बैठने से परिचित उनका यह ओजस्वी शरीर, जो बहुमूल्य वस्त्र, चंदन आदि से सुशोभित है, जंगल में ठंड, गर्मी और बरसात के दुःख कैसे सहन कर सकता है । उच्चकुल, बल, तेज, रूप, विद्या, लक्ष्मी और युवावस्था से भूषित उन्हें अन्य लोगों के लिए दान देना उचित है, न कि मांगना । वे दूसरों से कैसे भिक्षा मांगेंगे । जो सोने की शय्या पर सोता था, जो मंगलध्वनि से जगाया जाता था, आज वही वस्त्र के एक छोर से अपूर्ण ढकी हुई भूमि पर कैसे सो सकेगा ।[2]

राजकुमार सिद्धार्थ अपने पिता की आज्ञा मानने को तैयार हैं, वे वन से अब पुनः लौट सकते हैं, यदि उन्हें इन चार बातों के लिए निश्चित आश्वासन मिल जाय । उनका चमत्कार उचित कथनीय है, मेरा जीवन, मरण के लिए न हो और न रोग मेरे इस स्वास्थ्य का हरण करे, जरा मेरे यौवन को नष्ट न करे और न विपत्ति मेरी इस सम्पत्ति का हरण करे ।[3]

---

1. बुद्ध चरित्र 8/61-66, 2. बुद्ध चरित्र 8/55-58,
3. बुद्ध चरित्र 5/33.

इस प्रकार उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट है कि राजकुमार सिद्धार्थ जो बाद में महात्मा बुद्ध के रूप में विख्यात हुए, का न केवल प्रारंभिक जीवन प्रत्युत सम्पूर्ण जीवन अलौकिकताओं से भरा हुआ है ; इसीलिए बौद्ध साहित्य में उनके अवतारवादी रूप का विकास हुआ और उसी तारतम्य में परवर्ती पुराणों में भी विविध अवतारों के मध्य आदर के साथ बुद्धावतार का परिगणन किया गया । इतिहास की दृष्टि से बुद्ध यद्यपि ऐतिहासिक पुरुष के रूप में चित्रित किए गए हैं, फिरभी वे बौद्ध धर्म के प्रवर्तक, महापुरुष और लोकोत्तर चरित्र वाले अतिमानव के रूप में चित्रित किए गए हैं । जनसमूह बुद्ध के प्रति अतिशय श्रद्धा से भर गया था, यद्यपि वैदिक और सनातनी परम्परायें समाज में गहराई से अपनी पैठ बनाए हुई थीं । भदन्त शान्ति भिक्षु के अनुसार बुद्ध के जीवन-काल में ही उन्हें लोकोत्तरत्व की प्रसिद्धि प्राप्त हो गई थी ।[1]

कालान्तर में बुद्ध के जीवन से जुड़े अनेक कथा-प्रसंग प्रस्फुटित हुए, जिससे उनके व्यक्तित्व में दिव्यता और लोकोत्तरता का विकास हुआ । जातक - कथाओं में उपलब्ध उनके दिव्य जन्म की कथाओं से उनके अवतारी होने की बात समाज में प्रकाशित होने लगी थी । जब कोई बुद्ध से देवमन्दिर में जाने के लिए कहता था तो वे कहा करते थे कि मुझसे बढ़कर कौन देवता है । मैं देवाधिदेव तो हूँ । भक्तों का विश्वास था कि जब कुमार देवकुल में अपना दक्षिण चरण रखते थे तो उस समय अचेतन्य देव-प्रतिमायें उनके चरणों में नमन करती थीं और अपने स्वरूपों

---

1. मज्झिमनिकाय 71 सुत्त - महायान पृष्ठ 17.
2. ललित - विस्तर, पृष्ठ 136-137.

का परिचय देती थी ।[1]

बौद्ध-साहित्य से यह विदित होता है कि जब 'तथागत' श्रावकों के साथ यमक - प्रातिहार्य करते थे तो उनके ऊपर के शरीर से तेजो-राशि अग्निस्फुलिंग निकलता था और शरीर के अधोभाग से जलधारा फूट पड़ती थी । वे देवता और मनुष्यों को दर्शन देते देते 6 वर्णों की रश्मियाँ छोड़ देते थे ।[2] इसके बाद उनके अलौकिक चमत्कारों से प्रभावित होने वाले भक्तों की संख्या निरन्तर बढ़ने लगती है । उनके अनुसरण कर्ताओं को-तब भक्त भिक्षु एकमात्र यही परामर्श देने लगते हैं कि महानाम, तुम तथागत, का स्मरण करो । वे भगवान अर्हत सम्यक् सम्बुद्ध, विद्याचरण सम्पन्न, सुगत लोकविद् अनुपम सारथी, देव-मनुष्यों के शास्ता हैं ।[3]

'तथागत' के भक्तगण सम्पूर्ण विश्व को बुद्धमय देखने लगे थे । वे अनन्त बुद्धों और बोधिसत्वों की उपमा गंगा की रेणुका से देते थे ।[4] इससे स्पष्ट है कि महात्मा बुद्ध को बौद्ध साहित्य में ईश्वर का अवतार माना जाने लगा था । बाद में भी 24 जैन तीर्थंकरों की भाँति भी बुद्धों की परम्परा विकसित हुई, जिस पर जैन धर्म का प्रभाव परिलक्षित होता है ।

अवतार-प्रयोजनों की दृष्टि से बुद्धावतार का प्रयोजन वैष्णव-अवतारों के प्रयोजन से कुछ समानता रखता है । वैष्णव अवतार

---

1. ललित विस्तर, पृष्ठ 136-137.
2. बुद्धचर्या, पृष्ठ 86-89.
3. बुद्धचर्या, पृष्ठ 165.
4. सद्धर्म पुण्डरीक पृष्ठ 302, 14/9.

प्रयोजनों के सम्बन्ध में श्रीमद्भगवद् गीता में वर्णित प्रयोजनों में सज्जन परित्राण इत्यादि की भाँति बुद्धावतार का भी प्रयोजन मानव के दुःख और अज्ञान का उन्मूलन है । बुद्ध कृपा और करुणा की मूर्ति हैं, वे दुःख क्षय, अज्ञान को दूर कर मृत्यु का नाश और विश्व में शान्ति स्थापित करते हैं ।[1] इन्हें बौद्ध ग्रन्थों में नारायण का साक्षात् अवतार के रूप में चित्रित किया गया है ।[2]

भारतीय संस्कृति की अपनी एक सर्वोपरि विशेषता विरुद्ध धर्मों और विचारों को आत्मसात् करने की रही है । अपनी मुख्य धारा से जोड़कर समन्वयवाद ही इसका प्रयोजन प्रतीत होता है । इसीलिए जब बुद्ध अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचे और उनका प्रभामण्डित व्यक्तित्व लोक विश्रुत हुआ तो उनके वेदविरोधी होने पर भी पुराणकारों ने अवतार परम्परा के अन्तर्गत उन्हें आदरणीय स्थान दिया । फलतः ब्राह्मण धर्म में उन्हें विष्णु का अवतार माना जाने लगा ।

दक्षिण-भारत के "महाबलिपुरम" में पर्वत से काट-कर बनाये गए मन्दिर में एक शिलालेख उपलब्ध होता है जिसमें एक अद्भुत शिला-लेख प्राप्त होता है । उसमें "बुद्ध" को नवम अवतार के रूप में दर्शाया गया है ।[3] इस शिलालेख का समय सप्तम शताब्दी माना जाता

---

1. ललित विस्तर, पृष्ठ-23.
2. वही, पृष्ठ 126.
3. ...... इत्थं नरसिंहश्च वामनः ।
   रामो रामश्च रामश्च बुद्धः कल्किरितीरिता ॥ -पुराणविमर्श, पृ0-192.

है । इधर मध्य शताब्दी में काश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र भी अपने प्रसिद्ध काव्य दशावतार चरितम् में बुद्ध को नवम अवतार के रूप में चित्रित करते हैं।[1]

पुराणों में भी बुद्ध प्रायः सर्वत्र अवतार के रूप में चित्रित किए गए हैं । श्रीमद्भागवत में कहा गया कि वेद विरोधी असुरों के सम्मोहनार्थ कलियुग में बुद्धावतार होगा ।[2]

अग्नि पुराण 16·2, भविष्य पुराण 4·12·26-29, भागवत 2·7·37, 6·8·19, 10·40·22, एवं 11·4·23 में बुद्धावतार पुराणों में बहुधा वर्णित है । महाभारत शान्तिपर्व 3·48 में भी दशावतारों के मध्य बुद्ध का स्मरण किया गया है । अग्निपुराण में तो बुद्ध की मूर्ति का निम्नांकित वर्णन प्राप्त होता है -

शान्तात्मा लम्बकर्णश्च गौराङ्गश्चाम्बरावृतः ।
ऊर्ध्वपद्मस्थितो बुद्धो वरदाभयदायकः ॥
-अग्निपुराण 49/8.

जिसके अनुसार महात्मा बुद्ध शान्त आत्मा वाले, लम्बे कानों वाले, गौरांग, कमलासन में स्थित अभयदान देने वाले और जीवों पर करुणा तथा कृपा करने वाले हैं ।[3]

विक्रम की प्रारम्भिक शताब्दियों बौद्ध धर्म का अत्यधिक उत्थान हुआ था । इसका कारण राज्याश्रय था । मौर्य सम्राट अशोक कलिंग युद्ध में हुए नरसंहार से इतना सन्तप्त हो गया था कि उसने सदा के लिए युद्ध से विराम ले लिया और उसने बौद्ध धर्म को राजधर्म बनाया.

---

1. दशावतार-चरितम् 9.
2. ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम् ।
   बुद्धो नाम्ना जिनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥ भागवत 1/3/24.
3. अग्नि पुराण 49·8

उसके प्रचार एवं प्रसार के लिए देश-देशान्तर में बौद्ध भिक्षुओं को राज्य की ओर से भेजा । अहिंसा, दया और करुणा का पुनर्जागरण हुआ । भारत के पड़ोसी देशों, चीन, जापान, जावा और सुमात्रा आदि में बौद्ध धर्म को आदर के साथ स्वीकार किया गया । यद्यपि अष्टम शताब्दी के आसपास कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य इत्यादि प्रसिद्ध दार्शनिकों ने बौद्ध दर्शन के सिद्धान्तों का प्रबल खण्डन किया जिससे भारत में, कालान्तर में बौद्ध-धर्म की जड़ें हिल गईं ।[1] फिरभी बौद्ध धर्म अपनी मध्यममार्गी विशेषता के कारण तथा अपनी सरलता और व्यावहारिकता के कारण पृथ्वी के विशाल क्षेत्र को प्रभावित करता रहा है ।

बौद्ध-धर्म एक साम्यवादी धर्म रहा है जिसने जनसाधारण के लिए बिना किसी भेदभाव के धर्म तथा सबके लिए मोक्ष के द्वार खोल दिए थे । बौद्ध धर्म के अनुसार सभी मनुष्य समान हैं और सभी मोक्ष के अधिकारी हैं । दूसरी ओर बौद्ध धर्म एक मध्यममार्गी धर्म है जिससे यह धर्म सबके लिए सुगम, सहज और अनुकरणीय बना रहा है ।

बुद्ध का आकर्षक व्यक्तित्व और उनका पवित्र चरित्र इस धर्म की आत्मा रही है । उनका चरित्र इतना सरल, पवित्र, उच्च और निष्कलंक था कि जो कोई भी उनके सम्पर्क में आया, उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहा ।

बुद्ध की इन्हीं अलौकिक-असामान्य विशेषताओं के कारण पुराणों में अवतार-परम्परा के अन्तर्गत एक अवतार के रूप में सम्मानित

---

1. तन्त्र वार्तिक (जैन सूत्र 1·3·7) कुमारिल भट्ट.

स्थान प्राप्त हुआ है । सारनाथ, बोधगया आदि उनके प्रसिद्ध तीर्थ उनके अवतारी होने का स्मरण दिला रहे हैं ।[1]

कल्कि अवतार :

विष्णु के दशावतारों में भगवान् "कल्कि" दसवें अवतार माने जाते हैं । कल्कि भविष्य में होने वाले अवतार हैं । महाभारत में कल्कि का उल्लेख प्राप्त होने लगता है किन्तु "कल्कि" का भविष्य में अवतार होने के कारण विद्वानों का अधिक ध्यान इधर नहीं गया है । इसलिए समुचित रूप से इनकी ऐतिहासिकता की ओर प्रकाश नहीं डाला जा सका । वैष्णव धर्म से इनके सम्बन्ध का निर्धारण भी अत्यधिक दुष्कर कार्य है । विद्वानों ने एक तो कुछ राजाओं कोकल्कि के रूप में मान्यता प्रदान की है और दूसरी ओर कल्कि के जैन और बौद्ध रूप भी मिलते हैं । अतः इनके ऐतिहासिक रूप की स्थूल रूपरेखा भी खींचना दुष्कर कार्य है ।

पुराणों में कल्कि का वर्णन कुछ परिवर्तन के साथ लगभग समान रूप से प्राप्त होता है । महाभारत से लेकर कल्कि-पुराण तक इससे सम्बन्धित लगभग एक ही प्रकार का कथानक प्राप्त होता है । महाभारत में एक वर्णन प्राप्त होता है जिसमें कलियुग की दुरवस्था का चित्रण है ।[2] जिसके अनुसार यह विदित होता है कि जब कलियुग में पाप

---

1. प्राचीन भारतीय संस्कृति - बी०एन०लूनिया, पृष्ठ 283.
2. महाभारत - वनपर्व 3/190/96-97.

अत्यधिक बढ़ जायेगा तो युगान्त में किसी ब्राह्मण के घर में एक महान शक्ति सम्पन्न बालक अवतार लेगा । जिसका नाम विष्णु यश कल्कि होगा । यह भी कहा जाता है कि वाहन, अस्त्र शस्त्र आदि उसकी इच्छानुसार उसके पास स्वतः पहुंच जायेंगे । उसके अवतार का प्रयोजन म्लेच्छों का नाश तदनन्तर कलियुग की समाप्ति बताई गई है ।[1]

विष्णु पुराण की एक कथा के अनुसार यह बतलाया गया है कि सम्भल निवासी विष्णु यश के पुत्र वासुदेव के अंशावतार भगवान् कल्कि का अवतार होगा, जो म्लेच्छों का नाश कर पृथ्वी में धर्म की स्थापना करेंगे ।[2]

श्रीमद्भागवत पुराण के अनेक स्थलों में भगवान् कल्कि के पावन अवतार होने की कथा प्राप्त होती है । इसमें कहा गया है कि कलियुग के अन्त में विष्णु यश के पुत्र दस्युदल का विनाश करेंगे और सनातन वैदिक धर्म की स्थापना कर सत्ययुग का प्रवर्तन करेंगे । इस प्रकार इस पृथ्वी में पुनः धर्म प्रतिष्ठित होगा ।[3]

इसी प्रकार हरिवंश पुराण 1·41, ब्रह्म पुराण 10·4, मत्स्य पुराण 47·245, 47·246; नरसिंह पुराण द्वितीय भागवतादि में कल्कि के भावी अवतार की कथा प्राप्त होती है । कल्कि अवतार को भाग्यसम्पन्न या भाग्य – सम्पन्न बतलाया गया है ।

---

1. महाभारत 12/339/29-38
   वही 3/190/96-97.
2. विष्णु पुराण 4/24.98
3. भागवत 1/3/25, 2/7/38, 11/4/22.12/2/18-23,

अन्य अवतारों के प्रयोजन के समान ही इस अवतार के प्रयोजन बतलाए गए हैं। तदनुसार वैदिक धर्म की स्थापना और अधर्म का विध्वंसन करना ही इस अवतार का परम प्रयोजन है। कविवर क्षेमेन्द्र कल्कि अवतार के साथ कलियुग का वर्णन करते हैं, म्लेच्छों और दुष्ट राजाओं का संहार उनका प्रयोजन मानते हैं।[1]

गीतगोविन्दकार जयदेव भी इसी रूप में भगवान कल्कि का ललित वर्णन करते हैं।[2] अतः प्रसिद्ध प्राच्यविद्याविशारद काशी प्रसाद जायसवाल ने कल्कि को इतिहास पुरुष "यशोधर्मन" से सङ्कल्पित किया है। उनके अनुसार यशोधर्मन ही कल्कि अवतार हैं। क्योंकि पुराणों में प्राप्त वर्णन के अनुसार यशोधर्मन ने ही म्लेच्छ हूणों को पराजित किया था।[3]

कुछ भी हो प्रायः सभी पुराणों में कल्कि अवतार

---

1. दशावतार चरितम्, कल्कि अवतार 37.
2. गीत गोविन्द, पृष्ठ 1.10.
3. इण्डियन एण्टिक्वेरी, 1918, पृष्ठ 145.

का वर्णन किया गया है और वे दशावतार-परम्परा में दशम स्थान पर बड़े आदर के साथ स्मरण किए गए हैं । प्रायः सभी अवतारों की भाँति इस अवतार का भी लोक में यही प्रयोजन है ।[1]

इसके अतिरिक्त जैन ग्रन्थों और बौद्ध ग्रन्थों में भी कल्कि अवतार की चर्चा प्राप्त होती है, इससे इस अवतार की व्यापकता सिद्ध होती है ।[2]

0000000
00000
000
0

---

1. परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
   धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥
   गीता 4/7-8.

2. प्रभावक-चरित्र , पृष्ठ 22/27.

अष्टम अध्याय

उपसंहार

अ ष्ट म - अ ध्या य

उपसंहार

जैसाकि उपर्युक्त पर्यालोचन से विदित हो जाता है कि अवतारवाद की अवधारणा और उसके बीज वैदिककाल में विद्यमान है। विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद संहिता 6/25/2 में अवतारीः शब्द का प्रयोग हुआ है। यद्यपि सायणाचार्य के अनुसार उक्त ग्रन्थ में आए हुए अवतारीः शब्द का अर्थ विघ्न, बाधा अथवा अन्तराय आदि है। इस मन्त्र में यजमान इन्द्र से प्रार्थना करता है कि हे इन्द्र आप मेरी इन स्तुतियों से मेरी विघ्न-बाधाओं को दूर कर दीजिए। विघ्ननिवारण का जो कार्य वैदिककाल में इन्द्र देवता के द्वारा सम्पादित होता था, वही कार्य अवतार का भी प्रयोजन है क्योंकि विष्णु के अनेक अवतार अनेक रूपों में प्रत्येक युग में सज्जनों के परित्राण के लिए दुष्टों के विनाश के लिए, धर्म की संस्थापना के लिए, अधर्म के उन्मूलन के लिए होता रहा है। गीता में श्रीकृष्ण का अर्जुन से यह कथन कि जब-जब धर्म की हानि होती है और अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तब-तब मैं प्रत्येक युग में अवतार लेता हूँ।[1] इससे यह विदित होता है कि वैदिक काल में इन्द्र के द्वारा संकट निवारणीय जो कार्य किया जाता था। वही कार्य बाद में विष्णु ने नाना अवतारों

---

1. श्रीमद्भगवत् गीता 4/7-8.

के माध्यम से किया । सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता के अनुशीलन-परिशीलन से यह बात और अधिक स्पष्ट हो जाती है कि ऋग्वेद काल में अवतार की अवधारणा विद्यमान थी । उसमें यह स्पष्ट बतलाया गया है कि इन्द्र अपनी माया से अनेक रूप धारण करता है ।[1]

ऋग्वेद 18•3•5 में "अवत्तर" शब्द का प्रयोग हुआ है । सायण के अनुसार "अवत्तर" शब्द का अर्थ अतिशय रक्षण है । यह ज्ञातव्य है कि अवतारवाद के प्रयोजन में रक्षा का महत्वपूर्ण स्थान रहा है । इसी प्रकार यजुर्वेद 17/6 में भी "अवत्तर" शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। यहाँ इसका अर्थ उतरने के अर्थ में किया गया है । अवतारवादी परिकल्पना में अवतार शब्द का अर्थ उतरना भी होता है । इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण 1/8/1•1, तैत्तिरीय ब्राह्मण 1/1/3-5, आदि में भी अवतार शब्द का प्रयोग हुआ । इन सभी यह सिद्ध होता है कि वैदिक काल में "अवतार" के बीज पूर्व से विद्यमान है । इधर ईसापूर्व सप्तम शताब्दी के महावैयाकरण पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में "अवतार" शब्द की व्युत्पत्ति बतलायी है ।[2] व्याख्याकारों ने "अवतार" शब्द का अर्थ कुंए में उतरना बताया है। वामन जयादित्य ने उदाहरण के तौर पर अवतारः कूपादेः का प्रयोग किया है । "अवतार" शब्द के पर्यायवाची के रूप में उतरना, पार होना, शरीर धारण करना, जन्म ग्रहण करना, प्रादुर्भाव, अतीर्ण आदि शब्दों का

---

1. ऋग्वेद संहिता 6•47•18,
2. अष्टाध्यायी 3/3/120,

प्रयोग प्राप्त होता है ।

"अवतार" शब्द का अर्थ उत्पत्तिमूलक भी है । इसकी प्रथम प्रतीति यजुर्वेद 21/19 से होती है जिसमें कहा गया है कि पुरुष यद्यपि अजन्मा है फिरभी वह जन्म लेता है । इस प्रकार यह सुस्पष्ट हो जाता है कि अवतारवाद की मूल प्रेरक सामग्री वैदिक साहित्य में सन्निहित है । कुछ वैदिक मन्त्रों एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में विष्णु को त्रिविक्रम अर्थात् तीन पदों से तीन लोकों को जीत लेने वाला कहा गया है और उन्हें इन्द्र का सखा भी बतलाया गया है जिससे वामनावतार व नृसिंहावतार की ध्वनि निकलती प्रतीत होती है, किन्तु ध्यान देने की बात है कि वैदिक काल में विष्णु प्रधान देवता नहीं थे और न उस समय आज की भाँति अवतार के रूप में पूजा ही होती थी ।

कालान्तर में जब भारतीय चिन्तन में भागवत-सम्प्रदाय का उदय होता है और पुराण साहित्य की सृष्टि होती है । तब अवतारवाद का उत्कर्ष हमारे समक्ष उपस्थित होता है । भगवान रामावतार व कृष्णावतार की भक्ति का प्रारम्भ अवतारवाद की प्रतिष्ठा का सुदृढ़ निदर्शन है ।

महाकाव्यकाल में अवतारवाद अपनी सर्वश्रेष्ठता के साथ प्रकट होता है । महर्षि वाल्मीकि प्रसिद्ध रामकथा के साथ आदि काव्य रामायण का प्रणयन करते हैं । इधर द्वापर में बादरायण, वेद-व्यास महाभारत के माध्यम से और उसी के अन्तर्गत स्थित श्रीमद्भगवद्गीता से श्रीकृष्णावतार को चर्चित करते हैं । श्रीराम और श्रीकृष्ण, श्रीविष्णु की

के अवतार माने जाते हैं और तब से वह भक्तों के 'उपास्य रूप में प्रचलित हो जाते हैं। रामायण और महाभारत दोनों ही महाकाव्य अवतार-वाद की दृष्टि से महत्वपूर्ण माने जाते हैं। महाकाव्यों के अनेक पात्र अंशावतार माने जाते हैं। पुनर्जन्म और अवतारवाद की घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिए भी भिन्न-भिन्न युगों में भिन्न प्राणियों का अवतार होता रहता है। श्रीराम मनुष्य के रूप में अवतार लेते हैं और उनके साथ,अनेक अंशावतार जन्म ग्रहण करते हैं। नारायण विष्णु ही स्वयं श्रीराम के रूप में अवतार ग्रहण करते हैं और रावण का वध कर देवताओं और सज्जनों को भयमुक्त करते हैं। वाल्मीकि रामायण में श्रीराम ने अपने जिन अलौकिक सामर्थ्य का प्रदर्शन किया है, उससे उनका ईश्वरत्व प्रगट होता है। कोई अनीश्वर व्यक्ति सभी प्राणियों को अभयदान नहीं दे सकता। हनुमानजी का रावण के समक्ष यह कथन कि श्रीराम समस्त लोकों की और समस्त चर अचर का संहार कर सकते हैं। चतुरानन ब्रह्मा, त्रिपुरारि रुद्र,सुरेश्वर महेन्द्र युद्ध में श्रीराम के समक्ष नहीं ठहरने में समर्थ नहीं हैं। इन कथनों से श्रीराम का ईश्वरत्व प्रगट होता है. आदिकाव्य रामायण के अनुसार अवतारवाद का प्रयोजन असुरों का विनाश सज्जनों का परित्राण, धर्म की स्थापना, और अधर्मोन्मूलन है। इस प्रकार स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण में अवतारवाद का समुन्नत रूप देखने को मिलता है जिसमें श्रीराम को विष्णु का अवतार माना गया है।

रामायण के अनन्तर महाभारत के अन्तर्गत श्रीमद्भगवद् गीता में अवतारवाद के सैद्धान्तिक रूप के दर्शन होते हैं। गीता में वर्णित

अवतारवाद की अवधारणा से प्रायः सभी अर्वाचीन पुराण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हैं। गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से यह कहते हैं कि पूर्वकाल में मेरे और तुम्हारे बहुत से जन्म हो चुके हैं। उन सबको मैं जानता हूं। तुम नहीं जानते क्योंकि पाप-पुण्य आदि संस्कारों से ज्ञानशक्ति आच्छादित हो रही है। किन्तु मैं नित्य शुद्ध-बुद्ध और मुक्त स्वरूप हूं। इसलिए मेरी ज्ञान शक्ति आवरण रहित है। इसलिए मैं सब कुछ जानता हूं। वे अर्जुन से स्पष्ट कहते हैं कि धर्म की स्थापना, सज्जनों का परित्राण ही मेरे अवतार का प्रयोजन है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण को विष्णु जी का पूर्णावतार माना जाता है।

पुराणों में अवतार का विशिष्ट अर्थ और प्रयोजन है। तदनुसार किसी महनीय शक्ति सम्पन्न भगवान या देवता का नीचे के लोक में ऊपर से उतरना तथा मानव या अमानव रूप धारण करना है। इसी अर्थ में आविर्भाव शब्द का प्रयोग भी मिलता है।

श्रीमद्भागवत के अनुसार सृष्टि के आदि में भगवान लोकों के निर्माण की इच्छा करते हैं। इच्छा के साथ ही वे महत्तत्त्व से युक्त पुरुष का रूप धारण करते हैं जिसमें दस इन्द्रियां, एक मन और पंच महाभूत आदि सोलह कलाओं की कल्पना की जाती है। भगवान का यही पुरुष रूप नारायण कहलाता है। जो अनेक अवतारों का अक्षयकोष है। इसी से सारे अवतार प्रकट होते हैं। इस रूप के छोटे से छोटे अंश से देवता, पशु, पक्षी और मनुष्य आदि योनियों की सृष्टि होती है।

इसमें पुराणों में अवतार की प्रक्रिया के सम्बन्ध में चार मत प्राप्त होते हैं जिनमें अवतारवाद का विकास लक्षित होता है । प्रथम मत के अनुसार भगवान अपनी दिव्य मूर्ति का सर्वांशतः परित्याग करते हैं और भूतल पर अवतार लेते हैं । भूतल पर उनका यह अवतरण नवीन जन्म ग्रहण करके भी हो सकता है और बिना जन्म धारण किए, रूप परिवर्तन के द्वारा भी हो सकता है । दूसरे मत के अनुसार जब - जब अधर्म की वृद्धि होती है और धर्म का ह्रास होता है तब भगवान् अपने स्वरूप को दो भागों में विभक्त करते हैं और स्वल्पांश से अवतार लेकर पृथ्वी में धर्म की रक्षा करते हैं । तीसरे मत के अनुसार विष्णु अपना मूर्ति के दो भाग कर देते हैं । पहली मूर्ति स्वर्ग लोक में स्थित होकर तपस्या करती है और दूसरी मूर्ति योगनिद्रा का आश्रय लेकर प्रजाओं की सृष्टि एवं संहार करती है । एक सहस्त्र युगों तक यह मूर्ति शयन करने के पश्चात् अपनी वासुकि शैय्या से उठती है और कार्य के अनुसार आविर्भूत होती है ।[1] चतुर्थ मत के अनुसार विष्णु अपनी मूर्ति को चार भागों में विभक्त करते हैं जिनमें एक निर्गुण और तीन मूर्तियाँ सगुण होती हैं ।[2] श्री विष्णु पुराण का यह भी कथन है कि विष्णु का जो परम तत्व है वह अचिन्त्य है । उनका जो रूप अवतारों में प्रगट होता है, उसी की देवगण उपासना करते हैं । इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि परब्रह्म विष्णु धर्मार्थ-प्रयोजन के लिए अपने तत्वांश से

---

1. ब्रह्म पुराण 72/2-3 तथा 9; हरिवंशपुराण प्रथमखण्ड 41/18-20.
2. ब्रह्म पुराण 71/16.

अवतार ग्रहण करते हैं । अवतारवाद के सम्बन्ध में युगल अवतार का वर्णन मिलता है । विष्णु और लक्ष्मी के अनेक युगल अवतार होते हैं और इसी प्रकार देव: तिर्यक्, और मनुष्यादि में पुरुषवाची भगवान हरि के अवतार हैं और स्त्रीवाची देवी लक्ष्मी के अवतार हैं । विष्णु जब-जब अवतार ग्रहण करते हैं, तब - तब लक्ष्मी भी उन्हीं के साथ अवतरित होती है ।[1] इसीलिए हम देखते हैं कि हरि: लक्ष्मी, परशुराम और पृथ्वी, राम और सीता, कृष्ण और रुक्मणी का युगल अवतार होता है ।

श्रीमद्भागवत महापुराण में अवतारवाद का विकास दर्शनीय है । इसके अनुसार सृष्टि के आदि में भगवान लोकों के निर्माण की इच्छा से षोडश कलाओं से युक्त होकर अवतार ग्रहण करते हैं जिस प्रकार एक विशाल सरोवर से सहस्त्रों जलस्रोत निकलते हैं, उसी प्रकार सत्त्वमय श्रीहरि के असंख्य अवतार हुआ करते हैं।[2] भागवत में ऐश्वर्य, तेज, इन्द्रिय, बल-मनोबल, शरीरबल, सौन्दर्य, लज्जा, वैभव, विभूति आदि भगवत्ता स्वरूप सभी परमतत्त्व के लीलावतारों की संज्ञा प्रदान की गयी है और इस प्रकार भागवत 2·7 में चौबीस लीलावतारों का वर्णन प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवत गीता के श्लोक अवतारवाद के मेरुदण्ड के समान है । इन्हीं का प्रभाव पुराणों में दिखाई देता है । यदि ईश्वर समय-समय पर अवतार धारण न करते तो यह क्षुद्र जीव परमात्मा के अलौकिक सौन्दर्य, पारिषिकमाधुर्य,

---

1. विष्णु पुराण 9/1/22.
   वही 1/9/34-35
2. श्रीमद्भागवत पुराण 1/3/36.

अद्भुत आकर्षण, हास्य विलास, अनेक गुण- गुम्फन, रमणीय ललित-भावना अलौकिक आभा से प्रकाशित उनके रूप सौन्दर्य के ज्ञान से वंचित रह जाता। यह जीवात्मा ईश्वर के अवतार के प्रति भक्तियुक्त होकर पवित्र हो जाता है।

वैष्णव अवतारों की प्रयोजन-समानता भी अवलोकनीय है। ईश्वर के अवतार का प्रमुख प्रयोजन अलौकिक रागात्मिका भक्ति का विस्तार है। इसके अतिरिक्त धर्म संस्थापना और ज्ञान का विस्तार भी उल्लेख्य प्रयोजन है क्योंकि ईश्वर के द्वारा प्रवाहित ज्ञान गंगा की अमृत बूँदों से मानव जीवन कल्याणमय और धन्य हो जाता है। ज्ञान से ही जीव के बन्धन खुल जाते हैं और वह मोक्ष प्राप्त करता है। ईश्वर के अवतार के यह भी प्रयोजन है। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता प्रतीत होता है कि अवतारवाद की जो अवधारणा वैदिक काल में बीज रूप में विद्यमान थी, वह महाकाव्यकाल और पुराणकाल में पल्लवित व पुष्पित हुई है। इस प्रकार धर्म संस्थापनार्थ और सज्जनों के परित्राण आदि विविध पवित्र प्रयोजनों के लिए भारतीय संस्कृति में अवतार का महत्व अप्रतिम है। पुराणों में अवतारवाद के परिगणन में मत-मतान्तर प्राप्त होते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीराम और श्रीकृष्ण अवतार के रूप में निर्दिष्ट हैं तो महाभारत के शान्तिपर्व में दश अवतारों का वर्णन प्राप्त होता है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत में अवतारों की संख्या कहीं 22

बतलाई गई है और कहीं 14 बतलाई गई है । लघु भागवतामृत में अवतारों की संख्या 25 बताई गई है । अनेक पुराणों की अवतार सूचियों में भेद दिखायी देते हैं । कुछ पुराणों में 25 अवतारों की चर्चा है किन्तु आगे चलकर अवतारों की यह संख्या दस अवतारों में सिमटने लगती है, महाभारत में दशावतार के सम्बन्ध में, मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण और कल्कि का नाम वर्णित है । इसके पूर्व कुछ एक स्थान पर हंसावतार का नाम मिलता है किन्तु बाद में हंस के स्थान पर अवतारों के मध्य बुद्ध का उल्लेख मिलने लगता है । गीत-गोविन्दकार जयदेव एवं कविवर क्षेमेन्द्र दशावतार-चरित में दस अवतारों का वर्णन करते हैं । इस प्रकार धीरे-धीरे दस अवतारों की परम्परा प्रचलित होती हुई दिखायी देती है । समाज में दशावतारों की उपासना के प्रमाण भी मिलने लगते हैं । गुप्तकाल के निकटवर्ती काल में देवगढ़ में एक दशावतार मन्दिर प्राप्त हुआ है जिसमें दशावतारों की उपासना का प्रमाण मिलता है ।

दशावतार परम्परा का उद्भव हम महाभारत से ही मानते हैं । इसके पश्चात परवर्ती पुराणों में दशावतार परम्परा में स्थिरता दिखाई देता है । अनेक परवर्ती कवि दशावतार का गान करते हैं । दशावतारों में प्रथम मत्स्यावतार, द्वितीय- कूर्मावतार, तृतीय - वाराहावतार, चतुर्थ - नृसिंहावतार, पंचम - वामनावतार, षष्ठ - परशुरामावतार, सप्तम श्रीरामावतार, अष्टम श्रीकृष्णावतार, नवम बुद्धावतार दशम - कल्कि अवतार पुराणों में वर्णित है ।

यद्यपि इन अवतारों का प्रयोजन समान रहता है - धर्म की संस्थापना एवं सज्जन-परित्राण । किन्तु सभी अवतारों की कार्य-शैली भिन्न-भिन्न रही है । सभी अवतारों में अलौकिकता एवं कौतुकता दिखाई देती है ।

इन अवतारों में विकासवाद का सिद्धान्त तिरोहित सा दिखाई देता है । सृष्टि के आदि में जल ही जल था, तब जलचरों के नियन्त्रण के लिए विष्णु का मत्स्यावतार होता है । मत्स्यावतार की कथा वेदों से लेकर पुराणों तक प्राप्त होती है । एक बार नदी के तट पर आचमन करते समय मनु के हाथ में एक मछली का बच्चा अकस्मात आ जाता है । वह मनु से कहता है कि यदि आप पालन पोषण करेंगे और रक्षा करेंगे तो मै आपको पार उतार दूंगा । क्योंकि कुछ समय पश्चात भीषण बाढ़ आने वाली है जिसमें समस्त प्राणियों का विनाश अवश्यम्भावी है । उसी बाढ़ से मै आपकी रक्षा करूंगा । मत्स्यावतार की यह कथा पुराणों में भी कतिपय परिवर्तनों के साथ प्राप्त होती है । जल प्लावन की यह कथा न केवल हमारे देश में, प्रत्युत विश्व के सभी जातियों में प्राप्त होती है ।

इसके बाद कुछ स्थल भाग प्रकट होने लगता है । स्थल भाग में मत्स्यावतार का कार्य समाप्त हो जाता है । अब ऐसे अवतार की आवश्यकता प्रतीत होती है जो जल भाग एवं भूभाग दोनों में रह सकता हो । इसलिए भगवान का कूर्मावतार प्राप्त होता है । यह अवतार के विकासक्रम की द्वितीय अवस्था प्राप्त होती है । कूर्मावतार की कथा वेदों से लेकर पुराणों तक प्राप्त होती है । कहा जाता है कि समुद्र मंथन के

निराधार होने के कारण जब मन्दराचल समुद्र में डूबने लगता है तो समुद्र मंथन में महान प्रत्यूह उत्पन्न हो जाता है । तभी भगवान कच्छपावतार ग्रहण करते हैं और मन्दराचल को अपने ऊपर धारण कर लेते हैं और इसके बाद ही समुद्र मंथन का कार्य पूरा होता है । मन्थन से रत्नों का प्रकट होता है । समुद्र से चतुर्दश रत्न प्रकट होते हैं । भगवान का यह कूर्मावतार जलभाग और थोड़ी मात्रा में प्रकट हुई पृथ्वी दोनों के लिए पर्याप्त था, किन्तु जब पृथ्वी बढ़ने लगती है, उसमें जंगल, पहाड़, नदियाँ आदि का विकास होने लगता है । इसमें कूर्मावतार की उपयोगिता समाप्त हो जाती है ।

इसके पश्चात् एक ऐसे अवतार की आवश्यकता होती है, जो जल में और विस्तृत पृथ्वी में भी विचरण कर सके । इसलिए यह वराहावतार होता है । पृथ्वी जल में डूब जाती है । तब विष्णु वराहावतार धारण कर उसे जल के नीचे से ऊपर निकाल लाते हैं । वे हिरण्याक्ष का भी वध करते हैं । गुप्तकाल में अनेक प्रकार की वराह मूर्तियों के दर्शन प्राप्त होते हैं, जिनमें भू-वराह, आदि वराह, यज्ञ-वराह, नृ-वराह, और प्रलय-वराह आदि मूर्तियों का विकास देखने को मिलता है ।

वराहावतार विकासक्रम की तीसरी अवस्था प्रतीत होता है । इसका वेद पुराण और कवियों के काव्यों में सुन्दरतम वर्णन प्राप्त होता है ।

जंगल और दुर्गम पहाड़ियों और ऊँचे नीचे - भू-भागों का विकास होने के कारण,यह कहा जाता है कि इस अवतार भी प्रासंगिक

नहीं रहा । इसलिए परिस्थितियों के अनुकूल समस्याओं के समाधानार्थ नृसिंहावतार होता है । नृसिंहावतार से यह प्रतीत होता है कि पशुता से ही मनुष्यता का विकास हुआ है ।

नृसिंहावतार की कथा वेदों से लेकर पुराणों तक पर्याप्त रूप में प्राप्त होती है । वे अपने तीक्ष्ण नाखूनों से दैत्यराज हिरण्यकशिपु के हृदय को विदीर्ण करते हैं और भक्त प्रवर प्रह्लाद का कल्याण करते हैं । दुष्टों का विनाश और सज्जनों का परित्राण, धर्म की स्थापना उनके मुख्य कार्य हैं । नृसिंह पुराण तो नृसिंहावतार का सविस्तार वर्णन करता है । नृसिंहावतार विकास की चतुर्थ अवस्था प्रतीत होती है ।

नृसिंहावतार में हिंसा, पशुता और क्रूरता की अधिकता थी । यद्यपि उसमें आधा मानव शरीर विकसित हो रहा था किन्तु उसमें बौद्धिक शक्ति का अभाव था । इसलिए यदि मनुष्य में बुद्धि बल न हो, पशु बल उसका अधिक कल्याण नहीं कर सकता तो इसकी पूर्ति के लिए संभवत: वामनावतार होता है । वामनावतार में शरीर का विकास नहीं था किन्तु उसमें बौद्धिक शक्ति कूट-कूट कर भरी हुई थी । वे अपने तीन पदन्यास से सम्पूर्ण लोकों को नाप लेते हैं । उन्हें वेदों में "उरुगाय" "उरुक्रम" आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है । वेदों से लेकर पुराणों तक वामन की कथा देखने को मिलती है । आज भी बलि और वामन की कथा समाज में लोक-विश्रुत है । बलि यज्ञ कर रहा है ।उसी समय भगवान वामन वहाँ पहुँचते हैं और उससे तीन चरण पृथ्वी की याचना करते हैं । बलि उन्हें तीन चरण पृथ्वी देता है जिससे वे सम्पूर्ण पृथ्वी और

में अवतार लेते हैं । श्रीराम ने भारतीय वाङ्मय को अत्यधिक प्रभावित किया है । आज भी रामावतार भारतीय समाज में कोटि-कोटि लोगों के संताप को दूर कर रहे हैं । हमें राम की तरह आचरण करना चाहिए । रावण की तरह नहीं । यह शिक्षा सभी के लिए विद्वानों के द्वारा दी जाती है । श्री रामावतार की कथा की व्यापकता अवर्णनीय है । श्रीराम में मानवता की पराकाष्ठा देखी जा सकती है । इस अवतार ने भारतीय जनमानस को बहुत प्रभावित किया ।

इसके पश्चात् श्रीकृष्णावतार का वर्णन प्राप्त होता है इस अवतार ने भी भारतीय जनमानस को अत्यधिक उद्वेलित किया है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण को सर्वैश्वर्य-मण्डित, निखिल-ब्रह्माण्डनायक, अघटित-घटना-पटीयान, भगवान् के रूप में वर्णित किया गया है । वही वाणी पवित्र है और श्लाघनीय है जो श्रीकृष्ण के पावन चरितगान में लिप्त है । अनेक पुराणों में श्रीकृष्ण सुन्दरता से वर्णित है । उनकी लीलाएँ सुमधुर हैं । जो सूर्य, अग्नि तथा चन्द्रमा की किरणों को प्रकाशित करते हैं । वह ही भगवान् श्रीकृष्ण हैं । उनकी अलौकिक लीलाएँ मोहित करने वाली हैं । वे महाभारत के महानायक हैं । सज्जनों का परित्राण, दुष्टों का विनाश और धर्म की संस्थापना उनका प्रमुख प्रयोजन है । श्रीकृष्ण विपुल व्यक्तित्व के धनी हैं और विष्णु के पूर्णावतारी हैं । श्रीरामावतार से भी श्रेष्ठतर इस अवतार को माना जाता है । श्री रामावतार में ललित कलाओं के प्रति प्रेम नहीं था । लेकिन श्रीकृष्ण को पाकर ललित कलाएँ धन्य हो जाती हैं । इसीलिए ललित कलाओं में दिव्यता का समावेश

हुआ है ।

उक्त अवतारों के अनन्तर कलियुग में तथागत बुद्ध का शाक्यवंश में अवतार होता है । पुराणों में बुद्धावतार की पर्याप्त चर्चा प्राप्त होती है । यह वैष्णवेतर अवतार है, जिसे भी पुराणों ने आदर के साथ स्वीकार किया है । भगवान बुद्ध एक महान धर्म के प्रवर्तक थे और उनके मन में प्राणीमात्र के लिए करुणा थी । भगवान बुद्ध द्वारा प्रवर्तित बौद्ध धर्म देश-विदेशों में भी अपना प्रभाव शताब्दियों तक बनाये रहा । यह उनकी व्यापकता का प्रमाण है । भगवान बुद्ध के सम्बन्ध में न केवल पुराणों में ही, उनको अवतार के रूप में भी मान्यता मिली है, प्रत्युत उनके सम्बन्ध में अनेक काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ, बुद्धचरित, सौन्दरनन्द आदि संस्कृत में तथा पालि भाषाओं में विपुल साहित्य की सृष्टि हुई है ।

दशम अवतार के रूप में "कल्कि"अवतार का वर्णन प्राप्त होता है । पुराणों का कथन है कि यह अवतार भविष्य में होने वाला है। पुराणों की मान्यता है कि कलियुग के अन्त में जब शासकों के कुकर्मों से प्रजा पीड़ित होगी और अधर्म बढ़ेगा । तब कल्कि का अवतार होगा । पुराणों में किसी सम्भल गाँव में इस अवतार के होने की चर्चा की है । इस अवतार का प्रयोजन भी अन्य अवतारों के प्रयोजन की भाँति धर्म की संस्थापना एवं अधर्म का उन्मूलन है ।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि पुराणों में यद्यपि अनेक अवतारों का वर्णन किया गया है लेकिन दशावतार परम्परा की प्रधानता विशेष रूप से रही है । पुराणों में दशावतारों के रूप, चरित एवं लीला का

कर्म, प्रधान विषय के रूप में प्राप्त होता है ।

उपर्युक्त अवतार हमारी भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं । इन्होंने अपने चरितों और लीलाओं से भारतीय संस्कृति का परिष्कार किया है । भारतीय संस्कृति की समस्त विशेषताएँ इन अवतारों के विपुल व्यक्तित्व में परिलक्षित होती है । हमारी भारतीय संस्कृति के महानायक श्रीराम, श्रीकृष्ण और भगवान बुद्ध हैं । आज भी धर्म की संस्थापना और अधर्म के उन्मूलन के लिए इन अवतारों की प्रासंगिकता बनी हुई है ।

आज हमारे देश भारत में अनीति, अधर्म, अनाचार और पापाचार बढ़ रहे हैं । समाज दूषित हो रहा है । राजनीति कुत्सित हो रही है । सज्जन अपमानित हो रहे हैं, और नारियों का पग-पग पर अपमान किया जा रहा है । नैतिकता के शाश्वत मूल्य विनष्ट हो रहे हैं । इसलिए इस विषम परिस्थिति में महापुरुषों के अवतार की अत्यन्त आवश्यकता है जो पुनः समाज में नीति,धर्म और व्यवस्था की स्थापना कर सके । वर्तमान सन्दर्भ में भी महापुरुषों का अवतार और उनके युगान्तरकारी कार्य सामयिक और सम्प्रति प्रासंगिक है । अवतारों का प्रयोजन लोकमंगलकारी और जनता के आचरण की पुष्टि करना है ।
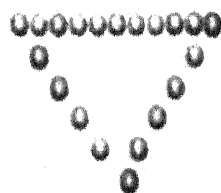
परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ सूची

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद संहिता - सातवलेकर संस्करण, स्वाध्याय मण्डल पारडी सूरत 1957.
2. यजुर्वेद संहिता - आनन्दाश्रम प्रकाशन
3. अथर्ववेद संहिता - आनन्दाश्रम प्रकाशन
4. ऐतरेय ब्राह्मण - आनन्दाश्रम सीरीज
5. कौषीतकि ब्राह्मण - आनन्दाश्रम सीरीज.
6. शतपथ ब्राह्मण - आनन्दाश्रम सीरीज
7. तैत्तिरीय संहिता - आनन्दाश्रम सीरीज
8. तैत्तिरीय ब्राह्मण - आनन्दाश्रम सीरीज
9. तैत्तिरीय आरण्यक - आनन्दाश्रम सीरीज
10. ईशादि दशोपनिषद् - शंकर भाष्य, मोतीलाल बनारसीदास प्रथम संस्करण.
11. बृहदारण्यकोपनिषद् - गीताप्रेस, गोरखपुर
12. छान्दोग्योपनिषद् - गीता प्रेस, गोरखपुर
13. अग्नि पुराण - कलकत्ता
14. अध्यात्म रामायण - गीताप्रेस गोरखपुर
15. आनन्द रामायण - बम्बई
16. कल्कि पुराण - बम्बई
17. गर्गसंहिता - बम्बई
18. गीतगोविन्द - जयदेव

19. श्रीमद्भगवद्गीता - शांकरभाष्य - गीता प्रेस गोरखपुर

20. गीता - रामानुज भाष्य - गीताप्रेस गोरखपुर

21. अलंकार पारिजात - बम्बई

22. नारद भक्ति सूत्र - गीता प्रेस गोरखपुर

23. प्रतिमा नाटक - भास , चौखम्भा प्रकाशन

24. पुराण संहिता - चौखम्भा प्रकाशन

25. बुद्ध चरितम् - अश्वघोष चौखम्भा प्रकाशन

26. ब्रह्म वैवर्तपुराण - कलकत्ता प्रकाशन

27. मत्स्य पुराण - गीता प्रेस गोरखपुर

28. कूर्म पुराण - गीता प्रेस गोरखपुर

29. वराह पुराण - गीता प्रेस गोरखपुर

30. नृसिंह पुराण - गीता प्रेस, गोरखपुर

31. वामन पुराण - गीता प्रेस, गोरखपुर

32. श्रीमद्भागवत पुराण - गीता प्रेस, गोरखपुर

33. महाभारत - गीता प्रेस, गोरखपुर

34. वाल्मीकि रामायण - गीता प्रेस, गोरखपुर

35. लघु भागवतामृतम् - रूप गोस्वामी

36. मनुस्मृति - चौखम्भा प्रकाशन

37. विष्णु - पुराण - गीता प्रेस,गोरखपुर

38. सौन्दर नन्द - अश्वघोष

39. स्कन्द पुराण - बम्बई

40. विष्णु धर्मोत्तर पुराण - बम्बई

41. ललित विस्तर

42. वशिष्ठ संहिता -

43. अवतार - डा० एनीबेसेन्ट

44. सिन्धु सभ्यता - डा० राधाकुमुद मुखर्जी

45. जर्नल आफ बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, पटना

46. बुद्धचर्या एवं सन्धर्म पुण्डरीक

47. नरसिंह पुराण – गीता प्रेस गोरखपुर, श्रीकृष्ण सेवा 5196 प्रकाशन वर्ष 45.

48. दि नरसिंह पुराण – डॉ० एस०जैना (ए क्रिटिकल स्टडी) सन्‌–1987ई०

49. अग्नि पुराण, गर्गसंहिता, नरसिंह पुराण अंक– गीता प्रेस गोरखपुर प्रकाश वर्ष 45.

50. नरसिंह पुराण, कल्याण (परिशिष्टांक) गीताप्रेस, गोरखपुर

51. ब्रह्म पुराण – डॉ०हरिदास सिद्धान्त वागीश, गुरु मण्डल प्रकाशन, कलकत्ता

52. पुराण विमर्श – पं० बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी – 1987.

53. हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक विवेचन – श्रीमती वीणा पाणि पाण्डेय, सूचना–विभाग उत्तर प्रदेश 1960

54. पुराण समीक्षा – डॉ० हरिनारायण दुबे, वर्ष 1984.

55. अग्नि पुराण – आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली क्रमांक–41–1900

56. कूर्म पुराण – कलकत्ता 1890.

57. गरुड़ पुराण – बंगला संस्करण 1314 कलकत्ता

58. देवीभागवत – श्रीराम शर्मा, मथुरा

59. नारदीय पुराण – वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

60. पद्म पुराण – आनन्दाश्रम सीरीज, 1893.

61. भविष्य पुराण – वेंकटेश्वर प्रेस 1910.

62. मत्स्य पुराण – आनन्दाश्रम पूना

63. मार्कण्डेय पुराण – कलकत्ता 1862.

64. ब्रह्म पुराण - आनन्दाश्रम 1316.

65. ब्रह्माण्ड पुराण - वेंकटेश्वर प्रेस, 1913.

66. वायु पुराण - हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

67. वाराह पुराण - कलकत्ता 1893

68. विष्णु पुराण - वेंकटेश्वर प्रेस

69. हरिवंश पुराण - पूना 1936.

70. अष्टाध्यायी - चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी.

71. महाभाष्य - चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी 1987.

72. काशिका - चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी 1987.

73. अष्टादश पुराण- दर्पण - ज्वालाप्रसादमिश्र, वेंकटेश्वरप्रेस.

74. मार्कण्डेय पुराण - एक सांस्कृतिक अध्ययन : वासुदेवशरण अग्रवाल हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, 1961.

75. पुराण विषयानुक्रमणी - राजबली पाण्डेय, काशी 1957.

76. पुराण दिग्दर्शन - माधवाचार्य शास्त्री, दिल्ली सं0 2014.

77. पुराण तत्व मीमांसा - श्रीकृष्ण मणि त्रिपाठी, वाराणसी 1961

78. अष्टादश पुराण परिचय - श्रीकृष्ण मणि त्रिपाठी, वाराणसी सं0 2013

79. वामन पुराण - एक सांस्कृतिक अध्ययन : डॉ0 मायावती त्रिपाठी, वाराणसी.

80. पुराणानुशीलन - म0म0 गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पटना 1970.

81. धर्मशास्त्र का इतिहास - पी0वी0काणे

82. वाल्मीकीय रामायण - गीताप्रेस गोरखपुर

83. पुराण पर्यालोचनम् - श्रीकृष्ण मणि त्रिपाठी

84. शतपथ ब्राह्मण - बम्बई.

85. श्रीमद्भगवद् गीता - गीताप्रेस, गोरखपुर

86. वैदिक मैथालाजी - मैकडानल कीथ

87. सारस्वत सन्दर्भिका - प्रो० सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी, प्रयाग

88. काव्य प्रकाश - आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल, वाराणसी

89. रसगंगाधर - चौखम्भा विद्या भवन, 1987.

90. ध्वन्यालोक - आचार्य विश्वेश्वर, वाराणसी

91 काव्य मीमांसा - चौखम्भा, वाराणसी 1931

92. मनुस्मृति - चौखम्भा वाराणसी.

93. निरुक्त - आर्य ग्रन्थावली.

94. सिद्धान्त कौमुदी - चौखम्भा, वाराणसी.

95. भारतीय संस्कृति - डॉ० रामजी उपाध्याय

96. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर

97. काव्य शास्त्र - डॉ० भगीरथ मिश्र

98. काव्य शास्त्र प्रवेशिका - डॉ० प्रभुदयाल अग्निहोत्री, ग्वालियर.

99. भारतीय काव्य चिन्तन - डॉ० राजेश्वर दयाल, 1969.

100. दशरूपक - डॉ० भोलाशंकर व्यास, चौखम्भा, वाराणसी 1967.

101. कालिदास की साहित्य योजना - डॉ० बिहारी प्रसाद, राजकमल प्रकाशन; 1970.

102. हिन्दू सभ्यता - राधा कुमुद मुकर्जी, राजकमल प्रकाशन, 1974.

103. भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा - डॉ० नगेन्द्र-1975.

104. मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद - डॉ० कपिलदेव पाण्डेय चौखम्भा - वाराणसी 1963.

105. वैदिक साहित्य और संस्कृति - बलदेव उपाध्याय
शारदा मन्दिर काशी 1955.

106. पुराण निर्माणाधिकरणम् - मधुसूदन ओझा

107. पुराणोत्पत्ति प्रसंग - जयपुर 2000.

108. अमरकोश - निर्णयसागर प्रेस

109. भारतीय दर्शन - डॉ0उमेश मिश्र, 1975.

110. पुराण धर्म - कालूराम शास्त्री

111 संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास - डॉ0सूर्यकान्त
सन्-1972ई0

112. संस्कृत साहित्य का इतिहास - कपिलदेव द्विवेदी, इलाहाबाद
सन्-1962

113. संस्कृत साहित्य का इतिहास - बलदेव उपाध्याय, शारदा
निकेतन, वाराणसी 1978.

114. संस्कृत हिन्दी कोश - वामन शिवराम आप्टे ,दिल्ली

115. हिन्दी विश्वकोश - नगेन्द्र वसु

116. वैदिक कोश - सूर्यकान्त, वाराणसी.

117. शब्दकल्पद्रुम - राधाकान्त देव, वाराणसी-1961.

118. कालिदास ग्रन्थावली - आचार्य सीताराम चतुर्वेदी.

119. मैत्रेय पर्यालोचन - डॉ0 चण्डिका प्रसाद, प्रयाग

120. भागवत दर्शन - डॉ0हरवंशलाल शर्मा

121. भागवत परिचय - डॉ0वासुदेवशरण चतुर्वेदी

122. प्रमुख पुराणों में नारी - मनोज त्रिपाठी

123. प्रतिमाओं का तुलनात्मक अध्ययन-डॉ0वा0रा0त्रिपाठी.

124. भारतीय साहित्य का इतिहास - विन्टरनित्ज
मोतीलाल बनारसीदास.

125. संस्कृत साहित्य का इतिहास - कीथ,मोतीलाल बनारसीदास
अनुवाद - डॉ०मंगलदेव शास्त्री.

126. पुराणम् - काशिराज न्यास, रामनगर, वाराणसी.

127. भाष्य जर्नल - बम्बई

128. कल्याण - गीता प्रेस गोरखपुर

129. इण्डियन इण्टिक्वेरी, बाम्बे

130. जर्नल आफ गंगानाथ झा, रिसर्च इन्स्टीट्यूट इलाहाबाद.

131. जर्नल आफ ओरियण्टल सोसाइटी, अमेरिका

132. जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल -कलकत्ता

133. विश्व भारतीय क्वार्टर्ली

134. इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली,कलकत्ता

135. जर्नल आफ वेंकटेश्वर ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट,तिरुपति

136. साहित्य दर्पण

137. छन्दः कौमुदी - चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान 1940

138. वृत्त रत्नाकर - चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 1946.

139. छन्दोऽलंकार दर्पण - [illegible] - कानपुर 1986

140. दि वैदिक एज

141. हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म

142. राधाकृष्ण का विकास : डॉ० द्विवेदी

143. भागवत तात्पर्य निर्णय

144. इण्डिया ऐज़ नोन टु पाणिनि : वासुदेवशरण अग्रवाल